कृष्णदास राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

२

॥ श्रीः ॥

संस्कृत साहित्य का इतिहास

लेखक

डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

॥ श्रीः ॥

कृष्णदास राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

२

॥ श्रीः ॥

संस्कृत साहित्य का इतिहास

लेखक

डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग :

एस० सिन्हा कालेज, औरंगाबाद (विहार)

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

१९७७

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३३

मूल्य :

REVISED PRICE RS 30/- VARANASI

© चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० नं० १३८, वाराणसी–२२१००१

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी–२२१००१

(भारत)

फोन : ६३१४५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक संस्कृतसाहित्येतिहास का परिचय देने के लिए लिखी गयी है। इसमें संस्कृतसाहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों और विचारधाराओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा अनावश्यक विस्तार से बचने का प्रयास हुआ है।

पुस्तक के प्रारम्भ में संस्कृतसाहित्य की प्रवृत्तियों का परिचय दिया गया है, तत्पश्चात् पृथक् पृथक् अध्यायों में वेद, रामायण, महाभारत, प्रसिद्ध कवि, गद्यलेखक एवं नाटककारों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आशा है इस पुस्तक से पाठक लाभान्वित होंगे।

मकरसंक्रान्ति
वि० सं० २०३३

—लेखक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठांक

१ संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ—वेद, वेदांग, रामायण, महाभारत, पुराण, महाकाव्य का विकास, मुक्तक काव्य, कथा साहित्य, गद्य साहित्य, चम्पू, काव्य, नाटक ३–३२

२ संहिता साहित्य—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ३३–४२

३ रामायण और महाभारत—वाल्मीकि रामायण, रचना काल, प्रक्षिप्त अंश, काव्यतत्त्व, महाभारत, वाल्मीकि और व्यास ४३–५४

४ महाकवि—कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि, माघ, श्रीहर्ष, अमरुक ५५–८४

५ गद्य काव्य—पञ्चतन्त्र, सुबन्धु, दण्डी, बाणभट्ट, त्रिविक्रम भट्ट ८५–९८

६ नाटककार—भास, कालिदास, शूद्रक, हर्षवर्द्धन, भवभूति, भट्टनारायण, विशाखदत्त ९९–१७२

७ (क) काव्यशास्त्र—नामकरण,—भरत, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट, रुद्रभट्ट, आनन्दवर्द्धन, कुन्तक, अभिनव गुप्त, राजशेखर, धनंजय एवं धनिक, महिमभट्ट, भोजराज, क्षेमेन्द्र, मम्मट, अग्निपुराण, राजानक रुय्यक, हेमचन्द्र, रामचन्द्र-गुणचन्द्र जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ कविराज, शारदातनय, शिंगभूपाल, भानुदत्त, रूपगोस्वामी, उज्ज्वल नीलमणि, अप्पयदीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ, विश्वेश्वर पण्डित। १७२–१८५

(ख) काव्यशास्त्र के सम्प्रदाय–(१) रससम्प्रदाय, (२) अलंकार-सम्प्रदाय (३) रीतिसम्प्रदाय, (४) ध्वनिसम्प्रदाय, (५) वक्रोक्ति-सिद्धान्त, (६) औचित्यसिद्धान्त १८५–१९०

शुद्धि पत्र १९१–१९२

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत साहित्य का इतिहास

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रथम अध्याय

संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ

संस्कृत का साहित्य अत्यन्त समृद्ध, विशाल, बहुमुखी एवं गौरवास्पद है; इसे भारोपीय परिवार का सर्वोत्कृष्ट साहित्य कहा जा सकता है। क्या मात्रा क्या गुण दोनों ही दृष्टियों से इसका साहित्य उत्कृष्ट है। जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों एवं विचार धाराओं की ओर संस्कृत लेखकों की दृष्टि गई है और उन्होंने अपनी प्रतिभा के प्रकाश से सभी क्षेत्रों को प्रोद्भासित किया है। धर्मशास्त्र, नीति, दर्शन, चिकित्साशास्त्र ज्योतिष, गणित, सामुद्रिकशास्त्र, कर्मकाण्ड, भक्ति, कामशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण, संगीत, नाट्यशास्त्र, काव्य, नाटक, कथा-साहित्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि से सम्बद्ध संस्कृत में उच्चकोटि का साहित्य विद्यमान है और सभी क्षेत्रों में यह साहित्य विपुल परिमाण में उपलब्ध है।

संस्कृत-साहित्य मुख्यतः दो भागों में विभक्त है—वैदिक और लौकिक। वेद और वैदिक साहित्य दो भिन्न अर्थों के द्योतक हैं। वेद से केवल चार मन्त्र संहिताओं का ज्ञान होता है—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। तो वैदिक साहित्य वेद-विषयक समस्त वाङ्मय का द्योतक है जिसके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदांग का समावेश किया जाता है। वर्ण्यविषय, अभिव्यक्ति-पद्धति, भाषा और व्याकरणिक प्रयोग के अतिरिक्त साहित्य-रूढ़ियों तथा छन्दः सम्पत्ति की दृष्टि से लौकिक साहित्य वैदिक साहित्य से भिन्न है।

लौकिक साहित्य का समारम्भ 'वाल्मीकि-रामायण' से होता है, जिसे संस्कृत का आदि काव्य कहा जाता है। संस्कृत का परवर्ती विकास लौकिक साहित्य से ही सम्बद्ध रहा है और उसे उसीका बढ़ाव कहा जा सकता है। 'रामायण' तथा 'महाभारत' लौकिक साहित्य की आद्य रचनाएँ हैं और इनके द्वारा सर्वप्रथम मानवीय चरित्र का अंकन कर नवीन शैली का सूत्रपात किया गया है। दोनों ही ग्रन्थ केवल काव्य न होकर भारतीय संस्कृति, समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, अर्थशास्त्र तथा विधिशास्त्र आदि विद्याओं के सर्वाङ्गीण आधार ग्रन्थ हैं। डा० मैकडोनेल के अनुसार "भारोपीय वंश की केवल भारत-निवासिनी ही शाखा ऐसी है जिसने वैदिक धर्म नामक एक बड़े सार्वभौम धर्म की रचना की। अन्य सभी शाखाओं ने एक क्षेत्र में मौलिकता न दिखाकर बहुत पहले से एक विदेशीय धर्म को अपनाया। इसके अतिरिक्त भारतीयों ने स्वतन्त्रता से अनेक सम्प्रदायों को विकसित किया, जिनसे उनकी ऊँची चिन्तन-शक्ति का प्रमाण मिलता है।" संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का पूर्ण परिपोषक है। विद्वानों ने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

इसकी पाँच विशेषताओं का उद्घाटन किया है। यह स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण परिपोषक तथा 'वात्स्यायन कामसूत्र' में वर्णित विलासी नागरिक जीवन का चित्र अंकित करता है। इस पर भारतीय दर्शन की आस्तिक विचार पद्धति का पूर्ण प्रभाव है, पर अनेक ग्रन्थों में नास्तिक दर्शनों की मान्यताओं को भी आकलित किया गया है और जैन, बौद्ध तथा चार्वाक दर्शनों का आधार ग्रहण कर अनेक काव्यों का प्रणयन हुआ है। संस्कृत के विभिन्न कवियों की कलात्मक मान्यताएँ भिन्न हैं। कोई भाव-पक्ष की समृद्धि पर बल देता है तो अनेक कवियों की दृष्टि कलात्मक वैभव की ओर केन्द्रित हुई है। संस्कृत काव्य की अन्य महत्त्व पूर्ण विशेषता है सांगीतिक तत्त्व का विन्यास या उसकी सांगीतिकता। यह तत्त्व संस्कृत में चरम परिणति पर पहुँच गया है और इसके द्वारा कविता में नाद सौन्दर्य की सृष्टि हुई है।

वैदिक वाङ्मय—वेद के चार विभाग हैं—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। संहिता भाग में मन्त्रों का संग्रह है, जिसमें स्तुतियाँ हैं। इसके चार खण्ड हैं—ऋक्, साम, यजुः और अथर्व। कालान्तर में कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञानकाण्ड के आधार पर ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रन्थों का निर्माण हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रों के विधि भाग की व्याख्या की गई है या याज्ञिक अनुष्ठानों और विधि-विधानों का वर्णन हुआ है। आरण्यक उन व्यक्तियों के लिए उपयोगी हैं, जो वीतराग होकर अरण्य का सेवन करते हुए शान्त वातावरण में भगवद् उपासना में लीन रहते हैं। इनमें ब्राह्मणों में वर्णित वैदिक कर्मों या याज्ञिक कार्यों के आध्यात्मिक पक्षों का उद्घाटन किया गया है। उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग और ज्ञानकाण्ड से सम्बद्ध हैं। इनमें वैदिक मन्त्रों की दार्शनिक व्याख्या हुई है।

वैदिक संहिता—वेदों की रचना याज्ञिक अनुष्ठान के लिए हुई थी। संहिता की दृष्टि से वेदों के चार विभाग किये गए हैं—और मन्त्रों के समूह को संहिता कहते हैं। यज्ञानुष्ठान को ध्यान में रखकर विभिन्न ऋत्विजों के उपयोगार्थ मन्त्र संहिताओं के संकलन किये गए हैं। यज्ञ में चार व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। जिन्हें ऋत्विज कहा जाता है और उन्हीं के आधार पर चारों संहिताओं का उपयोग किया जाता है। चार ऋत्विज हैं—होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। होता का अर्थ है पुकारने वाला। यह यज्ञानुष्ठान के समय ऋग्वेद का पाठ करते हुए यज्ञानुरूप देवताओं का आह्वान करता है और मन्त्रों द्वारा उन्हें पुकार कर यज्ञ में आसीन कराता है। उद्गाता का अर्थ है गाने वाला। यह सामवेद के मन्त्रों का गान करते हुए यज्ञीय देवताओं की स्तुति करता है। अर्ध्वयु का कार्य यज्ञीय कार्यों का नियम पूर्वक सम्पादन करना है। यह यज्ञ कर्मों का सम्पादक प्रधान ऋत्विज होता है और यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण कर अपना कार्य सम्पन्न करता है। यज्ञ में सर्वाधिक उत्तरदायित्व ब्रह्मा का है और इसी के निर्देशन में समस्त यज्ञ कार्य सम्पादित होता है। यज्ञ की बाहरी विघ्नों से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रचा स्वरों की अशुद्धियों का मार्जन तथा यज्ञीय अनुष्ठान में होने वाले दोषों का दूरीकरण आदि इसके प्रधान कार्य हैं। इसका अपना कोई निजी वेद नहीं होता। इसे समस्त वेदों का ज्ञाता माना जाता था, पर कालान्तर में इसका प्रधान वेद अथर्ववेद माना जाने लगा। वैदिक सूक्तों में नाना प्रकार के देवताओं का यज्ञ में आवाहन करने के लिए अनेक प्रकार के छन्दों का विधान किया गया है। इनमें भावों का वैविध्य तथा काव्यकला का भव्य एवं रुचिकर रूप अभिव्यक्त हुआ हैं। उषा सम्बन्धी मन्त्रों में सौन्दर्य भावना का आविक्य है तो इन्द्र विषयक मन्त्रों में तेजस्विता का भाव दीप्त हुआ है। अग्नि के वर्णन में स्वाभाविकता प्रदर्शित की गई है तो वरुण के वर्णन में हृदय के मधुर एवं कोमल भावों की व्यंजना हुई है।

ऋग्वेद—यह वैदिक साहित्य का सुमेरु है। अन्य तीन वेद किसी न किसी रूप में ऋग्वेद से प्रभावित है। प्रारम्भ में इसकी पाँच शाखाएँ थी—शाकल, वाष्कल, आश्वालयन, शांखायन और मांडूकायन पर सम्प्रति केवल शाकल शाखा ही उपलब्ध है। इसके दो क्रम हैं—अष्टक और मण्डल। अष्टकक्रम के अनुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ अष्टकों में विभक्त है और प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय वर्गों में विभाजित है। अध्यायों की संख्या ६४ और वर्गों की संख्या २०६ है। मण्डल क्रम के अनुसार ऋग्वेद दस मण्डलों में विभक्त है जिनमें १०१७ सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में कई मन्त्र हैं तथा मन्त्रों की संख्या १०५८० है। 'ऋग्वेद' के प्रथम और दशम मण्डल अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं और भाषा, छन्द तथा दार्शनिक चिंतन की दृष्टि से भी इनकी अर्वाचीनता सिद्ध होती है। इसमें देवताओं की स्तुतियों से सम्बद्ध स्तोत्र हैं और मुख्यतः इन्द्र, वरुण, उषा, सविता, अग्नि, पूषा, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य, सोम तथा पवमान के अधिक सूक्त हैं। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों—पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त तथा नासदीयसूक्त—में दार्शनिक तत्त्वों का चिंतन है। इसमें अनेक दानसूक्त तथा संवादसूक्त हैं जिनमें क्रमशः दान स्तुतियाँ (पाश्चात्य पण्डितों के मतानुसार) एवं नाटक के तत्त्व हैं।

यजुर्वेद—यजुष् गद्यमय मन्त्रों को कहते हैं जिनका संकलन यजुर्वेद में है। यजुष् का अर्थ है पूजा और यज्ञ। इसमें आध्वर्य कर्म के लिए प्रयुक्त याजुष संगृहीत हैं। यह दो भागों में विभक्त है—कृष्ण एवं शुक्ल यजुर्वेद। ऋग्वेद के बहुत से मन्त्र यजुर्वेद में संगृहीत हैं। यजुर्वेद वैदिक कर्मकाण्ड का प्रधान आधार है। शुक्ल युजुर्वेद की संहिता को 'वाजसनेयी संहिता' कहते हैं जिसमें ४० अध्याय हैं तथा अन्तिम १५ अध्याय खिल अतिरिक्त होने के कारण परवर्ती रचना के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। कृष्ण यजुर्वेद में ८५ शाखाएँ थी जिनमें केवल चार उपलब्ध हैं—तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ तथा कपिष्ठल कठ शाखा।

सामवेद—सामवेद का प्रयोग उद्गाता यज्ञ-सम्पादन के समय उद्गीथ (गाना) के रूप में करता था। ये साम गान उच्च स्वर में गाये जाते थे। इसमें १८७५ ऋचाएं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

हैं जिनमें १७७१ ऋचाएँ ऋग्वेद की हैं और शेष १०५ मन्त्र नवीन हैं। इनमें भी पाँच ऋचाएँ पुनरुक्त हैं, अतः वास्तविक ऋचाओं की संख्या ९९ है।

अथर्ववेद—इसमें अभिचार या मारण, मोहन, उच्चाटन मन्त्रों का संग्रह है। यह बीस काण्डों में विभक्त है। इसमें ऋग्वेद के बारह सौ मन्त्र हैं।

ब्राह्मण—ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना गद्य में हुई है। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् ब्राह्मण हैं। इनका प्रधान विषय है कर्मकाण्ड। इनमें यज्ञीय कर्मों तथा मन्त्रों के यज्ञ सम्बन्धी विनियोग वर्णित हैं और अनेकानेक लौकिक एवं आध्यात्मिक आख्यानों का कथन किया गया है।

आरण्यक—ये ब्राह्मणों के ही परिशिष्ट हैं इनमें दार्शनिक विचार भरे पड़े हैं। ब्राह्मणों की भाँति आरण्यक भी प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् हैं।

उपनिषद्—वेदों के अन्तिम भाग को उपनिषद् कहते हैं। इनका प्रधान प्रतिपाद्य अध्यात्मविद्या है। उपनिषदों की संख्या १०८ हैं, पर उनमें ११ प्रमुख है—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक एवं श्वेताश्वतर।

वेदांग—वेदांगों की संख्या ६ है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। वेदांग ऐसे ग्रन्थों को कहते हैं जो वेद का अर्थ जानने एवं उसके कर्मकाण्ड में सहायक हों। वेद का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही वेदांगों की रचना हुई है। वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने, कर्मकाण्ड का शुद्ध रूप से प्रतिपादन करने वैदिक साहित्य में उपन्यस्त शब्दों का निर्माण एवं उनकी शुद्धता का निर्णय करने, प्रत्येक वैदिक मन्त्र के छन्दों का ज्ञान प्राप्त करने, यज्ञ-सम्पादन का विशिष्ट समय जानने एवं वैदिक शब्दों के अर्थ बोध के लिए छह पृथक् शास्त्रों की उद्भावना हुई जिससे उपर्युक्त समस्याओं का निराकरण हुआ। इन्हें ही वेदांग कहते हैं।

वेदों की भाषा की शुद्धता एवं उच्चारण को सुरक्षित रखने के लिए शिक्षा ग्रन्थों की रचना हुई है। कल्प में यज्ञ के प्रयोगों का समर्थन किया जाता है। व्याकरण में पदों की प्रकृति एवं प्रत्यय का विवेचन कर उनके वास्तविक रूप का प्रतिपादन किया जाता है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति दी गई है। निघण्टु की टीका का नाम निरुक्त है; निघण्टु में चुने हुए वैदिक शब्द हैं। वेदों की रचना छन्दोबद्ध है, इनमें कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनका विश्लेषण प्रातिशाख्यों तथा पिंगल कृत 'छन्दःसूत्र' में किया गया है। यज्ञ-सम्पादन के लिए काल-ज्ञान की आवश्यकता को देखते हुए ज्योतिष को वेद का नेत्र, छन्द को पैर तथा व्याकरण को उसका मुख कहा जाता है।

रामायण और महाभारत

रामायण संस्कृत का आदि काव्य है जिसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि हैं। यह चतुर्विंशति संहिता के नाम से विख्यात है क्योंकि इसमें २४ सहस्र श्लोक हैं। भारतीय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जन जीवन में आदि काव्य धार्मिक ग्रन्थ के रूप में मान्य रहा है। रामायण की शैली प्रौढ़ काव्यमय, परिमार्जित, अलंकृत एवं प्रवाह पूर्ण है तथा इसमें संस्कृत भाषा के माध्यम से समग्र मानव जीवन का अत्यन्त रमणीय चित्र अंकित किया गया है और कवि की दृष्टि प्रकृति के अनेक विध मनोरम दृश्यों की ओर गई है। सम्पूर्ण रामायण सात काण्डों में विभक्त है—बालकाण्ड, अयोध्या-काण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दर-काण्ड, युद्ध-काण्ड और उत्तर-काण्ड। इसके प्रत्येक काण्ड में अनेक सर्ग हैं—बाल (७७), अयोध्या (११९), अरण्य (७५), किष्किन्धा (६७), सुन्दर (६८), युद्ध (१२८) तथा उत्तर में (१११)। रामायण एक ऐतिहासिक महाकाव्य होने के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति, सभ्यता और चिंतन प्रणाली का अपूर्व कोश है, जिसमें भाषा और भाव का अत्यन्त उदात्त रूप तथा अलंकृत शैली का भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें राम की मुख्य कथा के अतिरिक्त बाल एवं उत्तर काण्ड में अनेक कथाएँ एवं उपकथाएँ हैं। रामायण के बाल काण्ड और उत्तर काण्ड के सम्वन्ध में विद्वानों का विचार है कि ये प्रक्षिप्त हैं। इस सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों ने ही ऐसे विचार प्रकट किये हैं। उनके अनुसार बाल काण्ड की रचना वास्तविक काव्य के बहुत बाद हुई। मूल ग्रन्थ की शैली एवं वर्णन पद्धति के आधार पर भी दोनों काण्ड स्वतन्त्र रचना प्रतीत होते हैं। बालकाण्ड के प्रारम्भ में रामायण की जो विषय सूची दी गई है उसमें उत्तरकाण्ड का उल्लेख नहीं है। जर्मन विद्वान् याकोबी के अनुसार रामायण में पाँच ही काण्ड थे। लंकाकाण्ड या युद्धकाण्ड के अन्त में ग्रन्थ समाप्ति के निर्देश प्राप्त हो जाते हैं जिससे ज्ञात होता है कि उत्तरकाण्ड आगे चलकर जोड़ा गया। मैकडोनल ने रामायण का अन्त्येष्टिकाल ५०० ई० पू० तथा उसमें किये गये प्रक्षेपों का समय २०० वर्ष ई० पू० स्वीकार किया है। ए० श्लेगल के अनुसार रामायण की रचना ११०० ई० पू० हुई थी और जी० गोरेसियो इसका समय १२०० ई० पू० मानते हैं। रामायण की कथा का उल्लेख 'महाभारत' में प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है। इसकी रचना महाभारत से पूर्व हो चुकी थी। वाल्मीकि रामायण की टीकाओं की संख्या ३० के आस पास है। इनमें रामानुज की 'रामानुजीयम्' सर्वाधिक प्राचीन टीका है।

वाल्मीकि रामायण काव्य मात्र न होकर दो भिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के संघर्ष की कहानी है। आदि कवि की सौन्दर्य चेतना कवित्वमयी है। रामायण के प्रकृति चित्रण में कवि की सौन्दर्य संवेदना का प्रौढ़ रूप मिलता है। यद्यपि इसमें प्रकृति के अधिकांश चित्र विवरणात्मक हैं तथापि उसमें कवि की चित्रणकला का अपूर्व कौशल दिखाई पड़ता है। विवरणात्मक स्थलों में ही कवि ने अधिक चित्र विधान किये हैं। रामायण में प्रकृति चित्रण प्रचुर मात्रा में है। जिसमें निहित कवि की दृष्टि प्रकृत कवि का रूप प्रस्तुत करती है।

वाल्मीकि संस्कृत काव्य के इतिहास में स्वाभाविक शैली के प्रवर्तक माने जाते हैं,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जिसका अनुगमन अश्वघोष तथा कालिदास की रचनाओं में किया गया है। रामामण में सहज और अकृत्रिम शैली के अतिरिक्त कहीं कहीं अलंकृत शैली का प्रयोग है। सुन्दर काण्ड के 'चन्द्रोदयवर्णन' में अन्त्यानुप्रास की मनोरम छटा प्रदर्शित की गयी है किन्तु वहाँ पद्य अलंकार के दुष्प्रयोग के कारण बोझिल नहीं हो सका है और न शैली की कृत्रिमता से मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। प्रकृति चित्रण की भाँति नारी के रूप-चित्रण में या किसी विषय के वर्णन में कवि की लेखनी भावों की नवीन उद्भावना करती हुई मनोरम चित्र उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ है। रावण के अन्तः पुर में शयनागार में अस्त व्यस्त पड़ी हुई तथा रतिश्रम से खिन्न नारियों का अनाबिल चित्र अत्यन्त हृदयग्राही और स्वाभाविक है। इसी प्रकार मदविह्वला तारा के मादक रूप और यौवन का चित्रण करने में कवि की लेखनी थकना नहीं जानती। मानव प्रकृति के चित्रण में भी वाल्मीकि ने सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय दिया है। राम, सीता, भरत, हनुमान, विभीषण, रावण आदि के चरित्रांकन में चरित्र-चित्रण का वैविध्य दिखाई पड़ता है। इनके राम मानवसुलभ गुणों से युक्त हैं, किन्तु उनमें गुणों के अतिरिक्त मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं, जिससे वे अतिमानव नहीं बन पाते और पूरे मानव के रूप में उपस्थित होते हैं। कथानक के संयोजन में कवि की उत्कृष्ट वर्णनात्मक शक्ति प्रकट होती है। वर्णनात्मक धारा की पूर्ण कल्पना तथा घटना-सम्बन्धी सजीवता के लिए कवि ने अनेक विवरणों का प्रयोग किया है। भारतीय जीवन की उदात्तता, सौन्दर्य, नीति-विधान, राजधर्म, सामाजिक आदर्श आदि की सुखकर अभिव्यक्ति रामायण में है जिससे इसकी महाकाव्यात्मक गरिमा में वृद्धि हुई है। वस्तु व्यंजना, भाव व्यंजना एवं शैली के सहज और अलंकृत रूप इसे महाकाव्य की उदात्तता प्रदान किये बिना नहीं रहते। वाल्मीकि महाकाव्यात्मक कथानक के विस्तृत क्षेत्र में पूर्ण गीतात्मक और कवित्वमय रूप का वर्णन करने वाले प्रकृत कवि हैं।

महाभारत

महाभारत भारतीय जीवन, विशेषतः हिन्दू जनता का, जातीय इतिहास है जिसकी रचना एक लाख श्लोकों में हुई है। इसके रचयिता महर्षि वेदव्यास हैं। विण्टरनित्स ने इसे सीमित अर्थ में इतिहास और काव्य कहा है, पर उनके अनुसार "वास्तव में एक अर्थ में महाभारत एक काव्य कृति है ही नहीं, अपने में पूरा साहित्य है।"

यह काव्य और इतिहास के अतिरिक्त अपने में भारतीय सांस्कृतिक चेतना को अनुस्यूत किये हुए एक महान सांस्कृतिक निधि है, स्वयं एक संस्कृति है। इसमें कवि ने कौरवों और पांडवों की कथा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विशाल चित्र अंकित किया है। इसमें संघर्ष संकुल भारतीय जीवन की यथार्थ कहानी है जिसमें दो जीवन मूल्यों का चित्रण किया गया है तथा तत्कालीन सम्पूर्ण विचारधाराओं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एवं युग चेतना को समेटने का सफल प्रयास किया गया है। इसी लिए कहा गया है कि 'यन्न भारते तन्न भारते' भारत में जो नहीं है वह महाभारत में भी नहीं है। भारत का अर्थ है भारतों का युद्ध (भारतः, संग्रामः, अष्टाध्यायी ४,१२,१५६)। महाभारत का अर्थ हुआ 'भारत लोगों के युद्ध का महान् आख्यान्। इसे हिन्दू धर्म के समस्त स्वरूप को निरूपित करनेवाला पंचम वेद माना जाता रहा है। स्वयं इसके रचयिता की ऐसी गर्वोक्ति है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो यहाँ है वह अन्यत्र भी है और जो यहाँ नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है। महाभारत के शान्ति पर्व में जीवन की समस्याओं के समाधान के नाना विध तत्त्वों का वर्णन है, अतः यह हिन्दू जाति के बीच धर्म ग्रन्थ के रूप में समादृत है। भारतीय साहित्य एवं चिन्तन पद्धति का श्रेष्ठग्रन्थ गीता महाभारत का ही एक अंश है। इसके अतिरिक्त, विष्णु-सहस्रनाम, 'अनुगीता', भीष्मस्तवराज, 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ महाभारत के ही भाग हैं। उपर्युक्त पाँच ग्रन्थ 'पञ्चरत्न' के नाम से अभिहित होते हैं। सम्प्रति महाभारत में एक लाख श्लोक प्राप्त होते हैं, अतः इसे (शतसाहस्री संहिता) कहा जाता है। इसका यह रूप १५०० वर्षों से है क्योंकि इसकी पुष्टि गुप्तकालीन एक शिलालेख से होती है जहाँ 'महाभारत' के लिए 'शतसाहस्री संहिता' का प्रयोग किया गया है। इसका वर्त्तमान रूप अनेक शताब्दियों के विकास का परिणाम है। इस प्रकार की धारणा आधुनिक विद्वानों की है। इसके विकास के तीन क्रमिक सोपान हैं—जय, भारत तथा महाभारत 'महाभारत' के मंगल श्लोक में नारायण नर तथा सरस्वती देवी की वन्दना करते हुए 'जय' नामक काव्य के पठन का विधान है। विद्वानों का कथन है कि जय काव्य ही महाभारत का मूल रूप है।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

महाभारत में ही लिखा है कि यह जय नामक इतिहास है—जय नामेऽतिहासोऽयम्। इसकी दूसरी स्थिति भारत नाम की है जिसमें केवल युद्ध का वर्णन था और उपाख्यानों का समावेश नहीं किया गया था। उस समय इसमें चौबीस हजार श्लोक थे तथा यही ग्रन्थ वैशम्पायन द्वारा राजा जनमेजय को सुनाया गया था। महाभारत नाम तृतीय अवस्था का द्योतक है जब कि भारत में उपाख्यानों का समावेश हुआ।

महाभारत का रचनाकाल अभी तक असंदिग्ध है और लोगों का विचार है कि बुद्ध के पूर्व तक अवश्य ही महाभारत का निर्माण हो चुका था। कतिमय आधुनिक विद्वान् बुद्ध का समय १६०० ई० पू० मानते हैं। महाभारत १८ पर्वों में विभक्त है—आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रस्थानिक तथा स्वर्गारोहणपर्व। महाभारत की अनेक टीकाएँ हैं, जिनकी संख्या ३६ है। इनमें नीलकण्ठ की टीका 'भारत-भावप्रदीप' १८ पर्वों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पर प्रकाशित एक मात्र टीका है। महाभारत युगधर्म को चित्रित करने वाला अपूर्व काव्य है। इसमें जिस जीवन का चित्रण है उसमें अनेक प्रकार के अन्तर्विरोध एवं वाह्य द्वन्द्व का विस्तार है तथा उनकी तीव्र और मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। इसका प्रधान विषय संघर्ष है और वह अर्थ एवं काम का संघर्ष है। जो धर्म के दायरे में प्रवाहित हुआ है। इसके शान्ति पर्व में राजधर्म का वर्णन भारतीय राजनीति शास्त्र के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। महाभारत में अनेक आख्यानों और विषयों को देखकर यह भावना मन में उठती है कि यह एक व्यक्ति की रचना न होकर कई व्यक्तियों की कृति है, परन्तु आन्तरिक प्रमाणो एवं शैली के आधार पर यह सिद्ध होता है कि इसे एक मात्र व्यास ने ही लिखा है। भाषा तथा शैली की एक रूपता इसे एक ही व्यक्ति की रचना सिद्ध करती है।

पुराण

पुराण भारतीय संस्कृति की आधारशिला हैं अथवा इन्हें भारतीय संस्कृति का मेरु-दण्ड कहा जा सकता है। इनमें भारतीय सृष्टिक्रम-व्यवस्था, प्रलय, वंशानुचरित के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय भूगोल, रीति-नीति राजनीति का भी उपबृंहण किया गया है। पुराण शब्द अत्यन्त प्राचीन है। इसका उल्लेख ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर किया गया है जिसका अर्थ विशेषण रूप में है—प्राचीन या पूर्वकाल में होनेवाला वायुपुराण के अनुसार जो प्राचीन काल में जीवित हो, उसे पुराण कहते हैं। भारतीय वाङ्मय में 'पुराण इतिहास' शब्द पुराणों के लिए कालान्तर में रूढ़ हो गया है और पुराण शब्द इतिहास का द्योतक हुआ। इतिहास के साथ पुराण का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी दोनों का मिश्रित रूप प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन साहित्य में पुराण दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। प्रथम अर्थ प्राचीन वृत्त से सम्बद्ध विशिष्ट विद्या या शास्त्र के लिए है तो द्वितीय विशिष्ट साहित्य के लिए। पुराणों को पंचलक्षण—समन्वित माना जाता है जिनमें सर्ग, प्रति सर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित आतें हैं।

सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

—विष्णुपुराण, ३।६।२४

सर्ग का अर्थ सृष्टि की उत्पत्ति है। संसार या उससे सम्बद्ध नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति ही सर्ग है। प्रतिसर्ग सर्ग का विपरीत है जिसे प्रलय कहते हैं। इस ब्रह्माण्ड का स्वाभाविक रूप से ही प्रलय होता है जो चार प्रकार का है—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक। ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गए सभी राजाओं की भूत, भविष्य एवं वर्तमानकालीन सन्तान परम्पराएँ वंश कही जाती हैं। इनमें ऋषिवंश की भी परम्पराएँ आ जाती हैं। मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, ऋषि तथा भगवान् के अंशावतार ये छः प्रकार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की घटनाएँ मन्वन्तर कही जाती हैं। मन्वन्तर शब्द पुराणानुसार विभिन्न प्रकार की काल-गणना करने वाला शब्द है। मन्वन्तर १४ हैं और प्रत्येक मन्वन्तर के अधिपति को मनु कहते हैं। विभिन्न वंशों में उत्पन्न विशिष्ट वंशधरों तथा उनके मूल पुरुषों के चरित्र-वर्णन करने को वंशानुचरित कहते हैं। इनमें राजाओं और महर्षियों का चरित वर्णित होता है।

प्राचीन काल से ही पुराणों की संख्या १८ मानी जाती है। इनमें कुल चार लाख श्लोक हैं जिनकी तालिका इस प्रकार है। ब्रह्मपुराण—१० हजार, पद्म—५५ हजार, विष्णु—२३ हजार, शिव—२४ हजार, भागवत—१८ हजार, नारद—२५ हजार, मार्कण्डेय—९ हजार, अग्नि—१५ हजार ४ सौ, भविष्य—१४ हजार ५ सौ, ब्रह्म-वैवर्त्त—१८ हजार, लिंग—११ हजार, वराह—२४ हजार, स्कन्द ८१ हजार, वामन—१० हजार, कूर्म—१७ हजार, मत्स्य—१४ हजार, गरुड़—१९ हजार तथा ब्रह्माण्ड—१२ हजार।

विष्णु पुराण में पुराणों का जो क्रम दिया गया है वह बहुसम्मत से मान्य है। पुराणों का प्रतिपाद्य है सर्ग या सृष्टि जिसका पर्यवसान प्रतिसर्ग या प्रलय के रूप में होता है। इसी तत्त्व के आधार पर पुराणों के क्रम की संगति बैठ जाती है। सृष्टि के लिए ब्रह्म ने ब्रह्मा का रूप धारण किया, अतः वही सृष्टि का मूल है। सूची में 'ब्रह्म पुराण' को प्रथम स्थान आदि कर्त्ता ब्रह्मा के ही कारण दिया गया है। ब्रह्मा के विषय में भी जो जिज्ञासा होती है उसका उत्तर 'पद्मपुराण' में प्राप्त होता है। 'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि विष्णु की नाभी से जो कमल प्रकट हुआ उससे ही ब्रह्मा का जन्म हुआ था और उन्होंने घोर तपस्या करके नवीन सृष्टि की। पद्म-संभव ब्रह्मा के वर्णन के कारण विष्णु पुराण को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ। चतुर्थ स्थान वायुपुराण का है जिसमें शेषशायी भगवान् एवं शेष शय्या का निरूपण है। शेषशायी भगवान् का निवास क्षीर सागर है जिसका रहस्य श्रीमद्भागवत में बतलाया गया है। भागवत के अनन्तर नारद पुराण का नाम आता है। चूँकि नारद जी संतत भगवान् का मधुर स्वर में गुणानुवाद करते हैं, अतः भागवत के बाद 'नारदपुराण' को स्थान दिया गया है। प्रकृतिरूपिणी देवी को ही इस सृष्टि-चक्र का मूल माना गया है जिसका वर्णन 'मार्कण्डेय पुराण' में है, अतः सप्तम स्थान इसे ही प्राप्त है। घट के भीतर प्राण की भाँति ब्रह्माण्ड के भीतर अग्नि क्रियाशील रहती है; इसका प्रतिपादन 'अग्निपुराण' करता है। अतः इसे आठवाँ स्थान प्राप्त हुआ। अग्नि का तत्त्व सूर्य पर आधृत है और सूर्य का सर्वातिशायी महत्त्व 'भविष्य पुराण' में वर्णित है, अतः इसे नवाँ स्थान दिया गया है। पुराणों के अनुसार जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और संसार को ब्रह्म का विवर्त्त रूप मानकर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म के नानावतार होते हैं और वह विष्णु और शिव के रूप में प्रकट होता है। 'लिंग' एवं 'स्कन्द पुराण' का सम्बन्ध शिव के साथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाराह, वामन, कूर्म एवं मत्स्य का सम्बन्ध विष्णु के साथ है। 'गरुड़ पुराण' में मरणान्तर स्थिति का वर्णन है तथा अन्तिम पुराण 'ब्रह्माण्ड' है जिसमें दिखलाया गया है कि जीव अपने कर्म की गति के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए सुख-दुःख का अनुभव करता है। इस प्रकार सभी पुराणों के क्रम का निर्वाह सृष्टिविद्या के साथ हो जाता है।

श्रीमद्भागवत पुराण

श्रीमद्भागवत मध्यकालीन हिन्दी भक्ति काव्य का स्रोत रहा है, अतः उसका यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। यह पुराण वैष्णवों के बीच 'प्रस्थान चतुष्टय' के नाम से विख्यात है; सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन-परम्परा में इसका स्थान ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं गीता की भाँति महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह भक्ति-रस का आधार ग्रन्थ एवं धर्म का रसात्मक स्वरूप उपस्थित करने वाला शास्त्रीय ग्रन्थ भी है। श्रीमद्भागवत भारतीय वैदुष्य का चरमशिखर है, जिसमें नैष्कर्म्य भक्ति का प्रतिपादन तथा भगवान् की चिन्मय लीला का चिन्मय संकल्प एवं दिव्य बिहार का वर्णन करते हुए प्रेमित्व भावना का शास्त्रीय एवं व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें ब्रह्मविषयक जिन तीन बातों का प्राधान्य प्रदर्शित किया गया है, वे हैं—अधिष्ठानता, साक्षिता और निरपेक्षिता और इनके तीन रूपों—आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक—की भी व्यंजना हुई है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि श्रीकृष्ण ही परब्रह्म परमात्मा एवं भगवान् हैं।

श्रीमद्भागवत में १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय एवं १८ सहस्र श्लोक हैं। इसके वर्ण्य-विषयों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थरत्न का निर्माण सुनियोजित ढंग से भक्ति-तत्त्व के प्रतिपादनार्थ किया गया है और प्रत्येक स्कन्ध में 'प्रेमलक्षणा भक्ति' का निरूपण हुआ है। यद्यपि श्रीमद्भागवत में भक्ति के कई रूपों—वैधीभक्ति, नवधाभक्ति तथा निर्गुण भक्ति—का वर्णन एवं विवेचन है, पर इसके अनेक स्थलों पर यह बात दुहराई गयी है कि भक्त को परम सिद्धि की प्राप्ति प्रेमलक्षण के ही द्वारा हो सकती है। इसमें कोरे ज्ञान की निन्दा की गयी है। [दे० श्रीमद्भागवत, १।२।८ तथा १०।२३।६; १०।२३।३६] इस पुराण का प्रधान लक्ष्य है समन्वयवाद अर्थात् सांख्य, मीमांसा, योग, न्याय, वेदान्त आदि सभी दर्शनों के सिद्धान्तों का समन्वय करते हुए उनका पर्यवसान भक्ति में किया गया है। इसमें पाञ्चरात्र मत का प्राधान्य है जिसमें बतलाया गया है कि क्रियायोग को ग्रहण करके ही मनुष्य अमरत्व की उपलब्धि करता है। इसमें कई स्थलों पर शिव का भी महत्त्व प्रतिपादित किया गया है तथा उन्हें परम भागवत एवं वैष्णव बतलाया गया है। शिव को सभी विद्याओं का प्रवर्त्तक, सभी प्राणियों का ईश एवं साधु-जनों का एक मात्र आश्रय कहा गया है—ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम्। (१२।१०।८)। भागवत में वेदान्त-तत्त्व को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसका चरम प्रतिपाद्य तत्त्व निर्गुण ब्रह्म को ही माना गया हैं। इसमें वेदान्त-मत को भक्ति के साथ समन्वित करते हुए नवीन तथ्य प्रकट किये गए हैं।

अर्थगाम्भीर्य एवं अन्य विशेषताओं के कारण इसकी अनेक टीकाएँ रची गयी हैं; जिनमें श्रीधर स्वामी कृत "भावार्थ प्रकाशिका" श्रेष्ठ एवं प्राचीन है। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी है।

श्रीमद्भागवत की रचना सूत और सौनक संवाद के रूप में हुई है। इसे सर्व प्रथम शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को सुनाया था। इसकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़, पाण्डित्यपूर्ण एवं गम्भीर है जिसका रूप ग्रन्थ के आरम्भ से अन्त तक अक्षुण्ण है। वह समासप्रधान, अलंकृत, प्रतीक प्रधान तथा व्यंजना के गूढ़ साधनों से युक्त है। इसमें न केवल पद्य का प्रयोग है, अपितु कतिपय स्थलों में प्रवाहपूर्ण गद्य का भी समावेश किया गया है, जो प्रौढ़ता में कादम्वरी के समकक्ष है। इसकी भाषा को 'काव्यमयीललितभाषा' कहा जा सकता है। इसमें अनेक स्थलों पर प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है एवं वृक्षों की नामावली भी प्रस्तुत की गयी है; विशेषत: रासलीला के वर्णन में। श्रीमद्-वल्लभाचार्य ने इसकी भाषा को 'समाधि-भाषा' कहा है अर्थात् व्यास जी ने समाधिअवस्था में जिस परम तत्त्व की अनुभूति की थी उसका प्रतिपादन श्रीमद्भागवत में किया गया है।

महाकाव्य का विकास

संस्कृत में महाकाव्यविषयक प्रभूत साहित्य की रचना हुई है। संस्कृत महाकाव्यों के वीज वेदों के स्तुत्यात्मक काव्य की घटनाओं तथा संवादात्मक सूक्तों में निहित हैं। यम-यमी-संवाद, पुरूरवा-उर्वशी-संवाद, इन्द्र-अदिति-संवाद, इन्द्र-इन्द्राणी-संवाद, सरमा-पणीस-संवाद, इन्द्र-मरुत-संवाद नाटक तथा महाकाव्य के तत्त्वों से समन्वित हैं। ये सभी संवाद 'ऋग्वेद' के हैं। ये संवादसूक्त गद्यपद्यात्मक हैं, अतः ओल्डेनवर्ग ने यह विचार प्रकट किया कि अनुमानतः भारतीय महाकाव्यों का प्राचीनतम रूप गद्यपद्यात्मक रहा होगा। संस्कृत महाकाव्य का प्रारम्भ 'रामायण' और 'महाभारत' से होता है। रामायण ऐसा काव्य है जिसमें कला के माध्यम से जीवन की सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचना की गई है। 'रामायण' और 'महाभारत' में विभिन्न प्रकार के उपाख्यान हैं, जो संस्कृत महाकाव्यों के आधार रहे हैं। इन्हीं उपाख्यानों, आख्यानों, कथाओं एवं आख्यिकाओं का परिशोधन, परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन करते हुए महाकाव्यों का स्वरूप-विकास हुआ। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों की शैली एवं रूप-शिल्प के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 'महाभारत' की अपेक्षा 'रामायण' में काव्योत्कर्ष-कारक गुण एवं अन्विति का आधिक्य है। 'महाभारत' में इतिहास के तत्त्व प्रधान हैं और काव्य-गुण गौण है, पर रामायण प्रधान रूप से काव्य है और इसमें इतिहास के गुण गौण हैं। 'महाभारत' के आधार पर पुराणों का विकास हुआ तथा अलंकृत एवं सौन्दर्य शास्त्रीय जीवनदृष्टि के कारण 'रामायण' ने महाकाव्यों को जन्म दिया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तरवर्ती महाकाव्यों का प्रेरणा स्रोत मुख्यतः रामायण ही है। संस्कृत के अधिकांश लक्षण ग्रन्थ 'रामायण' को ही ध्यान में रखकर महाकाव्य का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। संस्कृत महाकाव्यों का परवर्ती विकास 'रामायण' के रूप-शिल्प एवं शैली के माध्यम से 'महाभारत' की विषय-वस्तु को लेकर हुआ है। महाकाव्यकारों ने अन्य पुराणों को भी अपना उपजीव्य बनाकर उनसे विषय-वस्तु ली है, पर उन्होंने उसे 'रामायण' की शैली में सुसज्जित और अलंकृत किया है। संस्कृत में ऐसे अनेक महाकाव्यों की सूचना प्राप्त होती है जो कालिदास के पूर्व लिखे जा चुके थे तथा उनकी विद्यमानता के सम्बन्ध में भी प्रचुर प्रमाण उपलब्ध होते हैं। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में 'देवर्षि चरित्र' नामक महाकाव्य के प्रणेता गार्ग्य कहे गए हैं। परम्परा में 'जाम्बवतीविजय' या 'पातालविजय' नामक महाकाव्य पाणिनि द्वारा रचित बताया जाता है, जिसमें १८ सर्ग थे। लगभग ३३ ग्रन्थों में इसके अस्तित्व की सूचना प्राप्त होती है। पाणिनिकालीन वैयाकरण व्याडि भी 'बालचरित' नामक महाकाव्य के प्रणेता माने जाते हैं। सूक्ति संग्रहों में वररुचि-रचित महाकाव्य के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। पतंजलि ने भी 'महाभाष्य' में 'वाररुचकाव्यं' का उल्लेख किया है। [दे० महाभाष्य, ४।३।११०] इनके काव्य का नाम 'स्वर्गारोहण' था। महाभाष्यकार पतंजलि भी महाकाव्य के प्रणेता कहे गए हैं। उन्होंने 'महानन्द' नामक महाकाव्य की रचना की थी, जिसका विवरण 'कृष्णचरित' के [महाराज समुद्रगुप्त रचित महाकाव्य] प्रारम्भिक तीन श्लोकों में प्राप्त होता है। इस महाकाव्य का सम्बन्ध मगध सम्राट् 'महानन्द' से था। इस प्रकार देखा जाता है कि संस्कृत में महाकाव्यों का उदय अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु पाणिनि से विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी तक की रचनाओं के पूर्ण परिचय प्राप्त नहीं होते।

संस्कृत महाकाव्यों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—पौराणिक, उत्थानकालीन या अभ्युत्थान-युगीन एवं ह्रासकालीन महाकाव्य। पौराणिक महाकाव्यों में 'रामायण' और 'महाभारत' आते हैं। वाल्मीकि ने स्थान-स्थान पर काव्य को अलंकृत करने का प्रयास किया है। इससे उनका काव्य और भी अधिक भास्वर हो उठा है। अलंकारों द्वारा रसाभिव्यक्ति करने में वे अत्यन्त पटु हैं। सरसता, स्वाभाविकता एवं प्रकृति-प्रेम उनकी निजी विशेषताएँ हैं। कालिदास ने वाल्मीकि का आधार ग्रहण करते हुए महाकाव्य के प्रकृत मार्ग की उद्भावना की है। उन्होंने प्रकृति-चित्रण की समस्त पद्धति वाल्मीकि से ही ग्रहण की, किन्तु उसमें अपनी प्रतिभा का प्रकाश भरकर उसे जीवन्त बनाया। यमक के माध्यम से द्रुतविलम्बित छन्द में प्रकृति-चित्रण की नवीन पद्धति उन्होंने ही चलाई। कालिदास के महाकाव्यों—'रघुवंश' एवं 'कुमारसम्भव'—में कथावस्तु का प्राचुर्य होते हुए भी भाव-व्यंजना, वस्तुव्यंजना एवं अभिव्यंजना—शिल्प का निखार दिखाई पड़ता है। उन्होंने मानव एवं प्रकृति के बीच एक ही भावधारा का पल्लव न कर दोनों में परस्पर साम्य दिखाया है और प्रकृति को मानवीय स्तर पर लाकर

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उसमें नवीन प्राणवत्ता भर दी है। कालिदास का रघुवंश संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी है। इसमें १९ सर्गों में रघुवंशी राजाओं का चरित-गान किया गया है। इसमें कवि ने इति वृत्तात्मक शैली में रसपेशलता भर दी है और भाव्य व्यंजना तथा काव्यमाधुर्य की दृष्टि से इसे मनोरम बना दिया है। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन है और दिलीप, रघु, अज तथा राम के चरित्र को शोभन, उदात्त और महान् बनाया गया है। कालिदास का दूसरा महाकाव्य 'कुमारसंभव' है जिसमें शिव-पार्वती के विवाह तथा कुमार या कार्त्तिकेय के जन्म की घटना का वर्णन है। इसके प्रारम्भिक आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा प्रणीत हैं और शेष सर्ग परवर्त्ती जोड़ हैं। इसमें शृङ्गार रस का प्राधान्य है और विशुद्ध कला की दृष्टि से कवि की रचना अनुपम है। कालिदास का समय प्रथम शताब्दी है। संस्कृत के बौद्ध कवियों में अश्वघोष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। चीनी परम्परा उन्हें कनिष्क के दरबार का कवि मानती है। उन्होंने 'सौन्दरनन्द' तथा 'बुद्धचरित' नामक दो महाकाव्यों की रचना की है। 'सौन्दरनन्द' की रचना १८ सर्गों में हुई है और बुद्ध के भाई नन्द का चरित वर्णित है जो अपनी प्रिया सुन्दरी तथा अन्य भौतिक सुखों का परित्याग कर बौद्धधर्म में दीक्षित हो जाते हैं। उनका 'बुद्धचरित' १८ सर्गों में है। इसमें गौतम बुद्ध के माता के गर्भ में आने से लेकर बौद्धत्व प्राप्त करने तक की घटना का वर्णन है। अश्वघोष की रचना का प्रधान उद्देश्य बौद्धधर्म के विचारों का, काव्य के परिवेश में प्रस्तुत कर, जन-साधारण के बीच प्रचार करना है। उन्होंने 'शारिपुत्रप्रकरण' की भी रचना की है। अश्वघोष रसविधायक कलाकार हैं। उनकी कविता में शृङ्गार, करुण एवं शान्तरस की वेगवती धारा अबाध गति से प्रवाहित होती है तथा अलंकार-विधान स्वाभाविक एवं रसोत्कर्षविधायक है। अपने महाकाव्यों में कवि ने वस्तुओं एवं कार्य व्यापारों का कुशलतापूर्वक मूर्त्त चित्रण किया है। अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे।

कालिदास के पश्चात् संस्कृत महाकाव्य में नया मोड़ आया और 'विचित्रमार्ग' की स्थापना हुई तथा कवियों ने पाण्डित्यमय वातावरण में साहित्यिक गरिमा प्रदर्शित करने का प्रयास किया। उन्होंने युग की विशिष्टता एवं साहित्यिक चेतना के अनुरूप कालिदास की रसमयी पद्धति का परित्याग कर अलंकृत शैली को अपनाया जिसमें विषय की अपेक्षा वर्णन-प्रकार पर अधिक ध्यान दिया गया था और सरलता के स्थान पर पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रबलता थी। इस युग के कवियों ने महाकाव्यों को अधिक अलंकृत, सुसज्जित एवं बोझिल बनाने के लिए दर्शन एवं कामशास्त्र जैसे शास्त्रों का भी उपयोग किया। 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्य के प्रणेता भारवि (६०० ई०) इस नवीन शैली के प्रवर्त्तक थे और माघ तथा हर्ष ने इसे और भी अधिक परिष्कृत और विकसित किया। 'किरातार्जुनीय' में महाभारत के वन पर्व की कथा को आधार बनाया गया है। इसमें कुल १८ सर्ग हैं। महाकाव्य का प्रारम्भ 'श्री' शब्द से हुआ है और प्रत्येक शब्द के सर्ग

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्त में लक्ष्मी शब्द आया है। द्यूतक्रीड़ा में हारने के बाद युधिष्ठिर का वन में जाना और इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए अर्जुन का तपस्या करना ही इस महाकाव्य का वर्ण्य-विषय है। इसमें किरात वेशधारी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध का वर्णन है और उनके युद्ध-कौशल से प्रसन्न होकर उन्हें शिव द्वारा पाशुपतास्त्र प्रदान करने का उल्लेख है। इसके नायक अर्जुन हैं और प्रधान रस वीर है। अप्सराओं का विहार शृङ्गार रस है जो अंग-रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य की परिभाषा के अनुसार इसमें सन्ध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी आदि का मनोरम वर्णन है तथा वस्तुव्यंजना के रूप में जल-क्रीड़ा, सुरत आदि का समावेश किया गया है। कवि ने सम्पूर्ण १५ वें सर्ग का वर्णन चित्रकाव्य के रूप में किया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर एवं आकर्षक संवाद, काल्पनिक चित्र तथा रमणीय वर्णन के द्वारा इसके आधारफलक को विस्तृत किया है।

कुमारदास ने (५१७ ई०—५२६) 'जानकी हरण' महाकाव्य की रचना की है। वे जनश्रुति के अनुसार सिंहल के राजा थे। यह महाकाव्य बीस सर्गों में रचित है। इसकी रचना वैदर्भी रीति में हुई है जिस पर कालिदास का प्रभाव है।

भट्टि—इन्होंने 'रावणवध' या 'भट्टि काव्य' (रावण वध) की रचना २२ सर्गों में की है और संस्कृत में शास्त्रकाव्य लिखने की परम्परा का प्रवर्त्तन किया है। भट्टि मूलतः वैयाकरण और अलंकार शास्त्री हैं जिन्होंने व्याकरण के जटिल और दुरूह उदाहरण उपस्थित कर 'भट्टिकाव्य' की रचना की है। भट्टि का समय सातवीं शती का मध्य है। इन्होंने 'रावणवध' में रामकथा का वर्णन किया है।

माघ—माघ ने 'शिशुपाल वध' नामक युगप्रवर्त्तक महाकाव्य की रचना २० सर्गों में की है। इनका समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। 'शिशुपाल वध' में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा बीस सर्गों में वर्णित है। महाभारत की छोटी घटना के आधार पर इस महाकाव्य की कथावस्तु संघटित की गई है और श्री कृष्ण के जीवन की एक लघु घटना को महाकाव्य का रूप दिया गया है। जहाँ तक महाकाव्योचित कथानक का प्रश्न है, 'शिशुपाल वध' की कथावस्तु संक्षिप्त होने के कारण अपर्याप्त है। इसके अनेक प्रसंग जैसे पानगोष्ठी, रूप-विन्यास, प्रातः, सन्ध्या एवं ऋतु वर्णन आदि कथानक से सम्बद्ध न होने के कारण स्वतन्त्र रूप से लिखे गए से लगते हैं और कथा वस्तु के विकास में इनका कोई योग नहीं है। तीसरे से तेरहवें सर्ग तक 'शिशुपाल वध' के अनेक वर्णन आनुषङ्गिक हैं। इसमें कवि ने मुख्य और प्रासंगिक घटनाओं के चित्रण में अपना सन्तुलन खो दिया है। उसका ध्यान प्रबन्ध-निर्वाह की अपेक्षा अपने युग की प्रचलित साहित्यिक विशेषताओं की ओर अधिक होने के कारण ही 'शिशुपाल वध' में वन, नगर, पर्वत, चन्द्रोदय, सूर्योदय, युद्ध, नायिकाभेद, पानगोष्ठी, रतिक्रीड़ा, जलविहार एवं विविध शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन किया गया है।

श्री हर्ष—श्री हर्ष कालिदासोत्तर काल के कलावादी कवियों में सर्वोच्च स्थान के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अधिकारी हैं। उन्होंने 'नैषधचरित' नामक महाकाव्य की रचना २२ सर्गों में की है, जिसमें नल-दमयन्ती की प्रणय-गाथा का वर्णन है। श्रीहर्ष कन्नौजनरेश जयचन्द के दरबारी कवि थे। उनका महाकाव्य दूरारूढ़ कल्पना, पाण्डित्य-प्रदर्शन, आलंकारिक सौन्दर्य, रसपेशलता एवं अद्भुत अप्रस्तुत-योजना का अपूर्व भाण्डागार है। उन्होंने कोरे काव्य-रसिकों के लिए अपने महाकाव्य का निर्माण न कर पण्डितों के मनोविनोद के निमित्त अध्ययनजन्य ग्रन्थिलता के भार से बोझिल 'ग्रन्थग्रन्थि' का निर्माण किया था। उनका दार्शनिक ज्ञान अत्यन्त प्रौढ़ था, अतः बीच-बीच में उन्होंने 'नैषधीयचरित' को निगूढ़ दार्शनिक रहस्यों से संपृक्त कर दिया है। 'नैषध' का सत्रहवाँ सर्ग तो एकमात्र दार्शनिक सिद्धान्तों से ही आपूर्ण है। विशुद्ध कवित्व की दृष्टि से श्रीहर्ष भारवि और माघ से बढ़कर हैं। भारवि और माघ द्वारा उद्भावित एवं अतिशायित काव्यविधान को नैषधकार ने चरमोत्कर्ष प्रदान किया है। उनमें नवीन भावों, आकर्षक कल्पनाओं, नूतन शब्द-संगठनों, व्यंजनाओं एवं चित्रों को उत्कृष्ट करने की अद्भुत क्षमता दिखाई पड़ती है। श्रीहर्ष ने युगीन सांस्कृतिक चेतना को आत्मसात् करते हुए अपनी संवेदना को उससे प्रभावित किया है। तत्कालीन ह्रासोन्मुखी हिन्दू समाज की भावनाओं का चित्रण नैषध में पूरे प्रकर्ष पर है।

संस्कृत में कालिदासोत्तर महाकाव्य-लेखन की परम्परा में युगान्तर के चिह्न स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे थे। फलतः उसके कलेवर में ही नहीं अन्तःप्रवृत्ति में भी परिवर्त्तन परिलक्षित हुआ। आगे चलकर महाकाव्य चित्रकाव्य बन गए और यमक तथा श्लेषप्रधान काव्य की रचना प्रारम्भ हुई। द्व्यर्थक एवं त्र्यर्थक महाकाव्यों की रचना होने लगी फलतः कविराज ने (११ वीं शताब्दी) 'राघवपाण्डवीय', हरिदत्तसूरि (१२ वीं शताब्दी) ने 'राघव-नैषधीय', सोमेश्वर ने 'राघवयादवीय', अनन्ताचार्य ने 'यादवराघव-पाण्डवीय', विद्यामाधव ने 'पार्वती रुक्मिणीय' तथा अनन्तसूरि ने 'नलहरिचन्द्रोदय' नामक महाकाव्यों की रचना की। इस प्रकार कालिदासोत्तर काल के महाकाव्यों में पाण्डित्य-प्रदर्शन, शैली वैचित्र्य, अक्षराडम्बर, अलंकार-विन्यास एवं वर्णन-बाहुल्य की प्रधानता हुई और महाकाव्य सहज एवं सुकुमार मार्ग को छोड़कर विचित्र मार्ग की ओर उन्मुख हुए जिसे ऐतिहासिकों ने ह्रासोन्मुखी रचना की संज्ञा दी। इन महाकाव्यों में अलंकृत शैली का विकट रूप प्राप्त हुआ और एक ही काव्य में राम, कृष्ण एवं पाण्डवों की कथा प्रकट होने लगी और सर्ग के सर्ग एक ही अक्षर में लिखे जाने लगे।

खण्डकाव्य—संस्कृत में गीतिकाव्यों को खण्ड काव्य कहा गया है जिनका आकार महाकाव्य की अपेक्षा लघु रहता है। ये काव्य प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही रूपों में प्राप्त होते हैं। इसी श्रेणी में सन्देश काव्य भी आते हैं जिनका साहित्य विशाल है। सन्देशकाव्य को दूतकाव्य भी कहते हैं। इसमें विरही अथवा नायिका द्वारा अपनी प्रेयसी या नायक के पास दूत द्वारा संदेश भेजने का वर्णन होता है। इन सन्देश काव्यों का स्रोत 'वाल्मीकि

 CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रामायण' में प्राप्त होता है, जहाँ हनुमान् द्वारा राम के सन्देश को सीता तक पहुंचाने का वर्णन है। महाकवि कालिदास ही इस काव्य-रूप के प्रथम प्रयोक्ता हैं, जिन्होंने 'मेघदूत' या 'मेघसन्देश' नामक प्रौढ़ काव्य की रचना की है। उनके अनुकरण पर अनेक सन्देश काव्यों की रचना हुई है। सन्देशकाव्य के दो विभाग हैं—पूर्व और उत्तर। पूर्वभाग में नायक या नायिका का वर्णन विरही के रूप में किया जाता है। इसके बाद दूत का दर्शन, उसका विरही द्वारा स्वागत एवं प्रशंसा तथा उसकी शक्ति एवं सामर्थ्य का वर्णन किया जाता है। पुनः उससे सन्देश पहुंचाने की प्रार्थना की जाती है और गन्तव्य स्थान का मार्ग बतलाया जाता है। यहाँ तक पूर्व भाग की समाप्ति हो जाती है। उत्तर भाग में गन्तव्य स्थान का वर्णन, प्रिय या प्रिया के निवास-स्थान का विवरण तथा नायक या नायिका की विरह दशा एवं तज्जन्य संभावना का कथन किया गया है। तदनन्तर संदेश सुनाने की प्रार्थना की जाती है तथा सन्देश की सत्यता की पुष्टि के लिए उसे सन्देश भेजनेवाले की विशेषताओं एवं अन्तरंग जीवन की गुप्त घटनाओं की चर्चा करनी पड़ती है। अन्त में सन्देशवाहक के प्रति शुभकामना प्रकट करते हुए काव्य की समाप्ति की जाती है। महाकवि कालिदास के मेघदूत का यही वर्ण्यविषय है तथा परवर्त्ती कवियों ने भी कुछेक परिवर्त्तनों के साथ यही कथानक रखा है। सन्देश काव्य का प्रधान रस वियोग शृङ्गार होता है जिसमें प्रकृति को माध्यम बनाकर नाना प्रकार की चेष्टाओं एवं भंगिमाओं का वर्णन किया जाता है।

सन्देश काव्य की प्रथम रचना 'मेघदूत' एवं घटकर्पर कवि विरचित 'घटकर्परकाव्य' है। इनमें से किसकी रचना प्रथम है, इसका निश्चय अभी तक नहीं हो सका है। 'मेघदूत' की भषानुभूति रामायण से प्रभावित है, तो 'घटकर्परकाव्य' पर 'महाभारत' का ऋण है। इस कवि का वास्तविक नाम अभी तक अज्ञात है। अभिनव गुप्ताचार्य ने इस पर टीका लिखी है जिसमें उन्होंने इसे कालिदास की रचना माना है। सन्देशकाव्य का परवर्त्ती विकास अधिकांशतः मेघदूत के ही आधार पर हुआ और उसमें 'घटकर्पर-काव्य' का भी महत्त्वपूर्ण योग रहा। कृष्णाचार्य का 'मेघसन्देश विमर्श', 'रामचन्द्र लिखित 'घनवृत्तम्', कृष्णमूर्त्तिकृत 'यक्षोल्लास'; रामशास्त्री रचित 'मेघप्रतिसन्देश' तथा मैथिल कवि म० म० परमेश्वर झा प्रणीत 'यक्षसमागम' आदि काव्य उपर्युक्त ग्रन्थों से प्रभावित होकर ही लिखे गए हैं। सन्देश काव्य की रचना में जैन कवियों का महत्त्वपूर्ण योग है। जिनसेन जैन ने तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र को 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य में चार सर्गों में वर्णित किया गया है। इसमें ३६४ पद्य हैं जिनमें १२० श्लोक 'मेघदूत' के हैं। इनका समय ८१४ ई० है। विक्रम कवि (१५ वीं शती) ने 'नेमिदूत' की रचना की है जिसमें स्वामी नेमिनाथ के जीवन का वर्णन है। अन्य जैन कवियों की रचनाएँ हैं—सुन्दरगणि-विरचित 'शीलदूत', अज्ञातनामा कविकृत 'चेतोदूत' तथा विमल कीर्त्ति (१७ वीं शती) रचित 'चन्द्रदूत'। सन्देश काव्यों की प्रौढ़ परम्परा १२वीं शताब्दी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से प्रारम्भ हुई। १२ वीं शती के धोई कवि विरचित 'पवन दूत' एक उत्कृष्ट रचना है। १३ वीं शताब्दी के अवधूत रामयोगी ने १३८ श्लोकों में 'सिद्धदूत' नामक सन्देश काव्य की रचना की। १५ वीं शताब्दी के विष्णुदास कविकृत 'मनोदूत' तथा रामशर्मा का 'मनोदूत' माधव कवीन्द्र भट्टाचार्य कृत' 'उद्धव दूत' (१६ वीं शताब्दी), रूप गोस्वामी का 'उद्धवशतक' (१७ वीं शताब्दी) आदि इस परम्परा की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। १७वीं शताब्दी में रुद्रन्याय वाचस्पति कृत 'पिकदूत' वादिराज कृत 'पवनदूत' आदि उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

मुक्तक काव्य

संस्कृत में मुक्तक रचनाएँ तीन प्रकार की प्राप्त होती हैं—नीतिपरक मुक्तक, स्तोत्रमुक्तक तथा शृङ्गारमुक्तक। नीतिपरक मुक्तकों में सूक्तियों की प्रधानता है तथा उनमें उपदेशात्मक तत्त्व भी गौण रूप से विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी रचनाएँ हैं जिनमें उपदेश के तत्त्व प्रधान होते हैं और नीति-विषयक सूक्तियाँ गौण होती हैं। इन मुक्तकों का प्रारम्भ कब से हुआ, यह कहना कठिन है पर ग्रन्थ रूप में 'चाणक्य नीति-दर्पण या 'चाणक्यशतक' अत्यन्त प्राचीन रचना है। इसमें कुल ३४० श्लोक हैं। जनाश्रय कृत 'छन्दोविचिति' (७०० ई०) में कुछ नीति विषयक श्लोक उद्धृत हैं जिनके रचयिता मथुरा निवासी सुन्दर पाण्ड्य कहे जाते हैं। इन्होंने 'नीति द्विषष्टिका' नामक नीति ग्रन्थ की रचना की थी। इनका समय ५ वीं शताब्दी है। बौद्ध विद्वान् शान्तिदेव (६०० ई०) कृत नीति विषयक तीन ग्रन्थ हैं—'बोधिचर्यावतार', 'शिक्षासमुच्चय' तथा 'सूत्रसमुच्चय'। ७५० वि० सं० में भल्लट ने 'भल्लटशतक' नामक अन्योक्ति प्रधान मुक्तकों की रचना की थी। इन्होंने हाथी, भौंरा, चातक, मृग, सिंह आदि के माध्यम से मानव जीवन पर घटित होने वाले कई विषयों का वर्णन किया है। अन्योक्ति मुक्तक लिखने वालों में पण्डितराज जगन्नाथ अत्यन्त प्रौढ़ कवि हैं। उन्होंने 'भामिनी विलास' में अत्यन्त सुन्दर अन्योक्तियाँ लिखी हैं। नीति परक मुक्तककारों में भर्तृहरि का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने नीति प्रधान और वैराग्य प्रधान रचनाओं को दो ग्रन्थों—'नीतिशतक' और वैराग्यशतक'—में संकलित किया है। 'नीतिशतक' में सम्पूर्ण मानव जीवन का सर्वेक्षण करते हुए विद्या, वीरता, साहस, मैत्री, उदारता, परोपकारिता, गुणग्राहकता आदि विषयों का प्रभावोत्पादक शैली में वर्णन किया गया है। 'वैराग्यशतक' में जीवन की क्षणभंगुरता प्रदर्शित कर विषयासक्त प्राणी का दयनीय एवं उपहासास्पद चित्र खींचा गया है। एतद्विषयक अन्य ग्रन्थों के नाम हैं—'कलिविडम्बन'। (१७ वीं शती, नीलकण्ठ दीक्षित कृत) 'सभारंजकशतक' 'शान्तिविलास' तथा 'वैराग्यशतक' वेंकटध्वरि रचित (१७ वीं शताब्दी) 'सुभाषित कौस्तुभ' वल्लाल कवि कृत 'बल्लालशतक' शम्भुकृत 'अन्योक्तिमुक्तामाला' तथा वीरेश्वर रचित 'अन्योक्ति शतक'।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत में शृङ्गार मुक्तक की भी सशक्त परम्परा रही है। इसका प्रारम्भ पाणिनि एवं पतंजलि से भी पूर्व हुआ है। सुभाषित संग्रहों में पाणिनि के नाम से जो पद्य उपलब्ध हैं उनमें कई शृङ्गार प्रधान हैं। शृङ्गार मुक्तकों का विधिवत् प्रारम्भ महाकवि कालिदास से ही माना जाता है। उनका 'ऋतुसंहार' इस श्रेणी के काव्यों की पहली रचना है। 'शृङ्गारतिलक' 'पुष्पबाणतिलक' तथा 'राक्षसकाव्य तीन अन्य रचनाएँ भी शृङ्गारी काव्य के अन्तर्गत आती हैं जिनके रचयिता कालिदास कहे जाते हैं। पर, वे कालिदास नामधारी कोई अन्य व्यक्ति हैं। 'घटकर्पर' नामक कवि ने भी 'शृङ्गारतिलक' की रचना की थी जिसमें २२ पद्य हैं। इसमें यमक की कलाबाजी प्रदर्शित की गई है, अतः इसका भाव पक्ष दब गया है। शृङ्गारी मुक्तक लिखने वालों में भर्तृहरि का नाम गौरवपूर्ण है। उन्होंने 'शृङ्गारशतक' में स्त्रियों के बाह्य एवं आभ्यन्तर सौन्दर्य एवं भंगिमाओं का अत्यन्त मोहक चित्र खींचा है।

'अमरुकशतक' के रचयिता महाकवि अमरुक इस श्रेणी के मूर्धन्य कवि हैं। शृङ्गार रस के विविध पद्यों का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित कर उन्होंने अकृत्रिम एवं प्रभावोत्पादक रंग भरने का प्रयास किया है। ग्यारहवीं शताब्दी में बिल्हण नामक काश्मीरी कवि ने 'चौरपंचाशिका' की रचना की जिसमें उन्होंने अपनी प्रणय कथा कही है। संस्कृत शृङ्गार मुक्तक काव्य में दो सशक्त व्यक्तित्व गोवर्धनाचार्य एवं जयदेव का है। गोवर्धनाचार्य ने 'आर्यासप्तशती' में ७०० आर्याएँ लिखी हैं। जयदेव के 'गीतगोविन्द' में सानुप्रासिक सौन्दर्य, कलितकोमलकान्त पदावली एवं संगीतात्मकता तीनों का सम्मिश्रण है। 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर अनेक काव्यों की रचना हुई जिनमें हरिशंकर एवं प्रभाकर दोनों ने ही 'गीतराघव' नामक पुस्तकें (एक ही नाम की) लिखीं। श्री हर्य्याचार्यकृत 'जानकीगीता' हरिनाथ कृत 'रामविलास' आदि ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं। परवर्ती कवियों ने नायिकाओं के नख-शिख-वर्णन को अपना विषय बनाया। १८ वीं शताब्दी को विश्वेश्वर ने 'रोमावली शतक' की रचना की। शृङ्गारी मुक्तक लिखने वाले कवियों में पण्डितराज जगन्नाथ भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने 'भामिनी विलास' में उच्च कोटि के शृङ्गार परक श्लोक प्रस्तुत किये हैं।

स्तोत्रमुक्तक—संस्कृत में स्तोत्र साहित्य अत्यन्त विशाल और हृदय ग्राही है। धार्मिक भावना का प्राबान्य होने के कारण स्तोत्र काव्य का प्रचार जनसाधारण एवं भक्तजनों में अधिक हुआ है। इसमें अनुराग तथा विराग दोनों प्रकार की भावनाएँ परिव्याप्त हैं। अतः आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से इसकी लोकप्रियता सर्वव्यापक है। अपने आराध्य की महत्ता और अपनी दीनता का निष्कपट भाव से प्रदर्शन करते हुए संस्कृत भक्त कवियों ने अपूर्व तन्मयता के साथ हृदय के स्वतः स्फुरित उद्गारों को व्यक्त किया है। वह भगवान् की दिव्य विभूतियों का दर्शन कर आश्चर्य चकित हो जाता है एवं उनकी विशाल हृदयता तथा असीम अनुकम्पा को देखकर उनके अहेतुक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्नेह का गान करते हुए आत्मविस्मृत हो जाता है। सांगीतिक तत्वों के अतिरिक्त शब्द सौष्ठव एवं अभिव्यक्ति-सौन्दर्य स्तोत्रों की व्यंजना में अधिक आकर्षण भर देते हैं। संगीतात्मक परिवेश में काव्यात्मक लालित्य की योजना कर संस्कृत के भक्त कवियों ने ऐसे साहित्य का सर्जन किया है जिसका मादक आकर्षण आज भी उसी रूप में है।

स्तोत्र साहित्य की परम्परा का प्रारम्भ वेदों से ही होता है। वैदिक साहित्य में ऐसे अनेक मन्त्र हैं जिनमें मानव आत्मा का ईश्वर के साथ बालक अथवा प्रेमिका जैसा सम्बन्ध स्थापित किया गया है। संस्कृत में स्तोत्र साहित्य तीन रूपों में प्राप्त है—हिन्दू स्तोत्र, जैन स्तोत्र तथा बौद्ध स्तोत्र।

हिन्दूस्तोत्र— स्तोत्रों में प्रमुख स्थान 'शिवमहिम्नस्तोत्र' को दिया जाता है। इसकी रचना शिखरिणी छन्द में हुई है तथा प्रत्येक पद्य में शिव की महिमा का बखान करते हुए एक कथा दी गई है। सम्प्रति इसके ४० श्लोक प्राप्त होते हैं पर मधुसूदन सरस्वती ने ३२ श्लोकों पर ही अपनी टीका लिखी है। इसका रचना-काल ८ वीं शताब्दी है। मयूर भट्ट और बाणभट्ट की दो रचनाएँ हैं क्रमशः 'सूर्यशतक' और 'चण्डीशतक' जिनकी रचना स्रग्धरावृत्त में हुई है। दोनों में१००-१०० श्लोक हैं तथा ह्रासोन्मुखी विशेषताओं का आकलन है। श्लेषसमासान्त पदावली की गाढ़बन्धता तथा आनुप्रासिक सौन्दर्य के द्वारा संगीतात्मक संक्रान्तता की व्यंजना इनकी अपनी विशेषता है। दोनों में बाण की रचना कलात्मक समृद्धि की दृष्टि से बढ़कर है। कालान्तर में जब स्तोत्र सम्बन्धी प्रचुर साहित्य की रचना हुई तो कवियों का ध्यान उत्तानशृङ्गार उक्तिवैचित्र्य एवं सुष्ठु शब्द विन्यास की ओर गया फलतः लक्ष्मणकृत 'चण्डीकुचपञ्चाशिका' सदृश रचनाओं का निर्माण हुआ जिसमें ५० श्लोकों में देवी जी के कुचों का वर्णन है। शंकराचार्य ने वेदान्त विषयक दो सौ स्तोत्रों की रचना की है। तथा अद्वैतवाद का प्रतिष्ठापक होते हुए भी शिव, विष्णु, गंगा आदि का स्तवन किया है जिनमें दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ भक्ति का मणिकांचन योग दिखाई पड़ता है। 'शिवापराधक्षमापन' 'मोहमुद्गर' 'चर्पटपञ्जरी' 'दशश्लोकी' आत्मशतक आदि श्लोकों में दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हुई है। कुलशेखर कृत 'मुकुन्दमाला' एवं यामुनाचार्य के 'आलवन्दारस्तोत्र वैष्णव मत के स्तोत्रों में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। लीलाशुक रचित 'कृष्णकर्णामृत' महाप्रभु चैतन्य का परमप्रिय स्तोत्र है। इसमें भाव सुन्दर एवं चमत्कारी है तथा भाषा रस पेसल है। वेंकटध्वरी ने लक्ष्मीसहस्र नामक स्तोत्र काव्य में लक्ष्मी जी की स्तुति एक सहस्र श्लोकों में की है। सोमेश्वरने १००श्लोकोंमें'रामशतक'की रचना स्रग्धरा वृत्त में की है। मधुसूदन सरस्वती ने (१६वीं शती)'आनन्दमन्दाकिनी'नामक स्तोत्रमें विष्णु के स्वरूप का मधुर चित्रण किया है। पण्डितराज जगन्नाथ कृत'भामिनीविलास' में पाँच लहरियाँ हैं— करुणा, यमुना, गंगा, लक्ष्मी तथा सुधालहरी। इन स्तुतियों में कविता का स्वाभाविक प्रवाह तथा कल्पना का मोहक चित्र है। भगवान् शंकर की स्तुति अनेक कवियों ने लिखी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। काश्मीरी कवियों ने अनेक शिवस्तोत्रों की रचना कर स्तोत्र साहित्य को समृद्ध किया है। इनमें उत्पल देव कृत 'शिवस्तोत्रावली' एवं जगद्धर रचित 'स्तुतिकुसुमाञ्जलि' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अन्य शैवस्तोत्र हैं—नारायण पण्डिताचार्य कृत 'शिवस्तुति' तथा गोकुलनाथ कृत 'शिवशतक'।

जैनस्तोत्र—जैन स्तोत्रों में मानतुंगकृत 'भक्तामर' तथा सिद्धसेन दिवाकर रचित 'कल्याणमन्दिर' भाषा सौष्ठव एवं भावों की मंजुल अभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। चौबीस तीर्थंकरों के पृथक् पृथक् समय में स्तोत्र लिखे गये हैं। महायान सम्प्रदाय के बौद्धों ने संस्कृत को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इस सम्प्रदाय में शुष्कज्ञान की अपेक्षा भक्तितत्व पर अधिक बल दिया गया है। शून्यवाद के आचार्य नागार्जुन ने भी भक्तिस्तोत्रों की रचना की थी। इनके चार श्लोक 'चतुस्तव' के नाम से विख्यात हैं।

अधिकांश स्तोत्र ग्रन्थों में शृङ्गारिकता शब्दजाल एवं श्लेष तथा यमक के प्रति आकर्षण दिखाई पड़ता है। इसके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि स्तोत्र साहित्य पर कामशास्त्र का प्रभूत प्रभाव पड़ा और नखशिख की परिपाटी का समावेश हुआ।

कथा-साहित्य

भारत वर्ष को संसार की महानतम कथा शृङ्खलाओं को प्रारम्भ करने का श्रेय है। भारतीय आख्यायिका साहित्य को पशु कथा तथा लौकिक आख्यायिका के रूप में विभाजित किया जा सकता है। पशु आख्यायिका का रूप वैदिक वाङ्मय में भी दिखाई पड़ता है। विश्व पशु कथा की परम्परा में पञ्चतन्त्र भारत की महान् देन है। प्राचीन समय से ही इसके अनुवादों की धूम मची हुई है। इसके लेखक विष्णुशर्मा हैं। इसमें सरल भाषा में अनेक पशु कथाएँ वर्णित हैं जिनमें जीवन की विविध समस्याओं का समाधान किया गया है। ये कथाएँ मूलतः गद्य में हैं किन्तु बीच बीच में प्रचुर मात्रा में पद्यों का भी समावेश कर विषय को अधिक स्पष्टता प्रदान की गई है। पञ्चतन्त्र में पाँच तन्त्र या विभाग हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धिविग्रह, लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षित कारक। इसके प्रत्येक अंश में एक मूल कथा होती है और उसको पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएँ गुंफित होती हैं। इसका रचनाकाल अनिश्चित है, किन्तु डॉ० हर्टेल के अनुसार (प्रसिद्ध जर्मन विद्वान्) इसका समय द्वितीय शताब्दी है। उन्होंने ही अत्यन्त श्रम के साथ इसका प्रामाणिक संस्करण खोज निकाला था। पंचतंत्र के पश्चात् दूसरा लोक प्रिय ग्रन्थ 'हितोपदेश' है जिसके रचयिता नारायण पण्डित हैं। ये बंगाल नरेश धवल चन्द्र के सभाकवि थे। इनका समय १४ वीं शताब्दी के आस पास है। स्वयं ग्रन्थकार ने स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थ का मूलाधार पंचतन्त्र है। 'हितोपदेश' के चार विभाग हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह एवं सन्धि। इसमें लेखक ने शिक्षाप्रद कथाओं के माध्यम से राजनीति एवं अन्य सामाजिक नियमों की शिक्षा दी है। इस पुस्तक की रचना मूलतः गद्य में हुई है, पर स्थान-स्थान पर प्रचुर मात्रा में पद्यों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का समावेश किया गया है, जिनकी संख्या ६७९ है। इसकी शैली बोधगम्य एवं बालोपयोगी है। संस्कृत में लोककथा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना 'बृहत्कथा' है। इसका मूल रूप पैशाची भाषा में गुणाढ्य नामक लेखक द्वारा रचित था जो राजा हाल के सभा-पण्डित थे। 'बृहत्कथा' का मूलरूप नष्ट हो चुका है और इसके तीन संस्कृत अनुवाद प्राप्त होते हैं—बुध स्वामी कृत 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह', क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर'। इन अनुवादों में गुणाढ्य रचित 'वड्डकहा' का मूलरूप कितना सुरक्षित है, प्रमाणाभाव में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संस्कृत के अन्य प्रसिद्ध लोक कथाओं में 'वेतालपञ्चविंशति', 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' तथा 'शुकसप्तति' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'वेतालपञ्चविंशति' में २५ कथाओं का संग्रह है जिसका लेखक शिवदास नामक विद्वान् हैं। इसका समय १४८७ ई० के पूर्व है। 'विक्रमचरित' या सिंहासन द्वात्रिंशिका' में ३२ पुतलियों की ३२ कथाएँ दी गई हैं। इसमें राजा भोज की ३२ पुतलियों द्वारा उतनी ही कथा सुनाने का वर्णन है। इसके दो रूप प्राप्त होते हैं गद्यबद्ध और पद्यबद्ध। इसका समय तेरहवीं शताब्दी से प्राचीनतर नहीं है। 'शुकसप्तति' में एक सुग्गे द्वारा अपनी गृहस्वामिनी को कथा सुनाने का वर्णन है जो अपने पति के परदेश गमन पर भ्रष्टाचार में प्रवृत्त होने जा रही है। इसका समय १०वीं शताब्दी है। संस्कृत में जैन कवियों ने अत्यन्त ही मनोरंजक कहानियाँ लिखी हैं। इन्होंने लोकप्रचलित धूर्त्त, विट, मूर्ख एवं स्त्रियों से सम्बद्ध कथाएँ लिखी हैं। जैन लेखक हेमविजयगणि ने 'कथारत्नाकर' नामक २५६ छोटी-छोटी कथाओं का ग्रन्थ लिखा है, जिसका निर्माणकाल सत्रहवीं शताब्दी है। जैन कथाओं का मुख्य उद्देश्य जैन-सिद्धान्त के प्रचार का रहा है, अतः साहित्यिक तत्त्व गौण पड़ गया है।

विद्यापति कृत 'पुरुषपरीक्षा' शिवदास कृत 'कथार्णव' बल्लाल सेन रचित 'भोजप्रबन्ध' मनोहर लोककथा-ग्रन्थ हैं। इनका रचनाकाल १५वीं शती के बाद का है। इसी प्रसंग में बौद्ध ग्रन्थ 'अवदानशतक' तथा आर्यशूर कृत 'जातकमाला' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गद्य साहित्य

संस्कृत गद्य-लेखन की परम्परा वैदिक संहिताओं की तरह प्राचीन है। कृष्ण यजुर्वेद में गद्य का प्राचीनतम रूप उपलब्ध है। 'अथर्ववेद' का छठा भाग भी गद्य रूप में है। परवर्त्ती साहित्य में ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में गद्य का व्यावहारिक रूप उपलब्ध होने लगता है जो वैदिक गद्य की परम्परा का प्रौढ़ एवं संवर्धनशील रूप प्रस्तुत करता है। कालान्तर में तत्त्वज्ञान, व्याकरण, विज्ञानविषयक ग्रन्थ, ज्योतिष तथा टीका ग्रन्थों में गद्य के साहित्यिक, सहज एवं अलंकृत रूप के दर्शन होते हैं और इनमें संस्कृत गद्य अपने परिनिष्ठित रूप में पूर्णतः समृद्ध होकर प्रतिष्ठित होता है। संस्कृत में गद्य-काव्यों की विशाल परम्परा रही है; किन्तु सम्प्रति अनेक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। पतंजलि के 'महाभाष्य' में 'वासवदत्ता', 'सैमरथी', 'सुमनोत्तरा' आदि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गद्यकाव्यों के उल्लेख प्राप्त होते हैं—अधिकृत्य कृते 'ग्रन्थे बहुलं लुग्वक्तव्यः' वासवदत्ता, सुमनोत्तरा । न च भवति । भैमरथी [४।३।८७] पतंजलि के पूर्व प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन भी आख्यायिकाओं से परिचित दिखाई पड़ते हैं ।

वैदिक संहिता में संस्कृत गद्य का प्रारम्भिक रूप प्राप्त होता है । इस युग का गद्य सरल, सीधा और बोल-चाल की भाषा का है, जिसमें छोटे-छोटे वाक्य और असमस्त पद प्रयुक्त होते हैं तथा उपमा और रूपक आदि अलंकारों के समावेश से इसमें विशेष चारुता आ जाती है । पतंजलि, शबरस्वामी, शंकराचार्य एवं जयन्तभट्ट के ग्रन्थों में शास्त्रीय गद्य चरमसीमा पर पहुँच गया है । इन्होंने व्याकरण और दर्शन जैसे जटिल, गम्भीर एवं दुरूह विषय का सरल, बोधगम्य एवं प्रांजलशैली में विवेचन किया है । संस्कृत गद्य का वास्तविक विकास आख्यायिका एवं गद्य काव्यों में होता है । गुप्तकालीन तथा अन्य उपलब्ध शताधिक अभिलेखों में साहित्यिक गद्य का रूप दिखाई पड़ता है जिससे संस्कृत गद्य की प्राचीनता सिद्ध होती है । बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में भट्टारक हरिश्चन्द्र नामक सिद्धहस्त गद्य-लेखक का उल्लेख किया है तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थों में भी ऐसे शैली-कारों की नामावली दी गयी है जो अद्यावधि अज्ञात है । जल्हण ने वररुचि-रचित 'चारुमती', रोमिल्ल सौमिल्ल लिखित 'शूद्रककथा' तथा धनपाल ने श्रीपालित कृत 'तरंगावतीकथा', 'सातकर्णीहरण' तथा 'नमोवन्ती कथा' आदि प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है । इनके नामोल्लेख से ज्ञात होता है कि सुबन्धु, दण्डी एवं बाणभट्ट के पूर्व अनेक गद्य-लेखक हो चुके थे ।

सुबन्धु, दण्डी, बाणभट्ट संस्कृत गद्यकाव्य के दीप स्तम्भ हैं ।

सुबन्धु—इनकी 'वासवदत्ता' प्रथम साहित्यिक कृति है, जिसमें उदयन और वासवदत्ता की प्रणय-गाथा वर्णित है । इनका आविर्भाव ६ठी शताब्दी के अन्त एवं सप्तम शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था । इसमें 'प्रत्यक्षरश्लेषमय कौशल' द्वारा प्रबन्ध-रचना की चातुरी प्रदर्शित की गयी है । सुबन्धु रचित 'वासवदत्ता' का सम्बन्ध ऐतिहासिक उदयन और वासवदत्ता से नहीं है । इसमें कवि ने ऐसी काल्पनिक कथा का वर्णन किया है जो उसके मस्तिष्क की उपज है । सुबन्धु अलंकृत गद्य-शैली के प्रणेता एवं श्लेष-प्रिय गद्यकाव्य के लेखक हैं । इन्होंने अपनी रचना के प्रत्येक अक्षर को श्लेषमय बनाने की प्रतिज्ञा की है और इसमें वे पूर्णकाम हुए हैं ।

दण्डी—दण्डी ने 'दशकुमारचरित' और 'अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक दो गद्यकाव्यों की रचना की है । इनका समय ६०० ई० के आस-पास निश्चित होता है । 'दशकुमारचरित' में दस कुमारों का चरित वर्णित है । ग्रन्थ का विभाजन दो पीठिकाओं—पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका—के रूप में किया गया है और दोनों पीठिकाएँ उच्छ्वासों में विभक्त है । पुस्तक की पूर्वपीठिका तथा उत्तरपीठिका के बीच मूल ग्रन्थ है जिसके आठ उच्छ्वासों में आठ कुमारों का चरित वर्णित है । पूर्व पीठिका के पाँच

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

उच्छ्वासों में दो कुमारों की कहानी है तथा उत्तरपीठिका में किसी की कहानी न होकर ग्रन्थ का उपसंहार मात्र है। दण्डी रचित मूल 'दशकुमारचरित' में राजवाहन एवं उनके सात साथियों की कथा है। वर्णनों में उनकी प्रतिभा प्रदर्शित होती है और भाषा पर असाधारण अधिकार दिखाई पड़ता है। विषयानुसार भाषा को परिवर्त्तित कर देना दण्डी की अपनी विशेषता है। किसी विषय का वर्णन करते समय वे मुख्यतः वैदर्भी रीति को अपना कर पदलालित्य में सबों को पीछे छोड़ देते हैं। इन्होंने 'काव्यादर्श' नामक लक्षणग्रन्थ की भी रचना की है और संस्कृत के उच्चकोटि के काव्याचार्यों में परिगणित होते हैं। 'अवन्तिसुन्दरी कथा' अभी तक अनुपलब्ध है।

बाणभट्ट—महाकवि बाणभट्ट संस्कृत गद्य-काव्य के श्रेष्ठ रचयिता एवं संस्कृत गद्य के सार्वभौम सम्राट् हैं। सुबन्धु द्वारा प्रवर्तित कृत्रिम गद्य शैली का प्रौढ़ एवं स्निग्ध रूप उनकी रचना में प्राप्त होता है। उन्होंने 'हर्षचरित' एवं 'कादम्बरी' नामक गद्य काव्यों की प्रस्तावना में अपना परिचय दिया है जिसके अनुसार उनके पूर्वज सोननद के निकटस्थ प्रीतिकूट नगर के निवासी थे। वे हर्ष वर्धन के सभाकवि थे। उन्होंने जन्म-भूमि के लोगों के आग्रह पर 'हर्षचरित' की रचना की थी, जिसमें महाराज हर्षवर्धन की जीवन-गाथा है। 'हर्षचरित' के पश्चात् उन्होंने 'कादम्बरी' का प्रणयन किया जो उनके जीवनकाल में पूर्ण न हो सकी। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र पुलिन्द भट्ट ने उत्तर भाग को पूर्ण किया और पिता की शैली में ही ग्रन्थ की रचना की। 'हर्षचरित' संस्कृत की सर्वाधिक प्राचीन आख्यायिका है जिसमें आठ उच्छ्वास हैं। 'कादम्बरी' कथा है और इसकी कथा काल्पनिक है। बाण-रचित अन्य ग्रन्थ 'चण्डी शतक' है जिसकी रचना स्रग्धरा वृत्त में हुई है।

बाणभट्ट असाधारण प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। उन्होंने 'कादम्बरी' का प्रणयन कर संस्कृत कथा-साहित्य में युग-प्रवर्त्तन किया है। उनकी वर्णन-शैली अत्यन्त निपुण हैं और वे कृत्रिम आलंकारिक शैली के पक्षधर हैं। उनमें चित्र ग्राहिणी बुद्धि एवं नवीन उद्भावना की अपूर्व क्षमता थी। वे अपनी रस प्रवणता, कलात्मक सौन्दर्य, वक्रोक्तिमय अभिव्यंजना प्रणाली तथा सानुप्रास समासान्त पदावली के प्रयोग के लिए अमर रहेंगे।

चम्पू काव्य

चम्पू काव्य का वह रूप है जिसमें वर्ण्य विषय का निरूपण गद्य एवं पद्य की मिश्रित शैली में किया जाता है। संस्कृत में चम्पू काव्यों का निर्माण प्रथम शताब्दी के पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। संस्कृत का सर्वाधिक प्राचीन चम्पू त्रिविक्रम भट्ट रचित 'नलचम्पू' है जिसे 'नलदमयन्ती' कथा भी कहते हैं। इसका रचनाकाल ९१५ ई० है। तब से संस्कृत में चम्पू काव्य का विशाल साहित्य प्रस्तुत हो गया है और लगभग २४५ चम्पू काव्यों का विवरण प्राप्त होता है। दसवीं शताब्दी में हरिश्चन्द्र तथा सोम-देवसूरी ने 'जीवनधरचम्पू' एवं 'यशस्तिलक' की रचना की है। दोनों ही जैन मुनि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

थे। भोजराज ने 'रामायणचम्पू', 'अभिनव कालिदास ने (११वीं शती) 'उदयसुन्दरी कथा' तथा सोमेश्वर ने 'कीर्त्तिकौमुदी' नामक ग्रन्थ लिखे हैं। १५ वीं शताब्दी में वासुदेव ने 'गंगावंशानुचरित', अनन्तभट्ट ने 'भारतचम्पू' तथा तिरुलम्वा ने 'वरदाम्बिकापरिणय चम्पू' नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया। १६ वीं शताब्दी के चम्पूकारों में राजचूड़ामणिदीक्षित (भारत चम्पू), जीव गोस्वामी (गोपाल चम्पू), चिदम्बर (भागवत चम्पू), शेषकृष्ण (भागवत चम्पू) प्रसिद्ध हैं। १७ वीं शताब्दी के लेखकों में चक्रकवि (द्रौपदीपरिणयचम्पू), वेंकटाध्वरी (चार चम्पू के प्रणेता) तथा अठारहवीं शती के चम्पूकारों में बाणेश्वर (चित्रचम्पू), कृष्ण कवि (मन्दारमीरन्द चम्पू) एवं अनन्त (चम्पूभारत) के नाम उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत में चम्पू काव्य की समस्त प्रवृत्तियों का विकास १०वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक होता रहा। सोलहवीं शताब्दी चम्पू काव्यों के निर्माण का स्वर्ण युग है; क्योंकि इसी युग में अधिकांश ग्रन्थों की रचना हुई है। दो सौ से अधिक चम्पू तो इसी युग में रचे गए हैं। इस शताब्दी तक आकर चम्पू काव्यों में नवीन विषयों एवं नवीन दृष्टिकोण का समावेश हुआ और यात्रा प्रबन्धों तथा स्थानीय देवताओं का वर्णन कर इसके वर्ण्य-विषय में नवीनता आयी और यह काव्य जीवन के समीप आ गया।

नाटक

संस्कृत साहित्य में नाटकों का लेखन बहुत प्राचीन काल से होता रहा है और इसके सूत्र वेदों में भी प्राप्त होते हैं। 'ऋग्वेद' के अनेक संवाद सूक्तों में नाटक के तत्त्व मिलते हैं। पुरूरवा-उर्वशी-संवाद, यम-यमी-संवाद, सरमा-पणिस् आदि संवादों में नाट्यकला का यथेष्ट रूप देखा जा सकता है। विद्वानों ने भारतीय नाटक का बीज वेदकालीन नृत्य में ही माना है। नाटक के प्रमुख दो तत्त्वों—संवाद एवं अभिनय—की स्थिति पाश्चात्त्य विद्वानों ने भी वैदिक साहित्य में स्वीकार की है। वैदिक युग में संगीत का भी अतिशय विकास हो चुका था और सामवेद तो इसके लिए प्रसिद्ध ही था। 'अथर्ववेद' में नाचने गाने के भी संकेत हैं। इन विवरणों के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक युग में नाट्यात्मक अभिनय का सम्यक् प्रचार था। 'रामायण' एवं 'महाभारत' में भी नाटक के कई उपकरणों का उल्लेख है। रामायण के अनेक प्रकरणों में शैलूष, नट एवं नर्त्तक का उल्लेख है। वाल्मीकि ने कहा है कि जिस जनपद में राजा नहीं रहता वहाँ नट एवं नर्त्तकी सुखी नहीं रहते—नाराजके जनपदे प्रहृष्टनरनर्त्तकाः, रामायण २।६७।१५। 'हरिवंश पुराण' में रामायण की कथा को नाटक के रूप में प्रदर्शित करने का वर्णन प्राप्त होता है और पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में 'शिलालि' एवं 'कृशाश्व' द्वारा रचित नटसूत्रों का भी वर्णन प्राप्त होता है—'पराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' ४।३।११०, 'कर्मन्दकृशाश्वादिनिः, ४।३।१११। इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि के पूर्व नटसूत्रों के निर्माण की आवश्यकता हो गयी थी। पतंजलि के 'महा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भाष्य' में कंसवध एवं वलिबन्ध नामक दो नाटकों का उल्लेख प्राप्त होता है तथा नाटक करने वाले नट 'शोभानिक' एवं 'ग्रथास्तैभिक' शब्द से संबोधित किये गए हैं। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' एवं चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' में भी कुशीलवों का उल्लेख है जो नागरिकों के मनोरंजनार्थ अभिनय किया करते थे। इस प्रकार वैदिक काल से लेकर ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी तक नाटकों के प्रचलन एवं नटों की शिक्षा के लिए रचित ग्रन्थों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिससे भारतीय नाट्य साहित्य की प्राचीनता का ज्ञान होता है। ई० पू० प्रथम शताब्दी में कालिदास ने नाटकों की रचना की थी।

भारत में नाट्य कला की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मतवाद प्रचलित हैं। डॉ० रिजवे ने भारतीय नाटकों की उत्पत्ति का स्रोत वीर पूजा में माना है, पर अन्य यूरोपीय विद्वानों ने ही इस मत को अमान्य ठहरा दिया है। डॉ० कीथ के अनुसार प्राकृतिक परिवर्त्तनों को जनता के समक्ष मूर्त्तरूप में प्रदर्शित करने की अभिलाषा में ही नाटकों की उत्पत्ति का स्रोत विद्यमान है। पर, यह सिद्धान्त इस आधार पर खण्डित हो जाता है कि भारतीय ग्रन्थों में इसके संकेत कहीं भी प्राप्त नहीं होते स्वयं इस मत का उद्भावक (कीथ) भी इसके प्रति अधिक आस्थावान् नहीं दिखाई पड़ता। जर्मन विद्वान् पिशेल ने नाटकों का उद्भव 'पुत्तलिकानृत्य' से माना है। उसके अनुसार इसकी उत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में ही हुई थी और यहीं से इसका अन्यत्र प्रचार हुआ था। पर, भारतीय नाटकों के रससंवलित होने के कारण यह सिद्धान्त आधारहीन सिद्ध हो जाता है। कतिपय विद्वान् जैसे, पिशेल, डॉ० लूडर्स एवं डॉ० स्तेन कोनो ने छाया-नाटकों से भारतीय नाटकों की उत्पत्ति मानी है, भारत में छाया नाटकों के प्रणयन के कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होते और न इनकी प्राचीनता ही सिद्ध होती है। 'दूतांगद' नामक अवश्य ही, एक छाया नाटक का उल्लेख मिलता है, पर यह उतना प्राचीन नहीं है। भरत ने भारतीय नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वे अत्यन्त सटीक हैं। उनके अनुसार सांसारिक मनुष्यों को अत्यन्त खिन्न देखकर देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर एक ऐसे वेद के निर्माण की प्रार्थना की जो वेदाध्ययन के अनधिकारी व्यक्तियों के लिए उपयोगी हो। यह सुनकर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद नामक पंचम वेद का निर्माण किया और इन्द्रादि को इसके प्रचार का आदेश दिया। ब्रह्मा के कहने पर भरत मुनि ने अपने सौ पुत्रों को नाट्यशास्त्र की शिक्षा दी [नाट्यशास्त्र, १।१६-१७] इस विवरण से सिद्ध होता है कि नाटकों का आविर्भाव वेदों से ही होता है।

अनेक पाश्चात्त्य विद्वानों ने संस्कृत नाटक पर ग्रीक (यवन) नाटकों का प्रभाव माना है। भारतीय नाटकों में 'यवनिका' शब्द का प्रयोग देख कर उन्होंने इस मत की पुष्टि के लिए पर्याप्त आधार ग्रहण किया है, पर उनकी अब यह बेबुनियाद कल्पना खण्डित हो चुकी है। भारतीय विद्वानों ने बतलाया है कि वस्तुतः मूल शब्द 'जवनिका'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है, 'यवनिका' नहीं। 'जवनिका' का अर्थ दौड़कर छिप जानेवाला आवरण होता है या वेग से सिकुड़ने वाले या फैलने वाले आवरण को जवनिका कहते हैं। 'यवनिका' का अर्थ 'यवन-स्त्री' है, अतः इसका 'जवनिका' से कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्वानों ने भारतीय नाटकों की मौलिकता एवं ग्रीक नाटकों की प्रविधि से सर्वथा भिन्न तत्त्वों को देख कर ग्रीक प्रभाव को अमान्य ठहरा दिया है। संस्कृत नाटकों में ग्रीक नाटकों की तरह संकलनत्रय के सिद्धान्त का पूर्णतः परिपालन नहीं होता और दुःखान्तता का पूर्णतः अभाव होता है। संस्कृत नाटकों में रस का प्राधान्य है और कवि का मुख्य उद्देश्य रस-सिद्धि को ही माना जाता है। कई भाषाओं का मिश्रण उसकी अपनी विशेषता होती है। इनके आख्यान नितान्त भारतीय तथा रामायण एवं महाभारत पर आश्रित है और इनका विभाजन अंकों में किया जाता है। प्रारम्भ में नान्दी या मंगलाचरण का विधान होता है और अन्त में भरत वाक्य की योजना की जाती है। संस्कृत में रूपक एवं उपरूपक के रूप में नाटकों के २८ प्रकार होते हैं। रूपक के १० एवं उपरूपक के १८ भेद होते हैं। विदूषक संस्कृत नाटकों की निराली सृष्टि है और इसके जोड़ का पात्र ग्रीक नाटकों में नहीं मिलता। रंगमंच की दृष्टि से संस्कृत नाटक ग्रीक नाटक से सर्वथा भिन्न होते हैं। ग्रीक में किसी प्रकार के रंगमंच का विधान नहीं है और वहाँ नाटक खुले आकाश में जनता के सामने किये जाते थे, पर संस्कृत नाटकों का अभिनय रंगशालाओं में होता था और राजाओं की राजधानियों में नाटकों के प्रदर्शन के लिए रंगमंच के स्वरूप-विधान पर विस्तार पूर्वक विचार प्राप्त होता है। इन सभी दृष्टियों से संस्कृत नाटकों पर ग्रीक प्रभाव को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

संस्कृत नाटकों की अखण्ड परम्परा विक्रम की प्रथम शताब्दी से प्राप्त होती है। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना में 'कविपुत्र', 'भास' एवं 'सोमिल्ल' नामक नाटककारों का उल्लेख किया है; किन्तु इनमें केवल भास की ही रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भास के नाटक १९१२ ई० के पूर्व प्रकाश में नहीं आ सके थे। सर्व प्रथम म० म० गणपति शास्त्री ने भासकृत तेरह नाटकों का प्रकाशन १९१२ ई० में किया। भास का समय ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी के आसपास है। इनके नाटक हैं—'दूत वाक्य', 'कर्णभार', दूतघटोत्कच', 'ऊरुभङ्ग', 'मध्यम व्यायोग', 'पंचरात्र', 'अभिषेक', 'बाल चरित', 'अविमारक', 'प्रतिमा', 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण', 'स्वप्नवासवदत्तम्' तथा 'दरिद्रचारुदत्त'। इनमें ६ नाटकों का कथानक 'महाभारत' से लिया गया है और दो का 'रामायण' से, शेष पाँच नाटक अनुश्रुतियों पर आधृत हैं। इनके नाटकों में नान्दी का अभाव है तथा सुकुमार एवं उद्धत दोनों प्रकार के हास का प्रयोग है। इनका 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटकीय प्रविधि एवं भाषा-शैली की दृष्टि से अद्भुत सृष्टि है। इन्होंने चरित्र चित्रण एवं संवादों के नियोजन में अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है। इनकी शैली सरल है और भाषा में सरलता मिलती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भास के बाद दूसरे नाटककार हैं कालिदास । इन्होंने संस्कृत नाटक की समृद्ध हो रही परम्परा को अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से आलोकित कर उसे प्रौढ़ता प्रदान की है । कालिदास के तीन नाटक हैं—'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' । 'शाकुन्तल' में, जो कि इनकी अन्तिम नाट्यकृति है, इनकी प्रतिभा का चूड़ान्त निदर्शन हुआ है । 'मालविकाग्निमित्र' में मालविका एवं अग्निमित्र की प्रणयगाथा पाँच अंकों में वर्णित है । इसमें कवि ने राजाओं के अन्तःपुर में विकसित होनेवाले प्रेम, ईर्ष्या, राजा की कामुकता, सपत्नी-कलह तथा राजमहिषी की धीरता और उदात्तता का सफल निदर्शन किया है । यहाँ नाटकीय कौशल की अपेक्षा कवित्व का विलास अधिक प्रदर्शित होता है । इनके द्वितीय नाटक 'विक्रमोर्वशीय' में राजा पुरूरवा एवं उर्वशी की प्रणय-गाथा वर्णित है । इसका नायक पुरूरवा अग्निमित्र की तरह केवल विलासी न होकर पौरुष से सम्पन्न दिखलाया गया है । यह धीरोदात्त नायक है और नाटक के प्रारम्भ एवं अन्त में इसके चरित्र की उदात्तता के दर्शन होते हैं । कवि ने ऋग्वेद' एवं 'शतपथ ब्राह्मण' में वर्णित उर्वशी एवं पुरूरवा की प्रणय-कथा को इस नाटक का विषय बनाया है । इसका मुख्य रस है शृङ्गार जो उभय पक्षों के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' में राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा कही गयी है । इसकी कथा 'महाभारत' के आदिपर्व में वर्णित दुष्यन्त एवं शकुन्तला के आख्यान पर आधृत है, पर कवि ने कल्पना का आश्रय लेकर कई नवीन तथ्यों का सन्निवेश कर इस कथा को सुन्दर बना दिया है । दुर्वासा के शाप का नियोजन कवि की प्रतिभा की देन है जिससे दुष्यन्त लोलुप, कामी एवं कर्त्तव्यच्युत व्यक्ति न होकर उदात्त चरित्र का व्यक्ति सिद्ध होता है । 'शाकुन्तल' में अन्य दो नाटकों की भाँति सपत्नी-कलह और प्रणय-द्वन्द्व को स्थान नहीं मिला है । इसमें कवि ने नियति-द्वन्द्व का समावेश कर नाटकीय गत्यात्मकता, औत्सुक्य एवं घटनाचक्र का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है । 'शकुन्तला' में कालिदास का शृङ्गार स्वस्थ एवं भारतीय गरिमा के अनुकूल है, जिसका उद्देश्य पुत्रोत्पत्ति का साधन बनना है ।

संस्कृत के तृतीय प्रसिद्ध नाटककार हैं 'शूद्रक' जिन्होंने 'मृच्छकटिक' नामक यथार्थवादी नाटक की रचना की है । इन्होंने भासकृत 'चारुदत्त' के आधार पर अपने प्रकरण का निर्माण किया है । 'मृच्छकटिक' में दस अंक हैं और ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना की प्रेम कहानी वर्णित है । इसका प्रतिनायक राजा का साला शकार है । इस प्रकरण में साथ-साथ दो प्रधान घटनाएँ चलती हैं, जिनमें एक का सम्बन्ध वसन्तसेना एवं चारुदत्त से है तथा दूसरी आर्यक की राज्य-प्राप्ति से सम्बद्ध है । नाटककार ने प्रेम-कथा को राजनीतिक घटनाओं से आबद्ध कर अनूठी चातुरी का परिचय दिया है और दो घटनाओं को इस प्रकार अनुस्यूत किया है कि वे पृथक् नहीं होती । 'मृच्छकटिक' में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जीवन की यथार्थ भूमि को आधार बनाकर ऐसे चरित्र की अवतारणा की गयी है जो सार्वदेशिक है। यह संस्कृत की प्रथम यथार्थवादी रचना है जिसमें राजा-रानियों की प्रणय-गाथा प्रस्तुत न कर दरिद्र, ब्राह्मण, वेश्या, चोर, जुआरी एवं लुच्चों की वाणी मुखरित हुई है। 'मृच्छकटिक' अनेक प्रकार के प्राकृतों के प्रयोग, अनूठा हास्य-चित्रण, सरस तथा सद्यःप्रत्यभिज्ञेय शैली एवं समकालीन समाज का वास्तविक चित्र उभारने के संस्कृत नाटकों का आज भी श्रृङ्गार बना हुआ है।

महाकवि अश्वघोष कृत तीन नाटक उपलब्ध हुए हैं जिन्हें डॉ० लूडर्स ने १९१० ई० में मध्य एशिया के तूर्फान नामक स्थान में प्राप्त किया था। इनमें दो अधूरे हैं और एक 'शारिपुत्र प्रकरण' है जिस पर भगवान् बुद्ध के उपदेश का प्रभाव है। महाराज हर्षवर्धन की तीन रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें दो नाटिकायें हैं—'प्रियदर्शिका' एवं 'रत्नावली' तथा एक रूपक है 'नागानन्द'। प्रथम दो नाटिकाओं में वत्सराज उदयन की प्रेमकथा वर्णित है तथा 'नागानन्द' में विद्याधर जीमूतवाहन द्वारा नागों को गरुड़ से बचाने की कथा का वर्णन है। कथानक के गठन की दृष्टि से 'रत्नावली' उच्चकोटि की रचना सिद्ध होती है और इसमें श्रृङ्गाररसोपयुक्त प्रसादगुणयुक्त सरस शैली प्रयुक्त हुई है। भट्ट नारायण कृत 'वेणीसंहार' संस्कृत का वीररस प्रधान नाटक है जिसकी रचना ६ अंकों में हुई है और नाटक के शास्त्रीय नियमों का कठोरता पूर्वक नियोजन किया गया है। इसीलिए इसे नाट्य शास्त्रीय एवं काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इसकी कथा पौराणिक है और 'महाभारत' की एक प्रसिद्ध घटना को कथा का विषय बनाया गया है और वह है दुर्योधन के रक्त से रंजित हाथों से भीमसेन का द्रौपदी के केशों को बाँधना। इसकी शैली ओजगुण से युक्त है तथा कई ओजपूर्ण संवादों का का नियोजन किया गया है।

विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' नामक नाट्यकृति की रचना की है जिसमें राजनैतिक दाँव-पेंच एवं कूटनीति की प्रधानता है। इसमें चाणक्य एवं राक्षस की कूटनीतिज्ञ चालों का वर्णन है जिसे आचार्यों ने नाटकीय प्रविधि की सफलता के कारण 'शकुन्तला' के समकक्ष माना है। इसमें श्रृङ्गार रस एवं स्त्री पात्रों तथा हास्य का अभाव है जो कवि की अनूठी कल्पना का परिचायक है। कवि ने विषय के अनुरूप शैली का गठन किया है। संस्कृत नाटककारों में कालिदास के पश्चात् भवभूति का स्थान सर्वथा गौरवास्पद है। इनके तीन नाटक हैं—'मालतीमाधव', 'महावीरचरित' तथा 'उत्तररामचरित'। 'महावीरचरित' प्रथम नाट्य कृति है जिसमें रामचरित को नाटकीय रूप दिया गया है। राम विवाह से लेकर रामराज्याभिषेक तक की घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। 'मालतीमाधव' दस अंकों का प्रकरण है; इसकी कथा काल्पनिक है। इसमें मालती एवं माधव की प्रणय-कथा के माध्यम से कवि ने यौवन के उन्मादक प्रेम का चित्रण किया है। 'उत्तरराम-चरित' भवभूति की श्रेष्ठ रचना है। इसकी रचना सात अंकों में हुई है। इसमें कवि ने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर सीता-चरित का अत्यन्त करुण वर्णन किया है। इस नाटक में करुण रस का सफल चित्रण कर भवभूति ने उसकी रसराजता सिद्ध की है। इसकी रचना सात अंकों में हुई हैं। भवभूति ने गीतिनाट्य की रचना की है जिसमें कवित्व एवं पाण्डित्य का अद्भुत सम्मिश्रण है। वे प्रकृति से गम्भीर हैं और उनकी यह गम्भीरता उनकी बौद्धिकता के रूप में नाटकों में रूपायित हुई है। उन्होंने प्रकृति के उग्र रूप का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। भाषा पर तो उनका असाधारण अधिकार है। दाम्पत्य जीवन के आदर्श रूप को चित्रित करने में भवभूति संस्कृत के सभी कवियों को पीछे छोड़ देते हैं।

संस्कृत के परवर्त्ती नाटककारों की प्रवृत्ति अनावश्यक वर्णनों और काव्य-शैली के चाक्यचिक्य की ओर गयी, फलतः काव्य-नाटकों की बाढ़ आ गयी। ऐसे नाटकों को ऐतिहासिकों ने ह्रासोन्मुखी काव्यशैली का नाटक कहा है। ऐसे नाटककारों में 'मुरारि' आते हैं जिन्होंने 'अनर्घराघव' नामक नाटक की रचना की है। इसमें रामचरित को नाटकीय विषय बनाया गया है तथा कवि का ध्यान विविध शास्त्रों के पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा पद-लालित्य की ओर अधिक है। इसमें नाटकीय व्यापारों का सर्वथा अभाव है और नाटक अनावश्यक वर्णनों एवं ललित पदों के भार से बोझिल हो उठा है। कवि ने लम्बे-लम्बे छन्दों का अधिक वर्णन कर नाटकीय औचित्य एवं सन्तुलन को खो दिया है उनके बाद के नाटककारों पर मुरारि का ही प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भवभूति के पश्चात् संस्कृत नाटकों का ज्वलन्त युग समाप्त हो जाता है और ऐसे नाटकों की रचना होने लगती है जो नाम भर के लिए नाटक हैं। नवम शताब्दी के आरम्भ में 'शक्तिभद्र' ने 'आश्चर्य चूड़ामणि' नामक नाटक की रचना की जिसमें शूर्पणखा-प्रसंग से लेकर लंका-विजय एवं सीता की अग्नि-परीक्षा तक की राम-कथा वर्णित है। इसी शताब्दी के अन्य नाटककारों में 'हनुमन्नाटक' के रचयिता दामोदर मिश्र और राजशेखर हुए। राजशेखर ने तीन नाटक एवं एक सट्टक 'कर्पूरमञ्जरी' की रचना की। राजशेखर के तीन नाटक हैं—'विद्धशालभंजिका', 'बालरामायण' तथा 'बालमहाभारत'। 'विद्धशालभंजिका' चार अंकों की नाटिका है तथा 'बालरामायण' दस अंकों का महानाटक है, जिसमें रामायण की कथा का वर्णन है। 'बालमहाभारत' के दो ही अंक उपलब्ध हुए हैं। राजशेखर ने अपने नाटकों में लम्बे-लम्बे वर्णनों का समावेश किया है जो नाट्यकला की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं। 'हनुमन्नाटक' १४ अंकों का महानाटक है जिसमें प्राकृत का प्रयोग नहीं है और गद्य से अधिक पद्य का प्रयोग हुआ है। बौद्ध आचार्य दिङ्नाग (१००० ई०) ने 'कुन्दमाला' नामक नाटक में 'उत्तररामचरित' की कथा का वर्णन किया है जो ६ अंकों में समाप्त हुआ है। इस पर भवभूति की शैली का प्रभाव है। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में कृष्णमिश्र ने अपना प्रतीकात्मक नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' लिखा जिसमें शान्तरस की प्रधानता है। वे संस्कृत में प्रतीक नाटकों के प्रवर्तक माने जाते हैं। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुकरण पर संस्कृत में अनेक प्रतीकात्मक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

नाटक लिखे गए जिनमें यशःपाल रचित (१३ वीं शती) 'मोहपराजय', वेंकटनाथ (१४ वीं शती) विरचित 'संकल्प-सूर्योदय' तथा कर्णपूर (१६ वीं शती) कृत 'चैतन्य चन्द्रोदय' नामक नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। जयदेव कवि कृत (१२५० ई०) 'प्रसन्न-राघव' नाटक में रामचरित का वर्णन है तथा ह्रासोन्मुखी नाटकों के सभी दोष विद्यमान हैं। संस्कृत में रूपक के दस तथा उपरूपक के १८ भेद होते हैं। इन सभी भेदों के आधार पर संस्कृत में विशाल नाट्यसाहित्य प्रस्तुत हुआ है और प्रत्येक भेद की पृथक्-पृथक् ऐतिहासिक परम्परा रही है। इनमें प्रहसन एवं भाण की संख्या अधिक है। संस्कृत का प्राचीनतम प्रहसन 'मत्तविलास' है जिसके रचयिता महेन्द्रविक्रम वर्मा थे (५७६–६०० ई०) अन्य प्रहसनकारों में कविराज शंखधर का नाम प्रसिद्ध है। इन्होंने 'लटकमेलक' की रचना की है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वितीय अध्याय

संहिता-साहित्य

(ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद)

मन्त्रों के समूह को संहिता कहते हैं। यज्ञानुष्ठान के आधार पर तथा भिन्न-भिन्न ऋत्विजों के उपयोग को ध्यान में रख कर ये मन्त्र संहिताएँ संकलित की गयी हैं। इनका इस रूप में संकलन वेद व्यास ने किया है। मन्त्र-संहिताओं की संख्या चार हैं—ऋक् संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता तथा अथर्वसंहिता।

ऋक्संहिता या ऋग्वेद

ऋग्वेद वैदिक वाङ्मय का सर्वाधिक प्राचीन एवं गौरवपूर्ण ग्रन्थ है। भारतीय आर्यों के धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, कला तथा साहित्य-विषयक उपलब्धियों का एकमात्र स्रोत यही ग्रन्थ है। संहिताओं में 'सामवेद' और 'यजुर्वेद' का अधिक सम्बन्ध तो यज्ञों से है, किन्तु ऋग्वेद नाना दृष्टियों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। पाश्चात्य मनीषियों के अनुसार 'ऋग्वेद' भाषा एवं भाव की दृष्टि से अन्य वेदों से अधिक मूल्यवान् है। भारतीय विद्वानों के मतानुसार इसकी महत्ता गूढ़ दार्शनिक विचारों एवं अभ्यर्हितत्त्व की दृष्टि से है। प्राचीन ग्रन्थों ने भी इसकी महत्ता मुक्तकण्ठ से प्रतिपादित की है। तैत्तिरीय-संहिता में कहा गया है कि 'साम' एवं 'यजुः' के द्वारा जो यज्ञानुष्ठान किया जाता है; वह शिथिल होता है; किन्तु 'ऋग्वेद' के द्वारा विहित विधान दृढ़ होता है। इसकी कई ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह वैदिक साहित्य में उच्चस्थान का अधिकारी है। इसमें ऋषियों का स्वतन्त्र चिन्तन है; किन्तु अन्य वेदों में इन बातों का सर्वथा अभाव है। 'यजुः' और 'सामवेद' 'ऋग्वेद' की विचारधारा से पूर्णतः प्रभावित हैं। 'सामवेद' की ऋचाएँ 'ऋग्वेद' पर पूर्णतः आश्रित हैं, उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। अन्यान्य संहिताएँ भी ऋग्वेद के आधार पर पल्लवित हैं। यही नहीं, ब्राह्मणों में जितने विचार आये हैं, उनका मूल रूप ऋग्वेदसंहिता में ही मिलता है तथा आरण्यकों और उपनिषदों में जितने आध्यात्मिक चिंतन हैं उन सबका आधार 'ऋग्वेद' है। उनका निर्माण 'ऋग्वेद' के उन अंशों से हुआ है जो पूर्णतः चिन्तनप्रधान हैं।

विषय की दृष्टि से भी 'ऋग्वेद' का महत्त्व बढ़ा हुआ है। 'सामवेद' के सभी सूक्त ऋग्वेद के हैं। थोड़े-से मन्त्र इधर-उधर के हैं। अन्तर इतना ही है कि जहाँ 'ऋग्वेद' पठनीय है, वहाँ 'सामवेद' गेय है। 'यजुर्वेद में 'ऋग्वेद' के मन्त्रों का यज्ञ में उपयोग किया जाता था। इसमें गद्य-पद्यमय जो सूक्त प्राप्त होते हैं, वे ही विषय की दृष्टि से

 CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नवीन हैं। अथर्ववेद में मारण, मोहन और उच्चाटन आदि मन्त्रों और जादू-टोनों का वर्णन है। कर्म, भक्ति या ज्ञान की दृष्टि से अन्य वेदों में कोई नवीनता नहीं है। ऋग्वेद में विचारों की मौलिकता, स्वतन्त्र चिन्तन एवं प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन है। अतः प्राचीनता, विषय, ज्ञान, विस्तार तथा भाषा की दृष्टि से ऋग्वेद वैदिक वाङ्मय का सुमेरु सिद्ध होता है।

ऋग्वेद के विभाग—ऋक् का अर्थ है 'स्तुतिपरक मन्त्र तथा वेद का अर्थ ज्ञान होता है। 'ऋग्वेद' स्तुतिपरक मन्त्रों का ज्ञान है। इसमें मुख्यतः देवताओं की स्तुतियाँ संगृहीत हैं इसके दो प्रकार के विभाग हैं—अष्टकक्रम तथा मण्डलक्रम। अष्टकक्रम के अनुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ भागों में विभाजित है जिन्हें 'अष्टक' कहते हैं। प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं। इस प्रकार पूरे ग्रन्थ में चौसठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के भी अवान्तर विभाग किये गए हैं, जिन्हें 'वर्ग' कहा जाता है। ऋचाओं का समूह ही वर्ग कहा जाता है; किंतु वर्गों में ऋचाओं की संख्या नियत नहीं है। सम्पूर्ण वर्गों की संख्या दो हजार छः है।

ऋग्वेद का दूसरा विभाग अत्यन्त महत्त्वशाली है, साथ ही इसे ऐतिहासिक एवं अधिक वैज्ञानिक कहा जाता है। इस क्रम के अन्तर्गत समग्रवेद दस खण्डों में विभक्त है, जिन्हें 'मण्डल' कहते हैं। इसीलिये निरुक्तादि ग्रन्थों में इसकी संख्या 'दशतयी' है। मण्डलों को 'अनुवाक्' के अन्तर्गत बाँटा गया है एवं प्रत्येक अनुवाक् के भीतर 'सूक्त' आते हैं। सूक्तों के अन्तर्गत ऋचाएँ हैं, जिन्हें 'मन्त्र' भी कहा जाता है। 'ऋग्वेद' के शुद्ध पाठ को अक्षुण्ण रखने के लिए एवं उसकी वैज्ञानिकता पर आँच न आने देने के लिए प्राचीन ऋषियों ने मन्त्रों की ही नहीं, अक्षरों तक की गणना कर डाली है। महर्षि कात्यायन ने अपने ग्रन्थ 'सर्वानुक्रमणी' में समस्त मन्त्रों की गणना कर एकत्र किया है। ऋग्वेद के दसो मण्डलों में पचासी अनुवाक् हैं तथा सूक्तों की संख्या एक हजार सत्रह है। इनके अतिरिक्त ग्यारह सूक्त ऐसे हैं, जिन्हें 'वाल्यखिल्य' कहा जाता है। सूक्तों की ऋचाओं की संख्या १०५८० १/४ है, शब्दों की संख्या एक लाख तिरपन हजार आठ सौ छब्बीस एवं अक्षर चार लाख बत्तीस हजार हैं। खिल (परिशिष्ट) सूक्तों का न तो पदपाठ मिलता है और न इनकी अक्षर-गणना की गयी है। खिल का अभिप्राय परिशिष्ट या पीछे जोड़े गए मन्त्रों से है। ये सूक्त अष्टम मण्डल के ४९ से ५९ सूक्त तक हैं।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार 'ऋग्वेद' में प्राचीन एवं अर्वाचीन मन्त्रों का संग्रह है। ये लोग सम्पूर्ण मण्डलों को प्राचीन स्वीकार नहीं करते। इनके अनुसार द्वितीय से लेकर सप्तम मण्डल तक का भाग प्राचीन है तथा शेष भाग अर्वाचीन है। 'ऋग्वेद' के प्रत्येक मण्डल का सम्बन्ध किसी न किसी ऋषि अथवा उनके वंशजों से है। द्वितीय के ऋषि गृत्समद, तृतीय मण्डल के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पंचम के अत्रि, षष्ठ के भारद्वाज एवं सप्तम के वसिष्ठ हैं। अष्टम मण्डल का सम्बन्ध कण्व एवं अंगिरा वंश से है। नवम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मण्डल के समग्र मन्त्र 'सोम' देवता से सम्बद्ध है। सोम को पवमान कहा गया है, अतः सोम से सम्बद्ध मन्त्रों के समुदाय को पवमान-मण्डल कहा जाता है। दशम मण्डल सबसे अर्वाचीन है। इसकी नवीनता का प्रमाण इसकी भाषा, छन्द, नवीन दार्शनिक तथ्यों की कल्पना एवं नवीन देवता है। भारतीय दृष्टि से इन मण्डलों का संकलन एवं विभाजन एक व्यक्ति द्वारा किया गया है।

ऋग्वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार 'ऋग्वेद' की २१ शाखाएँ हैं। चरणव्यूह के अनुसार इनमें पाँच शाखाएँ प्रधान हैं—शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांख्यायन तथा माण्डुकायन। इन शाखाओं की भी कई उपशाखाएँ थीं, किन्तु इस समय शाकलशाखा की एक मात्र शैशरीय उपशाखा ही प्राप्त होती है।

विषय-विवेचन—ऋग्वेद में नाना प्रकार की प्राकृतिक शक्तियों एवं देवताओं के स्तोत्रों का विशाल संग्रह है। इसमें विभिन्न सुन्दर भावों से ओतप्रोत उद्गारों से अपनी इष्टसिद्धि के निमित्त देवताओं से प्रार्थना की गयी है। देवताओं में अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि की स्तुति में अधिक मन्त्र कहे गए हैं। देवियों में उषा की अधिक स्तुति की गयी है। उषा की स्तुति में काव्य की सुन्दर छटा प्रदर्शित हुई है। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद के प्रधान देवता हैं—सविता, पूषा, मित्र, विष्णु, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य आदि।

'ऋग्वेद' में कई ऐसे मन्त्र हैं जिन्हें 'दानस्तुति' कहते हैं जिनकी संख्या ६८ है। डॉ० मैक्डोनल का कथन है कि ऋग्वेद के कुछ लौकिक मन्त्र ऐसे हैं जिनमें ऐतिहासिक सन्दर्भ निहित हैं। इन्हें दानस्तुति कहते हैं। ये स्तुतियाँ ऋत्विजों के द्वारा अपने राजाओं के उन उदार दानों के प्रशंसात्मक कथन हैं जो यज्ञ के अवसर पर दिये गए थे। उनमें काव्य-शैली की दृष्टि से चमत्कार कम है। ऐसा लगता है कि वे कुछ बाद की रचना हों; कारण, ऐसे सूक्त केवल संहिता के प्रथम और दशम मण्डल में तथा अष्टम मण्डल के बालखिल्य भाग में ही मिलते हैं। इस प्रकार की स्तुतियों में दो या तीन ही मन्त्र हैं और ये आठवें मण्डल के इतर विषय पर दिये हुए सूक्तों के परिशिष्ट रूप में पाये जाते हैं। यद्यपि इन सूक्तों का मुख्य विषय दानीय वस्तु तथा प्रदत्त राशि का उल्लेख मात्र है तथापि प्रसंगवश उनमें दाताओं की कुल एवं वंश-परम्परा सम्बन्धी तथा वैदिक जातियों के नाम और घर का भी वर्णन मिलता है, जो ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करता है।''* दानस्तुति में दान की महिमा का ओजस्वी वर्णन है। 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र में कहा गया है कि जो मनुष्य अपने धन का दान न कर स्वयं अपने लिए उपयोग करता है, वह पाप को खाता है।

'ऋग्वेद' के अनेक संवादसूक्तों में नाटक एवं काव्य (महाकाव्य) के तत्त्व उपलब्ध

---

* संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ११८–११६।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होते हैं। कथोपकथन की प्रधानता के कारण इन्हें संवाद-सूक्त कहा जाता है। इन संवादों में भारतीय नाटक एवं प्रबन्ध काव्यों के सूत्र मिलते हैं। ऐसे सूक्तों की संख्या बीस के लगभग है जिनमें तीन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—पुरूरवा-उर्वशी-संवाद, यम-यमी-संवाद एवं सरमापणि-संवाद। पुरूरवा-उर्वशी-संवाद में रोमांचक प्रेम का निदर्शन है तो यम-यमी-संवाद में यमी द्वारा अनेक प्रकार के प्रलोभन देने पर भी यम का उससे अनैसर्गिक सम्बन्ध स्थापित न करने का वर्णन है। दोनों ही संवादों का साहित्यिक महत्त्व अत्यधिक है तथा ये हृदयावर्जक एवं कलात्मक हैं। तृतीय संवाद में पणि लोगों द्वारा आर्यों की गाय चुरा कर अंधेरी गुफा में डाल देने पर इन्द्र का अपनी शूनी सरमा को उनके पास भेजने का वर्णन है, जो आर्यों के शौर्य पौरुष का वर्णन कर उन्हें धमकाती है। इसमें तत्कालीन समाज की एक झलक दिखाई पड़ती है।

'ऋग्वेद' में अनेक अलौकिक सूक्त हैं जिनमें लौकिक या ऐहिक विषयों तथा यन्त्र-मन्त्र की चर्चा है। ऐसे सूक्त दशम मण्डल में हैं और इनकी संख्या तीस से अधिक नहीं है। दो छोटे-छोटे ऐसे भी सूक्त हैं जिनमें शकुनशास्त्र का वर्णन है। एक सूक्त राजयक्ष्मा से विमुक्त होने के लिए उपदिष्ट है। लगभग बीस ऐसे सूक्त हैं, जिनका सम्बन्ध सामाजिक रीतियों, दाताओं की उदारता, नैतिक प्रश्न तथा जीवन की कतिपय समस्याओं से है। दशम मण्डल का ८५ वां सूक्त विवाह सूक्त है, जिसमें विवाह-सन्बन्धी कुछ विषयों का वर्णन है तथा ५ सूक्त ऐसे हैं जो अन्त्येष्टि संस्कार से सम्बद्ध हैं। ऐहिक सूक्तों में ही चार सूक्त नीतिपरक हैं जिन्हें हितोपदेश सूक्त कहा जाता है। 'ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्तों के अन्तर्गत नासदीयसूक्त (१०।१२९), पुरुषसूक्त (१०।९०), हिरण्यगर्भसूक्त (१०।१२१) तथा वाक्सूक्त (१०।१४५) आते हैं। इनका सम्बन्ध उपनिषदों के दार्शनिक विवेचन से है। नासदीयसूक्त में भारतीय रहस्यवाद का प्रथम आभास प्राप्त होता है तथा दार्शनिक चिन्तन का अलौकिकरूप दृष्टिगत होता है। इसमें पुरुष के विश्व-व्यापी रूप का वर्णन है।

सामवेद

सामवेद में गीतितत्त्व की प्रधानता है जिसे उद्गाता नामक ऋत्विज् उच्चस्वर से गाता था। इसका महत्त्व एक विशिष्ट कारण से भी है, जो अन्य वेदों में प्राप्त नहीं होता। इसकी ऋचाएँ गेयता के कारण एक रूप होकर भी, अनेकात्मक होकर, विविध रूप धारण कर लेती हैं। 'बृहद्देवता' में कहा गया है कि जो व्यक्ति साम को जानता है वही वेद का रहस्य जानता है। गीता में श्रीकृष्ण ने अपने को सामवेद कहकर इसकी महत्ता प्रदर्शित की है। 'ऋग्वेद' और अथर्ववेद' भी सामवेद की प्रशंसा करते हैं। 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि जागरणशील व्यक्ति को ही साम की प्राप्ति होती है; निद्रा में रहने वाला सामगान में प्रवीणता नहीं प्राप्त कर सकता।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऋक् मन्त्रों के ऊपर गाये जाने वाले गान 'साम' शब्द के बोधक हैं तथा ऋक् मन्त्रों के लिए भी सामशब्द प्रयुक्त होता है। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में 'साम' की व्युत्पत्ति दी गयी है। 'सा' का अर्थ है ऋचा और 'अम' का स्वर। इस प्रकार 'साम' का अर्थ हुआ 'ऋक् के साथ सम्बद्ध स्वरप्रधानगायन'। मन्त्र और स्वर का समवाय ही साम कहा जाता है। स्वर में गीतितत्त्व का समावेश होता है। 'साम' शब्द के अनेक अर्थ किये गए हैं—'छन्द की पवित्र पुस्तक,' 'गेयभाषण' तथा संगीत ग्रन्थ आदि। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'मैजिक सांग' कहा है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के आधार पर इसके असंख्य भेद किये गए हैं। अंग्रेज विद्वान् साइमन ने स्वरों की संख्या आठ हजार बतलायी है।

'सामवेद' के दो विभाग हैं—आर्चिक एवं गान। आर्चिक शब्द का अर्थ 'ऋक्-समूह' होता है जिसके दो भाग हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। दोनों की मन्त्र संख्या १८१० है जिनमें २६१ मन्त्रों की पुनरावृत्ति हुई है जिससे मन्त्रों की संख्या १५४९ हो जाती है। इनमें ७५ मन्त्र नये हैं, शेष सभी मन्त्र 'ऋग्वेद' के हैं। ये मन्त्र अष्टम और नवम मण्डल से लिये गए हैं। इस दृष्टि से सामवेद के अपने मन्त्र केवल ७५ हैं और यह सभी वेदों से छोटा है। विन्टरनिज का कहना है कि "ऋग्वेद में न मिलने वाले ७५ मन्त्र अन्य संहिताओं में जहाँ-तहाँ और कभी-कभी कर्मकाण्ड परक ग्रन्थों में भी, प्रकीर्ण मिलते हैं। सम्भव है इनमें कुछ किसी अज्ञात संस्करण से भी लिये गए हों। वैसे यही प्रतीत होता है कि ऋग्वेद की बिखरी पंक्तियों को मिला कर इनका एक और अर्थहीन-सा संस्करण स्थापित कर दिया गया है, बश। 'ऋग्वेद और सामवेद' में कुछ पाठभेद भी मिलते हैं जिनका अभिप्राय यह कहा जाता है कि कोई और प्राचीनतर संहिता थी जो आज हमें नहीं मिलती।"*

आफ्रेख नामक जर्मन विद्वान् ने इन पाठ-भेदों के कारणों की खोज की है और बताया है कि पाठ-भेद जान-बूझकर गान की सुविधा के लिए किये गए हैं। 'सामवेद' का विभाजन प्रपाठक में किया गया है। पूर्वार्चिक में ६ प्रपाठक हैं तथा प्रत्येक प्रपाठक दो 'अर्ध' या खण्ड में विभाजित है और प्रत्येक खण्ड 'दशति' में विभक्त है। प्रत्येक 'दशति' का विभाजन 'मन्त्र' में हुआ पर, प्रत्येक 'दशति' में दस मन्त्रों का सभी जगह निर्वाह नहीं किया गया है; कहीं-कहीं उनकी संख्या ८ और ९ भी है। सम्पूर्ण पूर्वार्चिक में ५८५ मन्त्र हैं। उत्तरार्चिक में नौ प्रपाठक हैं, जिनमें प्रारम्भिक पाँच प्रपाठक दो अर्धभागों में तथा शेष चार में तीन अर्धक हैं। नौ प्रपाठकों में २२ अर्ध, ११९ खण्ड एवं ४०० सूक्त है तथा मन्त्रों की संख्या १८१० है 'सामवेद' के मूलमन्त्रों को 'योनि के नाम से अभिहित किया जाता है। 'योनि' स्वरों की जननी को कहते हैं। अनेक पुराणों

* प्राचीन भारतीय साहित्य, भाग १, खण्ड १, पृ० १२६।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में 'सामवेद' की एक सहस्र शाखाओं का उल्लेख किया गया है। पर आज-कल इसकी तीन ही शाखाएँ प्राप्त होती हैं—कौथुमीय, राणायनीय तथा जैमिनीय। 'महाभाष्य' से भी 'सामवेद' की सहस्र शाखाओं की पुष्टि होती है। कौथुमशाखा अत्यन्त लोकप्रिय है और इसका प्रचार गुजरात में है। इसकी ताण्ड्य नामक एक शाखा भी प्राप्त होती है? 'ताण्ड्यब्राह्मण' एवं 'छान्दोग्य उपनिषद्' का सम्बन्ध इसी शाखा से है। सूत्र ग्रन्थों में 'कलशकल्पसूक्त', 'लाट्यायनश्रौतसूत्र' तथा 'गोभिलगृह्यसूत्र' का सम्बन्ध इसी शाखा से है। राणायनीयशाखा का प्रचार महाराष्ट्र में अधिक है। कौथुमशाखा से यह अधिक भिन्न नहीं है। इसमें कहीं-कहीं उच्चारण की भिन्नता दिखाई पड़ती है। जैसे, कौथुमीय उच्चारण 'हाउ' और 'राई' राणायनीय में 'हावु' और 'रायी' हो जाता है।

जैमिनीय शाखा का सम्बन्ध 'जैमिनीय-संहिता', 'जैमिनीय-ब्राह्मण', 'केनोपनिषद्', 'जैमिनीय-उपनिषद्', 'जैमिनीय-श्रौतसूत्र, और 'जैमिनीय-गृह्यसूत्र' से है। 'शतपथ-ब्राह्मण' में सामगानों के पद की संख्या चार सहस्र बृहती तथा साममन्त्रों के पद एक लाख चौवालीस हजार कहे गए हैं। सामों की संख्या आठ हजार और गायनों की संख्या एक हजार आठ सौ बीस है।

'सामवेद' के प्रमुख देवता सविता या सूर्य हैं। इसमें इन्द्र और अग्नि की भी प्रार्थना की गयी है, पर उनका प्राधान्य नहीं है। इसमें उपासना काण्ड की प्रधानता है तथा अग्निरूप, सूर्यरूप, सोमरूप ईश्वर की उपासना की गयी है। विश्वकल्याण की भावना से भरे हुए इसमें अनेक मन्त्र हैं। गेयता एवं अन्य विषयों की प्रधानता के कारण सामवेद का स्थान अवश्य ही महनीय है। ऋषियों ने प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से गीतात्मकता को प्रश्रय देते हुए ऋग्वेद के मन्त्रों का चयन कर 'सामवेद' का संकलन किया और उसे गीतशैली में ढाल दिया, जिससे मन्त्रों में स्वर-सन्धान के कारण अपूर्व चमत्कार का समावेश हुआ।

यजुर्वेद

यज्ञ-सम्पादन के लिए अध्वर्यु नामक ऋत्विज का जिस वेद से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है उसे 'यजुर्वेद' कहते हैं। इसमें अध्वर्यू के लिए ही वैदिक प्रार्थनाएँ संगृहीत हैं। 'यजुर्वेद' वैदिक कर्मकाण्ड का प्रधान आधार है और इसमें यजुषों का संग्रह किया गया है। 'यजुष्' शब्द के कई अर्थ हैं। कतिपय विद्वानों के अनुसार गद्यात्मक मन्त्रों की यजुः संज्ञा होती है, अतः गद्यप्रधान मन्त्रों के आधिक्य के कारण इसे 'यजुर्वेद' कहते हैं। इस वेद में ऋक् और साम से भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों का संग्रह है। जिसमें अक्षरों की संख्या नियत या निश्चित न हो उसे यजुष् कहते हैं। कर्म की प्रधानता के कारण समस्त वैदिक वाङ्मय में 'यजुर्वेद' का स्वतन्त्र स्थान है। यजुर्वेद से सम्बद्ध ऋत्विज् अध्वर्यु को यज्ञ का संचालक माना जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस वेद का साहित्य अत्यन्त विस्तृत था, किन्तु सम्प्रति उसकी समस्त शाखाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार इसकी सौ शाखाएँ थीं। इस समय इसकी दो शाखाएँ प्रसिद्ध हैं—कृष्णयजुर्वेद एवं शुक्लयजुर्वेद। इनमें भी प्रतिपाद्य विषय की प्रधानता के कारण शुक्लयजुर्वेद अधिक महत्त्वशाली है। शुक्लयजुर्वेद की मन्त्र-संहिता को 'वाजसनेयी-संहिता' कहते हैं, जिसमें ४० अध्याय हैं तथा अन्तिम १५ अध्याय खिल होने के कारण परवर्त्ती रचना के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। इसके प्रारम्भिक दो अध्यायों में दर्श एवं पौर्णमास यज्ञों से सम्बद्ध मन्त्र संगृहीत हैं तथा तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र और चातुर्मास्य यज्ञों के लिए उपयोगी मन्त्रों को संगृहीत किया गया है। चतुर्थ से अष्टम अध्याय तक सोमयागों का वर्णन है। इसमें सवन (प्रातः, मध्याह्न एवं सायं काल के यज्ञ), एकाह (एक दिन में समाप्त होने वाला यज्ञ) तथा राजसूय का वर्णन है। राजसूय के अन्तर्गत द्यूतक्रीड़ा, अस्त्रक्रीड़ा आदि नाना प्रकार की राज्योचित क्रीड़ाएँ वर्णित हैं। ग्यारह से अठारह अध्याय तक अग्निचयन या यज्ञीय होमाग्नि के लिए वेदिका निर्माण का वर्णन किया गया है। २६ से २९ अध्याय तक खिलमन्त्र (परिशिष्ट) संकलित हैं और तीसवें अध्याय में पुरुषमेध वर्णित है। ३१ वें अध्याय में पुरुषसूक्त जिसमें 'ऋग्वेद' से ६ मन्त्र अधिक हैं। ३२ वें एवं ३३ वें अध्याय में 'शिवसंकल्प' का विवेचन किया गया है। ३५ वें अध्याय में पित्रमेध तथा ३६ से ३८ वें अध्याय तक प्रवर्ग्ययाग वर्णित हैं। इसके अन्तिम अध्याय में 'ईशावास्य उपनिषद्' है। शुक्लयजुर्वेद की दो संहिताएँ हैं—माध्यन्दिन एवं काण्व। मद्रास से प्रकाशित काण्व-संहिता में ४० अध्याय ३२८ अनुवाक् तथा २०८६ मन्त्र हैं। माध्यन्दिन संहिता में मन्त्रों की संख्या १९७५ है।

'कृष्णयजुर्वेद' में चरणव्यूह के अनुसार ८५ शाखाएँ हैं जिनमें केवल चार उपलब्ध हैं—तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक तथा कपिष्ठलकठशाखा।

तैत्तिरीय संहिता के सभी ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद्, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं। इसमें सात काण्ड हैं तथा वे चौवालीस प्रपाठक एवं ६३१ अनुवाकों में विभक्त हैं। इसमें पौरोडाश, याजमान, वाजपेय, राजसूय आदि नाना प्रकार के यज्ञों का विधान है। मैत्रायणी-संहिता में गद्य एवं पद्य दोनों का मिश्रण है। इसके चार खण्ड हैं और प्रथम काण्ड में ग्यारह प्रपाठक हैं जिनमें दर्शपूर्णमास, अध्वर, आधान, पुनराधान, चतुर्मास्य एवं वाजपेय यज्ञ वर्णित हैं। द्वितीय काण्ड में तेरह प्रपाठक हैं तथा काम्य-इष्टि, राजसूय एवं अग्निचिति का विस्तारपूर्वक वर्णन है। तृतीय काण्ड में सोलह प्रपाठक हैं अग्निचिति, अध्वरविधि, सौत्रामणी एवं अश्वमेध का वर्णन किया गया है। चतुर्थ काण्ड को खिलकाण्ड कहते हैं जिसमें चौदह प्रपाठक हैं तथा पूर्ववर्णित सभी यज्ञों से सम्बद्ध सामग्रियों का विवेचन है। सम्पूर्ण 'मैत्रायणी-संहिता' में २१४४ मन्त्र हैं जिनमें १७०१ ऋचाएँ ऋग्वेद की हैं। 'कठसंहिता' पाँच खण्डों में विभक्त है जिन्हें

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्रमशः इठिमिका, मध्यमिका, ओरिमिका, याज्वानुवाक्या तथा अश्वमेधानुवचन कहा जाता है। इसमें ४० स्थानक, १३ अनुवचन, ८४३ अनुवाक्, ३०९१ मन्त्र तथा मन्त्र-ब्राह्मण (दोनों की सम्मिलित संख्या) १८ सहस्र हैं तथा दर्शपौर्णमास, अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, आधान काम्यइष्टि, निरूढ़पशुबन्ध, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, चातुर्मास्य, सोत्रामणी तथा अश्वमेध का वर्णन किया गया है। कपिष्ठलकठसंहिता की एक मात्र प्रति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में है, जो अधूरी है। इसका विभाजन अष्टक एवं अध्यायों में हुआ है।

अथर्ववेद

'अथर्व' का अर्थ है 'जादू-टोना' या 'अथर-वाणि' तथा अथर्वन का अर्थ अग्नि उद्बोधन करने वाला पुरोहित होता है। 'अथर्ववेद' के मूल में जादूगर और पुरोहित का भाव समाविष्ट है। इसका प्राचीन नाम अथर्वाङ्गिरस था। यह नाम उसकी हस्तलिखित प्रतियों में भी प्राप्त होता है। यह शब्द अथर्व और अंगिरा इन दो शब्दों के योग से बना है जो दो प्राचीन ऋषिकुल हैं। आचार्य ब्लूमफील्ड के अनुसार अथर्व शब्द सात्त्विक मन्त्र का पर्याय है जिसमें उत्तम विधियों का संकेत प्राप्त होता है तथा अंगिरस शब्द तामस मन्त्रों का पर्याय है, जो जादू-टोना एवं आभिचारिक विधियों का प्रतीक है। इस वेद का ऋत्विज् ब्रह्मा होता है। ऋग्वेद में इस वेद की महिमा गायी गयी है और इसकी प्राथमिकता का निर्देश किया गया है (१।८३।५) 'गोपथ ब्राह्मण' में बतलाया गया है कि तीनों वेदों से यज्ञ का केवल एक पक्षीय संस्कार होता है पर ब्रह्मा के मन से यज्ञ के दूसरे पक्ष का भी संस्कार होता है।

इसमें कुल बीस काण्ड हैं जिनमें ७३१ सूक्त तथा ५९८७ मन्त्रों का संग्रह है। इसमें लगभग बारह सौ मन्त्र ऋग्वेद से लिये गए हैं। बीसवें काण्ड के १४३ सूक्तों में से १२ के अतिरिक्त शेष सभी सूक्त 'ऋग्वेद' के दशम मण्डल से मिलते-जुलते हैं। इसके पंद्रहवें तथा सोलहवें काण्ड में २७ सूक्त हैं तथा तीस फुटकर सूक्त गद्यात्मक हैं। 'अथर्ववेद' के सूक्तों के संकलन में विशिष्ट उद्देश्य एवं क्रम का ध्यान रखा गया है। इसके प्रारम्भिक सात काण्डों में छोटे-छोटे सूक्त हैं। प्रथम काण्ड के सूक्त चार मन्त्रों के हैं, द्वितीय काण्ड में पाँच मन्त्र, तृतीय काण्ड में ६ मन्त्र तथा चतुर्थ काण्ड में सात मन्त्रों के सूक्त हैं। पाँचवें काण्ड में आठ मन्त्र हैं और छठे काण्ड में १४२ सूक्त तथा प्रति सूक्त में तीन मन्त्र हैं। सप्तम काण्ड में सूक्तों की संख्या ११८ है जिनमें आधे सूक्त एक मन्त्र वाले हैं। आठ से बारह काण्डों में बड़े-बड़े सूक्त संगृहीत हैं, जिनमें विषयों की भिन्नता दिखाई पड़ती है। १३ वें काण्ड से १८ वें काण्ड तक विषय की एकता है। बारहवें काण्ड के प्रारम्भ में ६३ मन्त्र वाला पृथ्वीसूक्त है जिसमें अनेक राजनैतिक तथा भौगोलिक सिद्धान्तों का विवेचन है। तेरहवें काण्ड में आध्यात्मिक विषयों की चर्चा है तथा चौदहवें

CC-0.Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

काण्ड में केवल दो लम्बे सूक्त हैं जिनमें वैवाहिक विषय का वर्णन है। इसमें मन्त्रों की संख्या १३९ है। १५ वें काण्ड में व्रात्यों के यज्ञ-सम्पादन का आध्यात्मिक विवरण है। १६ वें काण्ड में दुःस्वप्न नाशक मन्त्र १०३ हैं तथा १७ वें काण्ड के एक ही सूक्त में (३० मन्त्र) अभ्युदय के लिए प्रार्थना करने का वर्णन है। १८ वें काण्ड को श्रद्धाकाण्ड कहते हैं, जिसमें पितृमेध-विषयक मन्त्रों का संग्रह है। अन्तिम दो काण्ड (१९, २०) खिलकाण्ड या परिशिष्ट कहे जाते हैं। १९ वें काण्ड में ७२ सूक्त तथा ४५३ मन्त्र हैं, जो सोमयाग के लिए आवश्यक हैं तथा प्रधानतः ये ऋग्वेद से ही संगृहीत हैं। कुल मिलाकर 'अथर्ववेद' का पंचम अंश 'ऋग्वेद' का ही है तथा ये मन्त्र विशेष रूप से प्रथम, अष्टम एवं दशम मण्डल से लिये गए हैं।

पतंजलि कृत 'महाभाष्य' में अथर्ववेद' की नौ शाखाओं का निर्देश है। इसके शाखाओं के नाम हैं—पिप्पलाद, स्तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श तथा चारणवैद्य इस समय इस वेद की केवल दो ही शाखाएँ मिलती हैं—पिप्पलाद तथा शौनकीय। पिप्पलाद शाखा के रचयिता पिप्पलाद मुनि हैं। इसकी मन्त्रसंहिता बीस काण्डों की है। आजकल 'अथर्ववेद संहिता' का प्रचलित रूप इसी शाखा का है।

'अथर्ववेद' के ७३१ सूक्तों को विषय-विवेचन की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया जाता है—आयुर्वेद-विषयक १४४ सूक्त, राजधर्म एवं राष्ट्रधर्म-सम्बन्धी २१५ सूक्त, समाज व्यवस्था-विषयक ७५ सूक्त, अध्यात्म-विषयक ८३ सूक्त तथा शेष २१४ सूक्तों का संबंध विविध विषयों से है। इसके विषय अन्य वेदों की अपेक्षा नितान्त भिन्न एवं विलक्षण हैं। इन्हें अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैवत के रूप में विभक्त किया जा सकता है। अध्यात्म के अन्तर्गत ब्रह्म, परमात्मा तथा चारों आश्रमों के विविध निर्देश आते हैं तथा अधिभूत के भीतर राजा, राज्य-शासन, संग्राम, शत्रु, वाहन आदि विषयों का विवेचन है। अधिदैवत प्रकरण में देवता, यज्ञ एवं काल-संबंधी विविध विषयों का विवेचन है। 'अथर्ववेद' में मन्त्र-तन्त्रों का प्रकीर्ण संग्रह है तथा इसमें संगृहीत सूक्तों का विषय अधिकांशतः गृह्य संस्कारों का है। इनमें जातेष्टि, विवाह एवं अन्त्येष्टि सदृश पारिवारिक संस्कारों का उल्लेख है तथा राजधर्म से सम्बद्ध विषय अधिकतर वर्णित हैं। 'अथर्ववेद' में ऐसे कई सूक्त हैं जिनका सम्बन्ध विवाह और प्रेम से है तथा कुछ सूक्तों में पुत्रोत्पत्ति एवं नवजात शिशु की रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है। इसमें कुछ ऐसे मन्त्र हैं जिनमें सपत्नी को वश में करने तथा पति-पत्नी का स्नेह प्राप्त करने के लिए जादू-टोने का वर्णन है तथा स्त्री-पुरुष को वश में करने के लिए वशीकरण मन्त्रों का विधान है। इसी प्रकार मारण, मोहन और उच्चाटन मन्त्र भी दिये गए हैं। अध्यात्मवाद 'अथर्ववेद' का प्रतिपाद्य है। इसमें बहुदेवतावाद का निराकरण कर एकेश्वरवाद की स्थापना की गयी है। इसके भूमिसूक्त में मातृभूमि की मनोहर कल्पना की गयी है तथा देशभक्ति का अत्यन्त मनोहर चित्र खींचा गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'अथर्ववेद' की रचना 'ऋग्वेद' के बाद हुई है जिसका प्रमाण इसकी भाषा है, जो अपेक्षाकृत अर्वाचीन प्रतीत होती है। इसमें शब्द बहुधा बोल-चाल की भाषा के हैं। इसमें चित्रित समाज का रूप भी 'ऋग्वेद' की अपेक्षा विकास का सूचक सिद्ध होता है। 'अथर्ववेद' में भौतिक विषयों की प्रधानता पर बल दिया गया है, जब कि अन्य वेदों में देवताओं की स्तुति एवं आमुष्मिक विषयों का प्राधान्य है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तृतीय अध्याय

(रामायण और महाभारत)

रामायण (वाल्मीकि)

वाल्मीकि संस्कृत के आदि कवि हैं और उनका काव्य रामायण आदि काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है आदि कवि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सर्व प्रथम उन्हीं के मुख से काव्य का आविर्भाव हुआ था। 'रामायण' के बालकाण्ड में एक कथा मिलती है जिसके अनुसार एक बार जब वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे भ्रमण कर रहे थे, उसी समय एक व्याधा आया और उसने वहाँ विद्यमान क्रौंच पक्षी के जोड़े पर बाण-प्रहार किया। बाण लगते ही क्रौंच मर गया और क्रौंची करुण स्वर में आर्तनाद करने लगी। इस करुण दृश्य को देख कर महर्षि के हृदय में करुणा का नैसर्गिक स्रोत फूट पड़ा और उनके मुख से अकस्मात् शाप के रूप में काव्य की वेगवती धारा प्रवाहित हो गयी। उन्होंने व्याधे को शाप देते हुए कहा कि जाओ, तुम्हें जीवन में कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी क्योंकि तुमने प्यार करते हुए क्रौंच-मिथुन में से एक को मार दिया है।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितुम्॥

कवि का शोक श्लोक में परिणत हो गया, जो सम-अक्षर युक्त चार पादों का था। इसी श्लोक के साथ संस्कृत वाग्धारा का जन्म हुआ और इसी में महाकाव्य की गरिमा संपृक्त हुई। वाल्मीकि को सच्चा कवि हृदय प्राप्त हुआ था और उनमें महाकवि के सभी गुण विद्यमान थे। 'रामायण' भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य एवं सम्पूर्ण जीवन की महा-गाथा है। वस्तुतः 'रामायण' से ही संस्कृत में कवित्वमय सर्जनात्मक काव्यधारा का प्रवर्त्तन हुआ, जो साहित्यिक संवेदनशीलता से अभिप्रेरित था। वाल्मीकि ने 'रामायण' के माध्यम से रामचन्द्र के पावन, लोकविश्रुत तथा आदर्श चरित का वर्णन कर इसमें कल्पना, भावना, शैली एवं चरित्र की उदात्तता का अप्रतिम रूप प्रस्तुत किया है।

'रामायण' चतुर्विंशति संहिता के नाम से विख्यात है; क्योंकि इसमें २४ सहस्र श्लोक हैं। विद्वानों का कहना है कि रामायण के प्रत्येक हजार श्लोक का प्रथम अक्षर गायत्री मन्त्र के अक्षर से ही प्रारम्भ होता है। सम्पूर्ण रामायण में सात काण्ड हैं— बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड। इसके प्रत्येक काण्ड में अनेक सर्ग हैं, जिनकी संख्या इस प्रकार है—बाल में ७७, अयोध्या में ११९, अरण्य में ७५, किष्किन्धा में ६७, सुन्दर में ६८, युद्ध में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१२८ तथा उत्तर में १११। 'रामायण' अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है, फलतः इस पर अनेक टीकाओं की रचना हुई है। इसकी टीकाओं की संख्या ३० के लगभग है। चूँकि इसका महत्त्व काव्य के अतिरिक्त धार्मिक दृष्टि से भी अधिक है, अतः इस पर विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के अनुसार भी व्याख्याएँ हुई हैं। 'रामायण' की सर्वाधिक प्राचीन टीका 'रामानुजीयम्' है जिसके रचयिता का नाम रामानुज है। इनका समय १४०० ई० के निकट है। अन्य टीकाओं के नाम हैं—वेंकटेशयज्वा कृत 'मर्वार्थसार', वैद्यनाथ दीक्षित कृत 'रामायणदीपिका', ईश्वर दीक्षित रचित 'बृहद्विवरण' एवं 'लघुविवरण' महेश्वर-तीर्थ रचित 'रामायणतत्त्वदीपिका' तथा गोविन्दराज कृत 'रामायणभूषण' आदि।

रचना काल—'रामायण' का रचना काल अत्यन्त विवादास्पद है और अभी तक कोई सर्वसम्मत प्रमाण उपस्थित नहीं हुआ है। प्रथम एवं सातवें काण्ड को आधार बनाते हुए मैक्डोनल ने अपनी सम्मति दी है कि यह एक व्यक्ति की रचना नहीं है। उन्होंने रामायण का अन्त्येष्टिकाल ५०० ई० पूर्व तथा उसमें किये गए प्रक्षेपों का समय २०० ई० पूर्व स्वीकार किया है। ए० श्लेगल के अनुसार रामायण को रचना ११००ई० पूर्व हुई थी। जी० गोरेसियो रामायण का सयय १२०० ई० पूर्व मानते हैं, पर ह्वीलर एवं बेवर इस पर बौद्धधर्म का प्रभाव मान कर इसका रचना-काल ५०० ई० पूर्व मानते हैं। याकोबी के अनुसार इसकी रचना ५०० ई० पूर्व से ८०० ई० पूर्व के बीच हुई है। पर भारतीय परम्परा के अनुसार लाखों वर्ष पूर्व इसकी रचना त्रेता युग के प्रारम्भ में हुई थी, किन्तु इसे पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं माना जाता और न युगों का काल-निर्धारण हो सका है। 'महाभारत' में रामायण की कथा उल्लेख है, अतः इसकी रचना उससे पूर्व हुई थी। इस पर बौद्धधर्म का प्रभाव अमान्य घोषित कर दिया गया है, फलतः बौद्ध धर्म के जन्म के पूर्व यह ग्रन्थ प्रचलित हो गया था।

प्रक्षिप्त-अंश— रामायण की कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि इसमें समय-समय पर प्रक्षिप्त अंशों को जोड़ा गया है। जर्मन विद्वान् हर्मन याकोबी के अनुसार मूल रामायण में पाँच ही काण्ड थे और युद्ध काण्ड के अन्त में ग्रन्थ-समाप्ति की सूचना प्राप्त होती है। पाश्चात्य विद्वानों तथा भारतीय पण्डितों ने बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त माना है। मूलग्रन्थ की शैली एवं वर्णन-पद्धति के आधार पर भी दोनों काण्ड स्वतन्त्र रचना प्रतीत होते हैं। बालकाण्ड के प्रारम्भ में रामायण की जो विषय सूची दी गयी है उसमें उत्तर काण्ड का उल्लेख नहीं है। उत्तरकाण्ड में कुछ ऐसे उपाख्यानों का वर्णन है, जिनका संकेत पूर्ववर्ती काण्डों में नहीं मिलता। विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि रामायण के प्रक्षिप्तांश महाभारत के 'शतसाहस्री' रूप प्राप्त होने के पूर्व रचे जा चुके थे। प्रक्षिप्त काण्डों में ही राम-विष्णु के अवतार माने गये हैं और शेष काण्डों में नहीं, ऐसा पाश्चात्य विद्वानों का मत है; पर ऐसी बात नहीं है अयोध्या काण्ड तथा युद्धकाण्ड में भी राम को विष्णु का अवतार

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माना गया है। भाषा-शैली और वर्णन-पद्धति के आधार पर सम्पूर्ण उत्तर काण्ड और बालकाण्ड के वे अंश जो राम-कथा से प्रत्यक्ष सम्बद्ध नहीं हैं, निश्चत रूप से प्रक्षिप्त हैं।

रामायण के संस्करण—रामायण के तीन संस्करण प्राप्त होते हैं और तीनों में पाठ-भेद दिखाई पड़ता है। उत्तरीभारत, बंगाल एवं काश्मीर में रामायण के तीन संस्करण उपलब्ध हैं जिनमें परस्पर श्लोकों का ही अन्तर नहीं है, अपितु कहीं-कहीं तो इनके सर्ग के सर्ग भिन्न हैं।

काव्यतत्त्व—रामायण की शैली प्रौढ़, काव्यमय, परिमार्जित, अलंकृत एवं प्रवाहपूर्ण है तथा इसमें अलंकृत भाषा के माध्यम से समग्रमानव-जीवन का अत्यन्त दयणीय चित्र अंकित किया गया है और कवि की दृष्टि प्रकृति के अनेकविध मनोरम दृश्यों की ओर भी गयी है। रामायण का कवि प्रकृति की सुरम्य वनस्थली से अपने को दूर नहीं कर पाता और वर्णन की पृष्ठ भूमि के रूप में अथवा मन को रवाने के लिए या मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का सहारा ग्रहण करता है। रामायण एक ऐतिहासिक महाकाव्य होने के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं चिन्तन-प्रणाली का अपूर्व कोश है, जिसमें भाषा और भाव का अत्यन्त उदात्त रूप तथा अलंकृत-शैली का भव्य रूप प्रस्तुत किया गया है। वाल्मीकि रामायण काव्यमात्र न होकर दो भिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के संघर्ष की कहानी है। आदि कवि की सौन्दर्य-चेतना कवित्वमयी है। यद्यपि इसमें प्रकृति के अधिकांश चित्र विवरणात्मक हैं तथापि उसमें कवि की चित्रण-कला का अपूर्व कौशल दिखाई पड़ता है। विवरणात्मक स्थलों में ही कवि ने अधिक चित्र-विधान किये हैं। 'रामायण' में प्रकृति-चित्रण प्रचुर मात्रा में है जिसमें विहित कवि की दृष्टि प्रकृत कवि का रूप प्रस्तुत करती है। उदाहरण के लिए गंगा-वर्णन लिया जा सकता है—

जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीम्।
क्वचिद् वेणीकृतजलां क्वचिदावर्त्तशोभिताम्॥
क्वचित्स्तिमितगम्भीरां क्वचिद् वेगसमाकुलाम्।
क्वचिद्गम्भीरनिर्घोषां क्वचिद् भैरवनिःस्वनाम्॥

—अयोध्याकाण्ड, ५०।१६,१७

"जल के आघात से गंगा जी उग्र अट्टहास-सा करती हैं, निर्मल फेनों में वे हँसती हैं। कहीं उनका जल वेणी के आकार का लगता है, कहीं भँवर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। गंगा का प्रवाह कहीं स्थिर और गम्भीर है, कहीं वेगवान् और चंचल।"

रामायण का कवि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त शब्दालंकारों का प्रयोग कर अपनी शैली को अलंकृत करता है। वाल्मीकि संस्कृत काव्य के इतिहास में 'स्वाभाविक शैली' के प्रवर्त्तक माने जाते हैं, जिसका अनुगमन अश्वघोष तथा कालिदास प्रभृति कवियों ने पूरी सफलता एवं मनोयोग के साथ किया है। रामा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यण में सहज और अकृत्रिमशैली के अतिरिक्त कहीं-कहीं अलंकृत शैली का भी प्रयोग है। सुन्दरकाण्ड के 'चन्द्रोदय-वर्णन' में अन्त्यानुप्रास की मनोरम छटा प्रदर्शित की गई है, किन्तु वही पद्य अलंकार के दुष्प्रयोग के कारण बोझिल नहीं हो सका है और न शैली की कृत्रिमता से मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। वाल्मीकि की सर्वाधिक विशेषता है उनका प्रकृति-प्रेम। प्रकृति के कोमल, भयंकर या अलंकृत रूपों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए उन्होंने अपनी अपूर्व निरीक्षण-शक्ति का परिचय दिया है। प्रकृति-चित्रण में कवि ने कहीं बिम्बग्रहणवाली अनाविल अलंकृत शैली के द्वारा प्रकृति का यथावत् चित्र उपस्थित किया है तो कहीं मानवीय भावनाओं की तुलना प्रकृति के क्रिया-कलाप से करते हुए उन्होंने अपनी अपूर्व निरीक्षण शैली का परिचय दिया है। कवि, वक्ता या पात्र की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की झलक बाह्य प्रकृति में दिखाते हुए दोनों के बीच समन्वय स्थापित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वाल्मीकि प्रकृति का सच्चा चितेरा है जो बहुविध रंगों के द्वारा भावों के आधारफलक पर उसका चित्र उरेहने में पूर्णतः सफल हुआ है, जिसकी रेखाएँ अत्यन्त सूक्ष्म और सहज हैं।

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवंजलं पर्वतधातुताम्रम्।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलपगाशीघ्रतरं वहन्ति॥
मेघाभिकामाः परिसंपतन्ति संमोदिताः भाति बलाकपंक्तिः।
वातावधूतावरपौण्डरीकी लम्बेवमाला रूचिराम्बरस्य॥

—किष्किन्धाकाण्ड, २८।१८, २३

"नदियाँ उस जल को, जिसमें सर्ज और कदम्ब के पुष्प बह रहे हैं, जो पर्वत की धातुओं से ताम्रवर्ण हो रहा है और जिसमें मोरों की केकावाणी की अनुगुंज है, तेजी से बहाकर ले जाती हैं। मेघों की कामना करने वाली, उड़ती हुई श्वेत बकपंक्ति श्रेष्ठ पक्षों से निर्मित, हवा में डोलती हुई, आकाश की सुन्दर माला-सी जान पड़ती है।" आदि कवि ने शब्द-क्रीड़ा की भी प्रवृत्ति प्रदर्शित की है। वर्षा वर्णन (किष्किन्धा काण्ड) एवं 'चन्द्रोदय-वर्णन' (युद्धकाण्ड) में यह प्रवृत्ति अधिक है।

निद्राशनैः केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति।
हृष्टा बलाका धनमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति॥

—किष्किन्धा काण्ड, २८।२५

"धीरे-धीरे निद्रा केशव को प्राप्त होती है, नदी तेजी से सागर तक पहुँचती है, हर्ष भरी बगुली बादल के पास पहुँचती है और कामनावती रमणी प्रियतम के पास।"

वाल्मीकि नैसर्गिक कवि हैं, जिनकी लेखनी किसी विषय का वर्णन करते समय उसका चित्र खींच देती है। कवि रामायण में मनोरम उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की विराट दृश्यावली प्रस्तुत कर देता है तथा अपनी रस-पेशल दृष्टि से रस की वृष्टि करता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वह किसी विषय का वर्णन करते समय अप्रस्तुत विजान के रूप में, अलंकारों की छटा छिटका देता है।

प्रकृति की भाँति नारी के रूप-चित्रण में या किसी विषय का वर्णन उपस्थित करते समय कवि की लेखनी भावों की नवीन उद्‌भावना करती हुई मनोरम चित्र उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ है। रावण के अन्तःपुर में शयनागार में अस्तव्यस्त पड़ी हुई रति-श्रम से खिन्न नारियों का अनाविल चित्र अत्यन्त हृदयग्राही, स्वाभाविक और मादक है। इसी प्रकार मदविह्वला तारा के मदिररूप और यौवन का चित्रण करने में कवि की लेखनी थकना नहीं जानती। नितम्बों तक प्रलम्बमान कांची के लोलनृत्य के वर्णन में कविप्रतिभा का सुन्दर रूप प्रदर्शित होता है।

मानव प्रकृति के चित्रण में भी वाल्मीकि ने सूक्ष्मपर्यवेक्षणशक्ति का परिचय दिया है। राम, सीता, भरत, हनुमान्, विभीषण, रावण आदि के चरित्रांकन में चरित्र-चित्रण का वैचित्र्य दिखाई पड़ता है। इनके राम मानवसुलभ गुणों से विभूषित हैं, किन्तु उनमें गुणों के अतिरिक्त मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं; जिससे वे अतिमानव नहीं बन पाते और पूरे मानव के रूप में उपस्थित होते हैं।

कथानक के संयोजन में कवि की दृष्टि उत्कृष्ट संघटनात्मक शक्ति प्रकट होती है। वर्णनात्मक धारा की पूर्ण कल्पना तथा घटना-सम्बन्धी सजीवता के लिए कवि ने अनेक विवरणों का प्रयोग किया है। कतिपय पात्रों द्वारा देखे गए दुःस्वप्नों से कथानक में तीव्रता एवं मार्मिकता आ गई है। भरत और त्रिजटा के दुःस्वप्न ऐसे ही हैं। भारतीय जीवन की उदात्तता, सौन्दर्य, नीतिविधान, राजधर्म, सामाजिक आदर्श आदि की सुखकर अभिव्यक्ति रामायण में है जिससे इसकी महाकाव्यात्मक गरिमा में वृद्धि हुई है। वस्तु-व्यंजना, भावव्यंजना एवं शैली का सहज तथा अलंकृत रूप इसे महाकाव्य की उदात्तता प्रदान किये बिना नहीं रहता। वाल्मीकि महाकाव्यात्मक कथानक के विस्तृत क्षेत्र के पूर्ण गीतात्मक और कवित्वमय रूप का वर्णन करने वाले प्रकृत कवि हैं।

'रामायण' में अधिकांशतः अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है, पर सर्ग के अन्त में वसन्ततिलका, वंशस्थ या द्रुत विलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसकी भाषा सरल और विषयानुसारिणी है। कवि ने सर्वत्र वर्णन-कौशल का प्रदर्शन कर अपनी अद्भुत काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। वाल्मीकि संस्कृत में रस-धारा के प्रथम प्रयोक्ता महाकवि हैं।

महाभारत (व्यास)

'महाभारत' के रचयिता व्यास जी हैं। वेदव्यास का नाम अनेक दार्शनिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों के प्रणेता के रूप में विख्यात है। वे वेदों के विभागकर्त्ता, महाभारत, ब्रह्मसूत्र, भागवत तथा अन्य अनेक पुराणों के कर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्राचीन विश्वास

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के अनुसार प्रत्येक द्वापर युग में आकर वेदव्यास वेदों का विभाजन करते हैं। इस मन्वन्तर के अट्ठाईस व्यासों के होने का विवरण प्राप्त होता है। अट्ठाईसवें व्यास का नाम कृष्णद्वैपायन व्यास है। इन्होंने ही महाभारत एवं अठारह पुराणों का प्रणयन किया है। व्यास नामधारी व्यक्ति के सम्बन्ध में अनेक पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि यह किसी का अभिधान न होकर प्रतीकात्मक, कल्पनात्मक या उद्धृत नाम है। भारतीय विद्वान् भी व्यास को उपाधि सूचक मानते हैं। महाभारत में कृष्णद्वैपायन को व्यास कहा गया है जिनका अन्य नाम बादरायण व्यास भी था। इन्होंने अपने ज्ञान की समस्त साधना बदरिकाश्रम में की थी, अतः ये बादरायण के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महाभारत

यह भारतीय जीवन, विशेषतः हिन्दू जनता का जातीय इतिहास है जिसकी रचना एक लाख श्लोकों में हुई है। विण्टरनित्स ने (जर्मन विद्वान्) इसे सीमित अर्थ में इतिहास कहा है, पर उनके अनुसार "वास्तव में एक अर्थ में महाभारत एक काव्यकृति है ही नहीं, अपने में पूरा साहित्य है।" यह काव्य और इतिहास के अतिरिक्त अपने में भारतीय सांस्कृतिक चेतना को छिपाये हुए एक महान् सांस्कृतिक निधि है, स्वयं एक संस्कृति है। इसमें कवि ने कौरवों और पाण्डवों की कथा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विशाल चित्र अंकित किया है। 'महाभारत' में संघर्ष-संकुल भारतीय-जीवन की यथार्थ कहानी है जिसमें दो जीवन मूल्यों का चित्र उरेहा गया है तथा तत्कालीन सम्पूर्ण विचारधाराओं एवं युगचेतना को समेटने का सफल प्रयास किया गया है। इसी लिए कहा गया है कि 'यन्न भारते तन्न भारते'—भारत में जो नहीं है, पह महाभारत में भी नहीं है। 'महाभारत' का अर्थ है 'भारत लोगों के युद्ध का महान् आख्यान।' इतिहास, धर्म राजनीति तथा साहित्य सभी दृष्टियों से यह महान् उपलब्धि है। इसे हिन्दूधर्म के समस्त स्वरूप को निरूपित करने वाला पंचम वेद माना जाता रहा है स्वयं इसके रचयिता की गर्वोक्ति है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो यहाँ है, वही अन्यत्र भी है और जो यहाँ नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है।

धर्मे, ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तद् क्वचित्॥

'महाभारत' के शान्ति पर्व में जीवन की समस्याओं के समाधान के नानाविध तत्त्वों का वर्णन है, अतः यह हिन्दू जाति के बीच धर्म ग्रन्थ के रूप में समादृत है। भारतीय-साहित्य एवं चिन्तन पद्धति का श्रेष्ठ ग्रन्थ गीता महाभारत का ही एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता', 'भीष्मस्तवराज', गजेन्द्रमोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ महाभारत' के ही भाग हैं। उपर्युक्त पाँच ग्रन्थ'पञ्चरत्न' के नाम से अभिहित होते हैं। सम्प्रति 'महाभारत' में एक लाख श्लोक प्राप्त होते हैं, अतः इसे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'शतसाहस्री संहिता' कहा जाता है। इसका यह रूप १५०० वर्षों से है; क्योंकि इसकी पुष्टि गुप्त कालीन एक शिलालेख से होती है जहाँ 'महाभारत' के लिए 'शतसाहस्रीसंहिता' का प्रयोग किया गया है। इसका वर्त्तमान रूप अनेक शताब्दियों के विकास का परिणाम है, इस प्रकार की धारणा आधुनिक विद्वानों की है। इसके विकास के तीन क्रमिक सोपान हैं—जय, भारत तथा महाभारत। 'महाभारत' के मंगलश्लोक में नारायण, नर एवं सरस्वती देवी की वन्दना करते हुए जय नामक काव्य के पठन का विधान है। विद्वानों का कथन है कि यह 'जय' काव्य ही महाभारत का मूल रूप है। 'महाभारत' में लिखा है कि यह 'जय' नामक इतिहास है—जयनामेतिहासोऽयम्। इसकी दूसरी स्थिति भारत नाम की है जिसमें केवल युद्ध का वर्णन था और उपाख्यानों का समावेश नहीं किया गया था। उस समय इसमें २४ हजार श्लोक थे तथा यही ग्रन्थ वैशम्पायन द्वारा राजा जनमेजय को सुनाया गया था। चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्। उपाख्यानैर्विना तावत् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥ 'महाभारत' नाम तृतीय अवस्था का द्योतक है जब कि 'भारत' में उपाख्यानों का समावेश हुआ। विक्रम से पाँच सौ वर्ष पूर्व विरचित 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' में भारत के साथ ही महाभारत नाम का भी निर्देश है। इसके उपाख्यान कुछ तो ऐतिहासिक हैं तथा कुछ का सम्बन्ध प्राचीन राजाओं एवं ऋषि महर्षियों से है। हरिवंश को लेकर महाभारत के श्लोकों की संख्या एक लाख हो जाती है।

इस समय महाभारत के दो संस्करण प्राप्त होते हैं—उत्तरीय तथा दाक्षिणात्य। उत्तर भारत के संस्करण के पाँच रूप हैं तथा दक्षिण भारत के तीन रूप। इसके दो संस्करण बम्बई एवं एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित हैं। बम्बई वाले संस्करण में एक लाख सात हजार चार सौ अस्सी श्लोक हैं।

'महाभारत' का रचनाकाल अभी तक संदिग्ध है। ४४५ ई० के एक शिलालेख में 'महाभारत' का नाम आया है—शतसाहस्र्यां संहितायां वेदव्यासेनोक्तम्। इससे ज्ञात होता है कि इसके २०० वर्ष पूर्व अवश्य ही महाभारत का अस्तित्व रहा होगा। कनिष्क के सभापण्डित अश्वघोष द्वारा 'वज्रसूची-उपनिषद' में 'हरिवंश' तथा 'महाभारत' के श्लोक उद्घृत हैं, इससे ज्ञात होता है कि लक्षश्लोकात्मक महाभारत कनिष्क के समय तक प्रचलित हो गया था। इन आधारों पर विद्वानों ने महाभारत को ई० पू० ६०६ वर्ष से भी प्राचीन माना है। महाभारत में अठारह पर्व या खण्ड हैं—आदिपर्व, सभापर्व, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रास्थानिक तथा स्वर्गारोहणपर्व।

'महाभारत' की अनेक टीकाएँ हैं, जिनकी संख्या ३६ हैं। इनमें से एक मात्र नीलकण्ठ की टीका 'भारत-भावदीप' सम्पूर्ण महाभारत पर प्राप्त होती है। टीकाकार का समय १६५० से १७०० ई० के मध्य है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'महाभारत' भारत की नैतिक एवं धार्मिक परम्परा का प्रमुखतम स्रोत है तथा जन-मानस को अधिक प्रभावित करने के कारण कलात्मक ढंग से जीवन को प्रतिबिम्बित करने के कारण महान् काव्य कृति के रूप में समादृत है। पर, इसमें विशुद्ध काव्य की भाँति सौन्दर्यदृष्टि का प्राधान्य न होकर कर्म की प्रधानता है। इसमें प्रकृति-चित्रण अथवा किसी नायिका के रूप-वर्णन के प्रति लेखक रस लेते हुए दिखाई नहीं पड़ता। 'महाभारत' युगधर्म को चित्रित करने वाला अपूर्व काव्य है। इसमें जिस जीवन का चित्रण है उसमें अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व एवं बाह्य संघर्ष का विस्तार है तथा उनकी मार्मिक और तीव्र अभिव्यक्ति हुई है। इसका प्रधान विषय संघर्ष है और वह अर्थ एवं काम का संघर्ष है जो धर्म के दायरे में प्रवाहित हुआ है। 'महाभारत' में स्थान-स्थान पर नैतिक उपदेश, आध्यात्मिक तथ्य तथा राजधर्मसम्बन्धी विचार व्यक्त किये गए हैं। इसके शान्तिपर्व में राजधर्म का वर्णन भारतीय राजनीतिशास्त्र के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। 'महाभारत' में अनेक आख्यानों एवं विषयों को देख कर यह भावना मन में उठती है कि यह एक व्यक्ति की रचना न होकर कई व्यक्तियों की कृति है, परन्तु आन्तरिक प्रमाणों एवं शैली के आधार पर यह सिद्ध होता है कि इसे एकमात्र व्यास ने ही लिखा है। भाषा तथा शैली की एक रूपता इसे एक ही व्यक्ति की रचना सिद्ध करती है।

रामायण और महाभारत

वाल्मीकि और व्यास हमारे राष्ट्रीय आदर्शों को भावात्मक स्वर देने वाले महान् कलाकार एवं क्रान्तद्रष्टा कवि हैं। ये भारतीय साहित्याकाश के दो प्रोज्ज्वल एवं देदीप्यमान दीप्त जीवन दिशाएँ हैं, जिन्होंने शाश्वत एवं विश्वजनीन संस्कृति का विराट् परिवेश प्रस्तुत किया है। इनकी कविताएँ हिमालय के सदृश महान् एवं गंगा की तरह धवल और पावन हैं। भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता, भारतीय जीवन-दर्शन, भारतीय नैतिक आदर्श और जीवनबोध के अतिरिक्त भारतीय सौन्दर्य-संवेदन का जो आदर्श और मोहक तथा कल्याणकारी रूप है, इनकी कला में राशिभूत हो गया है। 'रामायण' और 'महाभारत' हमारी दो ऐसी अक्षय विभूतियाँ हैं, जो स्थान और समय की सीमा को तोड़ कर विश्व साहित्य या सार्वभौम संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठित हुई हैं और इनमें जीवन के ऐसे रूप का उर्जस्वल आदर्श निहित है, जो शाश्वत, चिरंतन और समय की सीमा से अबाधित है। दोनों रचनाएँ भारत की सर्वांगचेतना को विश्वधरातल पर अधिष्ठित करने वाली महान् जीवन गाथाएँ हैं, जिनसे विश्व का शोकाकुल मानव सदा प्रेरणा ग्रहण कर अपूर्व सुख और शान्ति अनुभव करता रहेगा, जब तक इस धरती पर समुद्र, गंगा और हिमालय विद्यमान रहेंगे। इनमें युग-युग से प्रवहमान मानवीय चिंतन की विविध धाराएँ आकर समाहित हो गयी हैं, जिनके कारण ये महासागर के गांभीर्य से आपूर्ण हैं। सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक मानव मन में उठने वाली जो शाश्वत भावनाएँ या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भावानुभूतियाँ हैं, उनका देवकल्प पावन निर्माण इन रचनाओं में मुखरित हो उठा है। धर्म तथा सत्य के अमर बीज को महान् बटवृक्ष के रूप में परिणत कर इन महाकवियों ने भारत को देवपूज्य भूमि का रूप प्रदान किया है। भारतवर्ष की पुण्यभूमि को महर्षि वाल्मीकि और व्यास की रचनाएँ गंगा के पवित्र जल की भाँति तरल तथा बहुविध लोकोपकारी एवं मंगलमयी भावनाएँ प्रदान कर उसे देवताओं के निवास योग्य भूमि बनाने वाली हैं। सागर के सदृश गंभीर तथा त्रिकाल में भी मर्यादाओं का अनुलंघन करने वाले राम, कृष्ण, भीष्म तथा युधिष्ठिर के रूप में महान् व्यक्तित्व का निर्माण कर इन कवियों ने विश्ववंद्य चरित्रों की सृष्टि की है। अब यहाँ उनके विषय, शिल्प, शैल्पी तथा जीवनादर्श एवं सांस्कृतिक परिवेश का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा। 'रामायण' और 'महाभारत' की प्रकृति अर्थात् रूप एवं विचार-पद्धति में पर्याप्त अन्तर है। परम्परा से 'रामायण' आदि काव्य कहा जाता है और 'महाभारत' इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, आख्यान आदि के नाम से अभिहित होता है अर्थात् यह भारतीय अन्तरात्मा, नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदर्शों एवं जीवन का विश्वकोश है। स्वयं इसके लेखक ने इसे समस्त भारतीय विद्या का भंडार कहा है। अतः, 'महाभारत' का प्रतिपाद्य रामायण की अपेक्षा विस्तृत है। जहाँ तक कलात्मक वैभव और सौन्दर्यानुभूति का प्रश्न है, 'रामायण' अपेक्षाकृत एक प्रौढ़ कृति है अर्थात् उसकी सौन्दर्य-संवेदना 'महाभारत' की अपेक्षा अधिक ललित या कवित्वपूर्ण है। 'महाभारत' में आधिकारिक कथा अर्थात् कौरवों एवं पाण्डवों की कथा के अतिरिक्त अनेक प्राचीन राजाओं तथा राजवंशों का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है, साथ ही उसके रचयिता का प्रधान उद्देश्य अनेक विषयों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इतिहास, पुराण, ज्योतिष, तत्त्वज्ञान, आयुर्वेद, भूगोल, राज-दर्शन, नीतिधर्म—का विवेचन एवं विवरण प्रस्तुत करना रहा है। 'रामायण' में राम-रावण-संग्राम ही उसकी मुख्य कथा है, साथ ही अन्य अवान्तर कथाएँ—वाली-सुग्रीव, सवरी, कबंध, विभीषण आदि—भी इसमें वर्णित हैं, पर वे मुख्य कथा के साथ इस प्रकार अनुस्यूत हैं कि उनके स्वतंत्र अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता और वे मुख्य कथा को पुष्ट करने में महत्त्वपूर्ण योग देती हैं या प्रधान कथा को गति प्रदान करती हैं। भौगोलिक दृष्टि से भी दोनों के विवरणों में अन्तर दिखायी पड़ता है। 'रामायण' के अनुसार भारत की भौगोलिक सीमा दक्षिण में विन्ध्य तथा दण्डक तक और पूरब में विदेह तक हैं और पश्चिम में सुराष्ट तक फ़ैली हुई है, पर 'महाभारत' में आर्यावर्त्त के विस्तृत रूप का उल्लेख हुआ है। दक्षिण में वह चोल तथा मालावार प्रान्त तक है तो पूरब में गंगासागर तक। युधिष्ठिर के राजसूय में लंका, उत्तरकुरु, हिमांचल प्रदेश आदि के अधिपति उपहार लेकर आते हैं।

'रामायण' तथा 'महाभारत' में कौन प्राचीन है, इस प्रश्न को लेकर विद्वानों ने परस्पर विरोधी तथ्य प्रकट किये हैं। पर, अन्तःसाक्ष्य की दृष्टि से रामायण की प्राचीनता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सिद्ध होती है। रामायण का लेखक 'महाभारत' की कथा तथा उसके पात्रों से परिचित नहीं है, जब कि 'महाभारत' में 'रामायण' की कथा (वनपर्व १८।२७-२९१) वर्णित है और यहाँ तक कि वाल्मीकि रामायण के श्लोक भी उद्घृत हैं। उदाहरण के लिए 'रामायण' के युद्धकाण्ड में वर्णित श्लोक द्रोणपर्व में उसी रूप में देखे जाते हैं।

न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद्ब्रवीषि प्लवंगम।
पीडाकरममित्राणां यत्तु कर्तव्यमेव तत्॥

—८१।२८

महाभारत के द्रोणपर्व में वाल्मीकि के नाम का भी उल्लेख है—

अति चायं पुरागीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरणमित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत्॥

दोनों ग्रन्थों ने भारतीय समाज और संस्कृति को एकसूत्र में आबद्ध करने में महान् योग दिया है। "भारतीय एकता की सेवा भी सबसे अधिक इन्हीं दो महाकाव्यों ने की। लंका, पंपापुर और अयोध्या देश के इन तीन भू-भागों की कथाओं को एक ही राष्ट्रीय महाकाव्य के रूप में गूँथ कर वाल्मीकि ने भारत की सांस्कृतिक एकता ही नहीं, भौगोलिक एकता को भी अक्षय बना दिया। इसी प्रकार महाभारतकार ने भी देश के विभिन्न भागों में फ़ैली हुई विचारधाराओं एवं संस्कृतियों को एक स्थान पर लाकर इस प्रकार गुंफित कर दिया कि 'महाभारत' सारे देश की जनता का कंठहार हो गया। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि कालिदास से लेकर आजतक के सभी भारतीय भाषाओं के कवि, 'रामायण' और 'महाभारत' की कथाओं पर काव्य-रचना करते रहे हैं। सारे देश का साहित्य आज भी 'रामायण' और 'महाभारथ' का क्षीर-पान कर बलिष्ठ हो रहा है, जिससे आप ही आप यह सत्य ध्वनित हो उठता है कि भारत की विचारधारा एक है, भारत की मानसिकता एक है एवं भारत की एक ही संस्कृति है, जिसकी सेवा विभिन्न भाषाओं में की जा रही है।"*

'महाभारत' और 'रामायण' को उपजीव्य ग्रन्थ मानकर उनके द्वारा अनुप्राणित काव्यों के अवलोकन करने से भी दोनों के रूप एवं शिल्पगत अन्तर का भान होता है। लौकिक या क्लासिकल संस्कृत के कवियों एवं लेखकों ने 'महाभारत' से कथानक को लेकर अपनी रचनाओं को सजाया अवश्य, पर उन्होंने उसकी शैली को आदर्श नहीं बनाया। इस दृष्टि से उन्हें अर्थात् शैली या शिल्पगत सौन्दर्य 'रामायण' का ही अभिभूत एवं उत्प्रेरित करता रहा। 'रामायण' की अलंकृत या कवित्वमय शैली ही परवर्ती

* संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १६१-१६२।

CC-0. Nepal Sahskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत कवियों द्वारा गृहीत हुई और उन्होंने 'महाभारत' को इतिहास, पुराण या धर्मशास्त्र के रूप में मान्यता देकर उसके शिल्पगत वैशिष्ट्य का अनुधावन नहीं किया। इस प्रकार 'रामायण' मुख्यतः महाकाव्य तथा गौणतः इतिहास के रूप में मान्य हुआ और 'महाभारत' को प्रधान रूप से इतिहास की दृष्टि से देखा गया और गौण रूप से उसके काव्यीय रूप को मान्यता प्राप्त हुई। 'महाभारत' में जिस शैली का प्रयोग किया गया है, वह पुराणों की संवादात्मक शैली है, अतः वह इतिहास और पुराण के बीच की रचना है।

दोनों ग्रन्थों के कुछ विषय ऐसे हैं, जो समान हैं। उदाहरण के लिए; क्षात्रधर्म या वीर-भावना का वर्णन, वनवास का प्रसंग, स्वयंवर की परिकल्पना, विवाह के लिए शर्त और स्त्रियों का अपहरण आदि। इस दृष्टि से भी दोनों में साम्य है कि भारत की अतीतकालीन सभ्यता, संस्कृति तथा जीवनपद्धति का इनमें वर्णन हुआ है और इनके द्वारा भारतीय जातीयजीवन, सामाजिक चेतना, नीतिबोध तथा जीवनादर्श के अतिरिक्त सुदीर्घ साहित्य-साधना का भी प्रतिनिधित्व हुआ है। पर उनमें वर्णित संस्कृति के रूप में पार्थक्य दीख पड़ता है। 'रामायण' में तद्युगीन धर्मनिष्ठ संस्कारों का स्वर प्रधान है, तो 'महाभारत' में सामयिक कर्मप्रधान संस्कृति व्यंजित हुई है। "*रामायण में यदि भक्ति-भावना, मर्यादा, आदर्श, करुणा, दया, परोपकार एवं पातिव्रत्य आदि की कोमल कल्पनाएँ समाविष्ट हैं तो 'महाभारत' में हमें तेजस्विता, ज्ञान-गाम्भीर्य एवं निर्भीक वीरोचित कर्म-भावना के बीज बिखरे हुए दिखायी पड़ते हैं।"

विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि उभय ग्रन्थों का कथानक तथा वर्ण्य विषय उनके प्रणेताओं से भी प्राचीन है एवं उनके स्रोत वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों तथा सूत्रग्रन्थों के अतिरिक्त सूतों, चारणों तथा कुशीलवों द्वारा गाये गए मौखिक वीर गीतों में सुरक्षित हैं। कालान्तर में दोनों महाकवियों ने उन समस्त परंपरा-प्रवाह को समेकित कर उन्हें अपने ढंग से ढाला है; किन्तु इनके वर्ण्य या प्रतिपाद्य विषय, कथ्य तथा वर्णन-पद्धति में पर्याप्त अन्तर है।

'महाभारत' और 'रामायण' के सामाजिक आदर्श, नैतिक जीवन एवं युद्धकला में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। रामायणकालीन समाज आदर्शोन्मुख था, पर 'महाभारत' में जीवन के यथार्थ पक्ष का अधिक चित्रण है। इसके आदर्श पात्र भी द्यूतक्रीड़ा में संलग्न दिखायी पड़ते हैं। 'महाभारत' की युद्ध-कला अधिक समृद्ध एवं वैज्ञानिक हैं। उसमें सैन्यसंघटन, व्यूह-रचना आदि का वर्णन है, जब कि 'रामायण' की युद्ध रचना इस प्रकार की नहीं थी। वाल्मीकि की कला प्रभावपूर्ण जीवनानुभूति से सम्पादित है तथा रामायण में प्रकृत के मनोरम एवं विस्तृत चित्र अंकित हैं। उसमें प्राकृतिक दृश्यों की प्रचुरता एवं विविधता कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति तथा उसकी सौन्दर्य-संवेदना को

---

* श्री गैरोला-संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २७७।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यक्त करती है। वाल्मीकि ने प्रकृति के विवरणात्मक स्थलों में सफल चित्र-विधान किया है, पर 'महाभारत' में प्रकृति-चित्रण विरल है। वाल्मीकि ने नारी के रूप-सौन्दर्य का अनेक स्थलों पर मोहक एवं काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है, पर महाभारतकार की दृष्टि नारी के सौन्दर्य-चित्रण की ओर अधिक नहीं गयी है। व्यास ने नायक-नायिका या अन्य पात्रों का जो शारीरिक वर्णन किया है, वह सामान्य कोटि का है।

'रामायण' तथा 'महाभारत' दोनों में संघर्ष-चित्रण को प्रधान विषय बनाया गया है। 'महाभारत' का संघर्ष राज्यप्राप्ति के लिए हुआ था, पर 'रामायण' के युद्ध में स्त्री-हरण का हाथ है। कौरव तथा पाण्डव दोनों ही राज्य और धन के प्रति विमुख नहीं हैं और उसे महत्त्वपूर्ण मानकर युद्ध में निरत हो जाते हैं। पर, 'महाभारत के प्रधान पात्रों की अपेक्षा राज्य धन तथा राज्य के प्रति अधिक उन्मुख न होकर निस्पृह दिखलाये गए हैं; वे पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर राज्य का त्याग कर देते हैं। फिर भी 'रामायण' में अर्थ और काम की उपेक्षा नहीं हुई है।

'रामायण' और 'महाभारत' दोनों में गृहस्थ धर्म की महिमा गायी गयी है तथा दोनों में ही धर्म-तत्त्व का निरूपण अनेक स्थलों एवं कई संदर्भों में किया गया है। 'रामायण' में धर्माधर्म के स्वरूप का काव्यात्मक चित्रण हुआ है, पर 'महाभारत' का कथानक इन तत्त्वों से ओतप्रोत होते हुए भी साहित्यिक संवेदना से रहित है और मूल-कथा से हटकर नाना प्रकार के आख्यानों एवं संवादों के माध्यम से वर्णित है।

'रामायण' तथा 'महाभारत' दोनों में ही युद्धोत्तर विभीषिका को देख कर पात्रों के हृदय में निर्वेद का भाव उत्पन्न होता है। युधिष्ठिर राज्यारोहण की अपेक्षा संन्यास-ग्रहण कर जीवन-यापन करना श्रेयष्कर मानते हैं, तो सुग्रीव भी बाली की मृत्यु के पश्चात् वैराग्य की भावना से अभिभूत होता दिखाया गया है।

वाल्मीकि और व्यास दोनों ही राष्ट्र तथा राज्य की रक्षा को परम कर्त्तव्य मानते हैं। 'रामायण' में आदर्शात्मक प्रकृति को काव्यात्मक ऊष्मा की आभा से आलोकित किया गया है। इसमें दार्शनिक प्रवृत्ति की विरलता और काव्यवैभव का आधिक्य है। 'रामायण' का रचयिता चिंतक कम कवि अधिक है, जब कि 'महाभारत' का प्रणेता धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक मान्यताओं को व्यक्त करने में अपनी रुचि प्रदर्शित करता है। 'महाभारत' महाकाव्योचित गुणों से अन्वित होने पर भी, इतिहास और धर्मशास्त्र का मिश्रित रूप प्रकट करता है। उसकी शैली ओजस्वी, सरल संक्षिप्त तथा प्रभावपूर्ण शब्दावली से युक्त है, जब कि रामायण में शैलीगत माधुर्य, लालित्य ऊष्मा और जीवंत प्राणधारा का उच्छलवेग दिखायी पड़ता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुर्थ अध्याय

महाकवि

कालिदास, अश्वघोष, भट्टि, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, अमरुक, जयदेव

कालिदास

महाकवि कालिदास संस्कृत के श्रेष्ठ कवि, नाटककार एवं कविता कामिनी के विलास हैं। वे भारतीय साहित्य के श्रेष्ठ विभूति तथा प्राचीन भारतीय अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व सन्निहित है। वे सौन्दर्य तत्त्व के चितेरे तथा सुन्दरम् को शिवम् के पुनीत आदर्शलोक की ओर मोड़ने वाले महान् सत्य स्रष्टा हैं। भारतीय सौन्दर्य-दर्शन की सभी विभूतियाँ उनके साहित्य में समाहित हो गई हैं। ऐसे रस-सिद्ध कवि का जीवन वृत्त अद्यापि अन्धकाराच्छन्न होकर अनुमान का विषय बना हुआ है। उनके जीवन एवं तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतवैभिन्न्य है। कालिदास की कृतियों में उज्जैन के प्रति अधिक मोह प्रदर्शित किया गया है, अतः अधिकांश विद्वान् उन्हें मालवनिवासी मानने के पक्ष में हैं। इधर विद्वानों का झुकाव इस तथ्य की ओर अधिक है कि उनकी जन्मभूमि काश्मीर और मालवा कर्मभूमि थी।

कालिदास के स्थितिकाल को लेकर भारतीय तथा पाश्चात्य पण्डितों में अत्यधिक वाद-विवाद हुआ है और उनका समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी तक माना जाता रहा है। भारतीय अनुश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य के नव रत्नों में थे। उनके ग्रन्थों में भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है। अधिकांश मतों के अनुसार वे ईसा के ५८ वर्ष पूर्व माने जाते हैं। बौद्धकवि अश्वघोष ने, इनका समय विक्रम का प्रथम शतक है। कालिदास के अनेक पद्यों का अनुकरण किया है, इससे कालिदास का समय विक्रम संवत् का प्रथम शतक सिद्ध होता है। उनकी सात रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें तीन नाटक और चार काव्य हैं। ग्रन्थों के नाम हैं—'ऋतुसंहार', 'कुमारसम्भव', 'मेघदूत', 'रघुवंश' (सभी काव्य), 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तला' या 'शकुन्तला'।

काव्य-वैभव एवं ग्रन्थ परिचय

(१) ऋतु संहार—यह ६ सर्गों का लघु काव्य है, जिसके सर्ग में एक ऋतु का वर्णन है। इसमें कवि ने ऋतुओं का मनोरम वर्णन उद्दीपन के रूप में किया है। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह महाकवि कालिदास की प्रथम काव्यकृति है, क्योंकि इसमें महाकवि की अन्य काव्यों में उपलब्ध होने वाली अभिव्यक्ति कौशल का अभाव दृष्टिगोचर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होता है। इसका प्रारम्भ ग्रीष्म की प्रचण्डता के वर्णन से हुआ है और समाप्ति हुई है वसन्त की मादकता में। इसमें कवि ने अपनी प्रिया को सम्बोधित कर छह ऋतुओं का वर्णन किया है। इसके प्रत्येक सर्ग में १६ से २८ तक की श्लोकसंख्या प्राप्त होती है। 'ऋतुसंहार' की भाषा सरल बोधगम्य है तथा शैली में प्रसाद गुण की छटा प्रदर्शित हुई है। विद्वानों ने भाषा शैली की सहजता, उद्दाम प्रेम-भावना का चित्रण, ध्वनि का अभाव एवं नैतिक गुण साहित्य के कारण इसे कालिदास की रचना मानने में सन्देह प्रकट किया है पर कवि की युवावस्था की रचना होने के कारण उपर्युक्त सभी दोषों का मार्जन हो जा सकता है।

(२) कुमारसम्भव— इसमें महाकवि कालिदास ने शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन किया है। विद्वानों के अनुसार इसकी रचना रघुवंश के पूर्व हुई थी। सम्प्रति 'कुमारसम्भव' के दो रूप प्राप्त होते हैं—प्रथम सस्करण १७ सर्गो वाला है जिसमें शिव-पार्वती के पराक्रमशाली पुत्र कार्त्तिकेय के जन्म एवं उनके द्वारा भयंकर असुर तारक के बध का वर्णन किया गया है। इसका दूसरा रूप अष्टसर्गात्मक है। विद्वानों का अनुमान है कि मूल ग्रन्थ आठ सर्गों में ही रचा गया था और शेष सर्ग किसी अल्प प्रतिभाशाली कवि द्वारा जोड़े गए हैं। इस पर मल्लिनाथ की टीका आठवें सर्ग तक की प्राप्त होती है तथा प्राचीन आलंकारिक ग्रन्थों में आठवें सर्ग के उदाहरण दिए गए हैं। किंवदन्ती ऐसी है कि आठवें सर्ग में महाकवि ने शिव और पार्वती के संभोग का बड़ा ही नग्न चित्र उपस्थित किया था, जिससे क्रुद्ध होकर पार्वती ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हें कुष्ठरोग हो जाय और इसी कारण यह काव्य अधूरा रह गया। आठवें सर्ग की कथा-वस्तु से भी पुस्तक के नामकरण की सिद्धि हो जाती है, क्योंकि शिव-पार्वती के संभोग-वर्णन से कुमार के भावी जन्म की घटना की सूचना मिल जाती है। कुमारसम्भव में कवि की सौन्दर्य-भावना रूप-चित्रण एवं प्राकृत वर्णन में मुखरित हुई है। पार्वती के नख-शिख-वर्णन में कवि ने अंग-अंग में रुचि लेकर उसके प्रत्येक अवयव का प्रत्यक्षीकरण कराया है। कुमारसम्भव में पार्वती के जन्म, उसकी तपस्या, तारकासुर से पीड़ित देवगण का ब्रह्मा के पास जाना तथा ब्रह्मा का उन्हें राक्षस के बध का उपाय बनाना, उनके अनुसार शिव के वीर्य से उत्पन्न सेनानी के जन्म से ही तारक का बध संभव है। इन्द्र के आदेश से कामदेव का शिव के आश्रम में जाना तथा शिव की समाधि भंग करना शिव के तृतीय नेत्र खुलते ही कामदेव का भस्म हो जाना, उसकी पत्नी रति का करुण विलाप, शिव का सन्देश लेकर सप्तर्षिगण का हिमालय के पास जाना और शिव-पार्वती विवाह का सम्पन्न होना। अन्तिम सर्ग में शिव-पार्वती का रति-विलास तथा कामशास्त्रानुसार आमोद-प्रमोद का वर्णन किया गया है।

(३) मेघदूत—यह खण्ड काव्य है, जिसमें एक विरही यक्ष द्वारा अपनी प्रिया के पास बादल से सन्देश प्रेषित किया गया है। वियोगविधुरा कान्ता के पास मेघ द्वारा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रेम-सन्देश भेजना कवि की मौलिक कल्पना का परिचायक है। पुस्तक पूर्व एवं उत्तर मेघ के रूप में दो भागों में विभक्त है तथा श्लोकों की संख्या ६३+५२=११५ है। 'मेघदूत' में गीतिकाव्य एवं खण्ड काव्य दोनों के ही तत्त्व है; अतः विद्वानों ने इसे गीति-प्रधान खण्डकाव्य कहा है। इसमें विरही यक्ष व्यक्तिगत सुख-दुःख की भावनाओं का प्राधान्य है एवं खण्डकाव्य के लिए अपेक्षित कथावस्तु की क्षीणता दिखाई पड़ती है। इसे 'व्यक्ति प्रधान' काव्य कहा जा सकता है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—धनाधीश कुबेर ने अपने एक यक्ष सेवक को कर्त्तव्यच्युत होने के कारण, एक वर्ष के लिए अलका-पुरी से निर्वासित कर दिया है। वह कुबेर द्वारा अभिशप्त होकर, अपनी नव परिणीता वधू से दूर हो जाता है और भारत के दक्षिणांचल में अवस्थित रामगिरि पर्वत के पास जाकर अपना निवास बनाता है। वह स्थान जनक तनया के स्नान से पावन तथा वृक्षों की छाया से स्निग्ध है। वह अवधि-काल की दुर्दिन घड़ियों को वेदना-जर्जरित होकर गिनने लगता है। आठ मास व्यतीत हो जाने पर वर्षा ऋतु के आगमन से उसके प्रेम-कातर हृदय में उसकी प्राण-प्रिया की स्मृति हरी हो उठती है और वह मेघ के द्वारा अपनी कान्ता के पास प्रणय-सन्देश भेजता है।

प्रिया के वियोग में रोते-रोते उसका शरीर सूख कर काँट हो जाता है और कृश होने के कारण कर का कंकन गिर जाता है। आषाढ़ के प्रथम दिन को, पहाड़ की चोटी पर, बादल को खेलते हुए देखकर उसकी अन्तर्वेदना उद्वेलित हो उठती है और वह मेघ से सन्देश भेजने को उद्यत हो जाता है। कवि ने विरहियों के विषय में मेघदर्शन से उत्पन्न तीव्र वेदना का भी समर्थन किया है—

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनिजने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥ पूर्वमेघ

कामार्त्त यक्ष को चेतनाचेतन का भी भाव नहीं रहता और वह स्वभावतः मूढ़ बना हुआ धूम, ज्योति, सलिल एवं मरुत के सन्निपात से निर्मित मेघ को सन्देश-प्रेषण के लिए उपयुक्त समझ लेता है। वह अतिनूतन कूटज पुष्प के द्वारा मेघ को अर्घ्य देकर उसका स्वागत करता है तथा उसकी प्रशंसा करते हुए उसे इन्द्र का 'प्रकृतिपुरुष' एवं 'कामरूप' कहता है। इसी प्रसंग में कवि ने रामगिरि से लेकर अलकापुरी तक के भाग का अत्यन्त मोहक भौगोलिक चित्र उपस्थित किया है। इस अवसर पर कवि मार्गवर्त्ती स्थानों, नदियों एवं प्रसिद्ध नगरियों का भी रसयुक्त वर्णन करता है। इसी वर्णन के साथ पूर्वमेघ की समाप्ति हो जाती है। 'मेघदूत' का यात्रा-वर्णन अत्यन्त सरस एवं भारतवर्ष की प्राकृतिक छटा का शोभन चित्र है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार' ''मेघदूत काव्य कथा है? भारत भूमि की देवमातृक भूमि पर श्रृङ्गार और आत्मा के चैतन्य की परिपूर्ण भाषा है। इसमें तो मानो प्रकृति ने स्वयं अपनी पूरी कथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भर दी है।"* पूर्वमेघ के माध्यम से महाकवि कालिदास ने भारतवर्ष की प्राकृतिक छटा का अभिराम वर्णन कर वाह्य प्रकृति के सौन्दर्य एवं कमनीयता का मनोरम चित्र खचित किया है।

मेघ का मार्ग-वर्णन—मेघ की यात्रा चित्रकूट से प्रारम्भ होती है। पवन-पदवी से चलता हुआ मेघ मार्ग में विरह-विधुरा पथिक-वनिताओं के केश हटा कर स्निग्ध दृष्टि से अपने को देखने के लिए बाध्य कर देता है। रास्ते में जहाँ-जहाँ पर्वत मिलते हैं वहाँ-वहाँ वह विश्राम करता हुआ और जल-प्रपातों के जल का पान करता हुआ चलता है। वह बलाकाओं एवं राजहंसों के साथ (जो मानसरोवर के यात्री हैं) मालवभूमि एवं आम्रकूट पर्वत को लाँघता हुआ आगे बढ़ता है। वहाँ उसे अल्हड़ यौवना ग्वालिनें लल-चाई हुई आँखों से देखती हैं। मेघ तुरत जोती हुई भूमि पर जल बरसने से निकली हुई सोंधी गन्ध का घ्राण लेकर आगे की ओर प्रस्थान करता है और ताम्रकूट की लता कुंजों को पारकर विन्ध्याचल के चरणतल में प्रवाहित होनेवाली रेवा नदी को पार करता है, जो नायक चरणपतिता नायिका के सदृश प्रतीत होती है। वह रेवा के स्वच्छ जल का पान कर अपने को भारी बना लेता है और उसे हवा के द्वारा उड़ाने का भय नहीं रहता। आगे चल कर उसे वेत्रवती के तीर पर स्थित 'दशार्ण' देश मिलता है। वह वेत्रवती के जल को पीकर 'नीच' पर्वत की गुफाओं में रुकता है, जहाँ उद्याम यौवन का उपभोग करने वाली वेश्याओं के शरीर के सुगन्धित पदार्थों से सारा वातावरण सुगन्धित हो रहा है; जिससे दशार्ण देश के नवयुवकों की प्रणय-लीला प्रकट होती है। वहाँ वह नदी-तीरवर्त्ती जूही की कलियों को सींचता हुआ और पुष्पलाबियों (मालिनें) के सरस गुलाबी कपोलों पर शीतल छायादान करता हुआ आगे बढ़ता है। वह निर्विन्ध्या नदी के पूरब स्थित अवन्ति-नरेश उदयन की महानगरी उज्जयिनी पहुँच कर शिप्रा नदी की सुर-भित वायु का सेवन कर चण्डीश्वर महाकाल के पवित्र मन्दिर में पहुँचता है। वहाँ गन्धवती नदी बहती है। मेघ महाकाल के मन्दिर में नृत्य करती हुई वेश्याओं के नखक्षतों पर शीतल बिन्दुपात कर उनके तीव्र कटाक्ष का आनन्द लेकर गम्भीरा नदी के पास पहुँच जाता है। वहाँ से उड़कर वह देवगिरि पहुँचता है; जहाँ स्वामी कार्त्तिकेय पर उमड़-घुमड़ कर जल बरसाता हुआ उनके बाहन मयूर को नर्त्तित करा देता है। तद-नन्तर गोमेध कराने वाले राजा रन्तिदेव की राजधानी दशपुर पहुँच कर ब्रह्मावर्त्त के निकट कुरुक्षेत्र में आता है, जहाँ सहस्र बाणवर्षी गाण्डीवधारी अर्जुन की याद आ जाती है। वह सरस्वती नदी का जलपान कर कनखल के समीप पहुँचता है और निर्मल स्फटिक के सदृश गंगा जल को पीकर उसमें झुकने के कारण गंगा-यमुना के संगम की अभिरामता ला देता है। वहाँ से हिमालय में प्रवेश कर देवदारु के वनों में चमरी गायों तथा कृष्ण-

* मेघदूत एक अध्ययन, भूमिका, पृ० १

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सारों से टकराकर पार्श्व में अंकित महादेव के चरण-चिह्नों की परिक्रमा करता हुआ हिमालय के जंगलों में प्रवेश करता है। वहाँ से वह परशुराम के यशोमार्ग 'क्रौन्चरध्र' को पारकर उत्तर की ओर मुड़ता है। तदनन्तर वह देव सुन्दरियों के मुकुरभूत तथा शिव के अट्टहास का पूंजीभूत कैलास पर्वत के पास पहुँच कर उसका अतिथि बनता है, जो कुमुद-श्वेत शृङ्गों से उतुंग एवं नभव्यापी है। कैलासपर्वत पर सुर-रमणियाँ कौतूहल वश अपने कंकन के कोने से उसे रगड़कर उसका जल निकालती हैं, किन्तु कर्ण-कर्कश गर्जन से उन्हें रोक देता है। तत्पश्चात् वह कैलास पर्वत के पास पहुँच जाता है, वहाँ उसकी गोद में वैठी हुई अलका गंगारूपी साड़ी के सरकने से अपने प्रेमी की गोद में नंगी बैठी हुई नायिका की तरह दिखायी पड़ती है। यक्ष ने बताया कि इसी नगरी में उसकी प्रियतमा वास करती है। इस प्रकार कवि ने चित्रकूट से अलकापुरी तक मेघ की भौगोलिक यात्रा का मनोरम एवं काव्यमय वर्णन कर भारतीय भूगोल का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है।

उत्तरमेघ—उत्तरमेघ में अलका का वर्णन, यज्ञ के भवन एवं उसकी विरहविदग्धा प्रिया का चित्र खींचा गया है। तत्पश्चात् कवि ने यक्ष के सन्देश का वर्णन किया है जिसमें 'मानव-हृदय के सौन्दय एवं अभिरामता का विमल चित्रण' है। उत्तरमेघ में वियोगी यक्ष का सन्देश-कथन अत्यन्त ही हृदयद्रावक एवं प्रेमिल भावोच्छ्वास से पूर्ण है। इसके प्रारम्भ से अन्त तक यौवन के विलासों की कल्पना सिंचित है तथा उसमें निहित वियोग का मधुर राग हमारी हृत्तंत्री के तार को स्पंदित कर देता है। वियोगिनी यक्ष पत्नी के यथार्थ चित्र को अंकित कर उसके जीवन की करुण गाथा अश्रुसिक्त भाषा में अभिव्यक्त की गई है।

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्यनिक्षिप्यवीणां,
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातु कामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्-
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ति ॥२३॥

"हे सौम्य, फिर मलिन वस्त्र पहने हुए गोद में वीणा रख कर नेत्रों के जल से भींगे हुए तन्तुओं को किसी तरह ठीक-ठाक करके मेरे नामांकित पद को गाने की इच्छा से संगीत में प्रवृत्त वह अपनी बनाई स्वरविधि को भी भूलती हुई दिखाई पड़ेगी।"

महाकवि कालिदास ने वाल्मीकि रामायण से 'मेघदूत' की प्रेरणा ग्रहण की है। उन्हें वियोगी यक्ष की व्यथा में सीता-हरण के दुःख से दुःखित राम की पीड़ा का स्मरण हो आया है। कवि ने स्वयं मेघ की उपमा हनुमान् से तथा यक्ष-पत्नी की समता सीता से की है—

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा। उत्तरमेघ–३७

रामचन्द्र ने हनुमान को सीता के पास भेजते समय अपनी मुद्रिका पहचान के रूप में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दी थी; किन्तु कालिदास ने मूर्त्त चिह्न का विधान न कर यक्ष द्वारा मेघ को अनन्य ज्ञात रति-विलास-रहस्य बताकर इस अभाव की पूर्त्ति कर दी है। इसकी कथा का आधार 'रामायण' से ग्रहण करके भी कवि ने इसे सर्वथा नवीन रूप दिया है। 'मेघदूत' के माध्यम से कवि ने प्रकृति के प्रति चेतनता में विश्वास प्रकट कर उसमें अपने हृदय का अनुराग उड़ेल दिया है। कवि की प्रसन्न-मधुरा वाणी मन्दाक्रान्ता छन्द में अभिव्यक्त हुई है जिसकी प्रशंसा आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' में की है—'सुवशा कालिदासस्य मन्द्राक्रान्या प्रवल्गति'। मेघदूत में प्रकृति के अत्यन्त सजीव स्वतः संवेद्य चित्र प्राप्त होते हैं, जिन्हें 'ऋग्वेद अथवा 'रामायण' के प्रकृति-वर्णन की समता में रखा जा सकता है। इसमें सुख-दुःख, विरह-संयोग एवं प्रणय-पीड़ा का अत्यन्त सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्र उरेहा गया है और इसे व्यक्त करने के लिए व्यंजक एवं मधुर भाषा प्रयुक्त हुई है। 'मेघदूत' में अनेक मंजुल भावों का सन्निवेश कर बीच-बीच में मुहावरों, वाक्य खण्डों तथा अर्थान्तर-न्यास एवं दृष्टान्त अलंकारों का प्रयोग कर भाषा को स्पष्ट एवं सरल बना दिया गया है। इसमें कवि की शास्त्रदर्शिता तथा विचारों की परिपक्वता भी प्रदर्शित होती है।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ उत्तर, ४६

कवि ने वाल्मीकि के प्रकृति-चित्रण के रूप को 'मेघदूत' में विकसित किया है तथा एक भूगोलविद् एवं रसज्ञ कवि के समन्वित व्यक्तित्व को उपस्थित कर भौगोलिक एवं रसशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। कवि की सांस्कृतिक प्रौढ़ि के कारण 'मेघदूत' की भाषा में गाम्भीर्य एवं निखार दिखाई पड़ता है। 'मेधदूत' की भाषा 'आवेगमयी अकृत्रिम स्वच्छन्द-धारा' है। इसमें प्रकृति के विविध चित्रों का अंकन कर विरह-भावना को अति-तीव्र बना दिया गया है। इसमें पदपद पर भावानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग मिलता है। इसका स्वल्प कथानक कवि की अनुभूति की अभिव्यवित का आधार-मात्र है। 'मेघदूत' अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है; इसके अनुकरण पर संस्कृत में अनेक सन्देश-काव्यों की रचना हुई है। इस पर संस्कृत में लगभग ५० टीकाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें मल्लिनाथ की टीका सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है।

रघुवंश—'रघुवंश' उन्नीस सर्गों का महाकाव्य है जिसमें सूर्यवंशी राजाओं का चरित्र वर्णित है। इसकी सर्गानुसार-कथा इस प्रकार है। प्रथम सर्ग में विनय प्रदर्शन करने के पश्चात् कवि ने रघुवंशी राजाओं की विशिष्टता का सामान्य वर्णन किया है। पुत्रहीन होने के कारण राजा चिन्तित होकर अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ कुल-गुरु वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचते हैं तथा आश्रम में स्थित नन्दिनी गाय की सेवा में संलग्न हो जाते हैं। द्वितीय सर्ग में राजा दीलीप द्वारा नन्दिनी की सेवा एवं २१ दिनों के पश्चात् उनकी निष्ठा की परीक्षा का वर्णन है। नन्दिनी एक काल्पनिक सिंह के चंगुल में फँस जाती है और नरेश गाय के बदले अपने को समर्पित कर देते हैं। इस पर नन्दिनी प्रसन्न

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होकर उन्हें पुत्र देने का आश्वासन देती है। पत्नी सहित राजा ऋषि की आज्ञा से नन्दिनी का दूध पीकर उत्फुल्ल चित्त राजधानी लौट आते हैं। तृतीय सर्ग में रानी सुदक्षिणा का गर्भाधान, रघु का जन्म एवं यौवराज्य तथा दिलीप द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का वर्णन है। सर्ग के अन्त में सुदक्षिणा सहित राजा दिलीप के वन जाने का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में रघु का दिग्विजय एवं पंचम में उनकी असीम दानशीलता का वर्णन है। अत्यधिक दान करने के कारण उनका कोष रिक्त हो जाता है। उसी समय कौत्स नामक एक ब्रह्मचारी आकर उनसे चौदह करोड़ स्वर्णमुद्रा की माँग करता है। राजा धनेश कुवेर पर आक्रमण कर उनसे स्वर्णमुद्रा ले आते हैं और कौत्स को समर्पित कर देते हैं, जिसे ग्रहण कर वह उन्हें पुत्र-प्राप्ति का वरदान देकर चला जाता है। ६ठें सर्ग में रघु के पुत्र अज का इन्दुमती के स्वयंवर में जाने एवं सातवें सर्ग में अज-इन्दुमती-विवाह एवं अज की ईर्ष्यालु राजाओं पर विजय प्राप्ति का वर्णन है। आठवें सर्ग में अज को प्रजापालिता, रघु की मृत्यु, दशरथ का जन्म, नारद की पुष्पमाला गिरने से इन्दुमती की मृत्यु एवं वसिष्ठ का शान्ति-उपदेश तथा अज की मृत्यु का वर्णन है। नवम सर्ग में राजा दशरथ के शासन की प्रशंसा, उनका विवाह, विहार, मृगया-वर्णन, वसन्त-वर्णन तथा धोखे से मुनि पुत्र श्रवण का वध एवं मुनि के शाप का वर्णन है। दसवें सर्ग में राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ करना तथा रावण के भय से देवताओं का विष्णु के पास जाकर पृथ्वी का भार उतारने के लिए प्रार्थना करने का वर्णन है। ग्यारहवें तथा बारहवें सर्ग में विश्वामित्र एवं ताड़का के वध प्रसंग से लेकर शूर्पणखा-वृत्तान्त एवं रावण-वध तक की घटनाएँ वर्णित हैं और तेरहवें सर्ग में विजयी राम का पुष्पक विमान से अयोध्या लौटना एवं भरत-मिलन की घटना का कथन है। चौदहवें सर्ग में राम राज्याभिषेक एवं सीता-निर्वासन तथा पंद्रहवें में लवणासुर की कथा, शत्रुघ्न द्वारा उसका वध, लव-कुश का जन्म, राम का अश्वमेध करना तथा सुवर्ण सीता की स्थापना, वाल्मीकि द्वारा राम को सीता के ग्रहण करने का आदेश, सीता का पाताल-प्रवेश एवं रामादि का स्वर्गारोहण वर्णित हैं। सोलहवें सर्ग में कुश का शासन, कुशावती में राजधानी बनाना, स्वप्न में नगर देवी के रूप में अयोध्या का दर्शन, कुश का पुनः अयोध्या आना तथा कुमुद्वती से विवाह करने का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में कुमुद्वती से अतिथि नामक पुत्र का जन्म एवं कुश की मृत्यु वर्णित है। अठारहवें सर्ग में अनेक राजाओं का वर्णन तथा उन्नीसवें में विलासी राजा अग्निवर्ण की राजयक्ष्मा से मृत्यु तथा गर्भवती रानी द्वारा राज्य सँभालने का वर्णन है।

रघुवंश में कालिदास की प्रतिभा का प्रौढ़तम रूप अभिव्यक्त हुआ है। कवि ने विस्तृत आधारफलक पर जीवन का विराट् चित्र अंकित कर इसे महाकाव्योचित गरिमा प्रदान की है। विद्वानों का अनुमान है कि संस्कृत के आचार्यों ने रघुवंश के ही आधार पर महाकाव्य के लक्षण निर्मित किये हैं। इसमें एक व्यक्ति की कथा न होकर कई

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यक्तियों की कहानी है जिसके कारण 'रघुवंश' कई चरित्रों की चित्रशाला बन गया है। दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक कई राजाओं का वर्णन किया गया है, किन्तु कवि का ध्येय विशेषतः रघु एवं रामचन्द्र का उदात्त रूप ही चित्रित करना रहा है, जिसके लिए दिलीप, अज आदि अंग रूप से प्रस्तुत किये गए हैं। अग्निवर्ण के विलासी जीवन का करुण अन्त दिखा कर कवि ने यह विचार व्यक्त किया है कि चरित्र की उदात्तता एवं आदर्श के कारण रघु एवं राम ने जिस वंश विलासी एवं रुग्णमनोवृत्ति वाले कामी अग्निवर्ण के कारण दुःखद अन्त को प्राप्त हुआ।

कहा जाता है कि इस प्रकार के आदर्श चरित्रों के निर्माण में महाकवि ने तत्कालीन गुप्त सम्राटों के चरित्र एवं वैभव से भी प्रभाव ग्रहण किया है। पुत्रविहीन दिलीप की गौभक्ति एवं त्यागमय जीवन बड़ा ही आकर्षक है। कवि ने अपनी नबनवोन्मेष शालिनी कल्पना का समावेश कर इस महाकाव्य को प्राणवन्त बना दिया है। रघु की युद्ध-वीरता एवं दानशीलता, अज एवं इन्दुमतो का प्रणय-प्रसंग एवं चरित्र वियोग में हृदय-द्रावक दुःखानुभूति की व्यंजना तथा रामचन्द्र का उदात्त एवं आदर्श चरित्र सब मिलाकर कालिदास की चरित्र सम्बन्धी कला को सर्वोच्च सीमा पर पहुँचा देते हैं। इतिवृत्तात्मक काव्य होते हुए भी 'रघुवंश' में भावात्मक समृद्धि का चरम रूप प्रगट हुआ है। इसमें कवि ने प्रमुख रसों के साथ घटनावली को सम्बद्ध कर कथानक में एक सूत्रता एवं चमत्कार लाने का प्रयास किया है। 'रघुवंश' अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है। इसकी संस्कृत में ४० टीकाएँ रची गई हैं।

काव्य वैभव—महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृत के रसात्मक व्याख्याता हैं। भारतीय संस्कृत के तीन महान् विषयों—तप, तपोवन एवं तपस्या का उन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। 'शकुन्तला', 'कुमार-सम्भव' एवं 'रघुवंश' में तीनों का उदात्त रूप अंकित है। काशिदास के काव्य में भारतीय सौन्दर्य तत्त्व का उत्कृष्ट रूप अभिव्यक्त हुआ है। उनकी सौन्दर्य-दृष्टि बाह्य जगत् के चित्रण में दिखाई पड़ती है, जहाँ कवि ने मनोरम सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति की है। मनुष्य एवं प्रकृति दोनों का मधुर सम्पर्क एवं अद्भुत एकत्व दिखाकर कवि ने प्रकृति के भीतर स्फूरित होनेवाले हृदय को पहचाना है। उनका प्रकृति-प्रेम पदे-पदे प्रशंसनीय है। उनके अधिकांश प्रकृति-वर्णन स्वाभाविकता से आपूर्ण एवं रसमय हैं। कवि ने प्रकृति को भावों का आलम्बन बना कर उसके द्वारा रसानुभूति कराई है। 'कुमार-सम्भव' एवं 'शकुन्तला' में पशुओं पर प्रकृति के मादक एवं करुण प्रभाव का निदर्शन हुआ है। 'कुमारसम्भव' मानों कवि की सौन्दर्य-चेतना की रमणीय रंगशाला है। इसमें हिमालय की गोद में होनेवाली घटनाएँ प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करती हैं। कवि ने हिमालय का बड़ा ही मनोग्राही एवं सरस वर्णन किया है, जिसमें उसकी दिव्यता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रदीप्त हो उठी है। हिमालय को कवि ने जड़-सृष्टि का रूप न देकर देवात्मा कहा है, जहाँ पर सभी देवता आकर वास करते हैं।

कालिदास भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के कवि हैं। उनकी कविता में कलात्मक समृद्धि एवं भावों का उदात्त रूप दिखाई पड़ता है तथा उसमें मानववादी स्वर मुखरित हुआ है। जिसमें प्रेम, सौन्दर्य एवं मानवता को उन्नत करने वाले शाश्वत भावों की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी सभी रचनाओं में प्रकृति की मनोरम प्रतिच्छवि उतारी गई है। निसर्ग-कन्या शकुन्तला के अनिद्य सौन्दर्य-वर्णन में तथा 'मेघदूत' की विरह विदग्धा यक्षिणी के रूप-चित्रण में कवि की सौन्दर्य-प्रियता का चरम विकास प्रदर्शित हुआ है। दोनों महाकाव्यों—'कुमारसम्भव' एवं 'रघुवंश' में कवि की दृष्टि सौन्दर्याभिव्यक्ति, प्रकृति-प्रेम, उदात्त-चरित्र, भाषा की समृद्धि एवं कलात्मक उन्मेष की ओर लगी है। कवि ने सौन्दर्य के बाह्य एवं आन्तर दोनों ही पक्षों का उद्‌घाटन किया है। उसने सौन्दर्य का वर्णन करते हुए तदनुरूप उपमाओं का नियोजन कर उसे अधिक प्रभावोत्पादक बनाया है। कालिदास उपमा के सम्राट हैं। उनकी उपमाओं की रसात्मकता एवं रसपेशलता अत्यन्त हृदय-हारिणी है। 'रघुवंश' के 'इन्दुमती' स्वयंवर में दीपशिखा की उपमा देकर कवि दीपशिखा कालिदास के नाम से विख्यात हो गया है।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यनीताय पतिवरा सा।
नरेन्द्र भागीट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

उनकी उपमा में स्थानीय रंजन का वैशिष्ट्य दिखाई पड़ता है तथा कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति प्रगट होती है। कवि उपमेय के लिंग, वचन और विशेषण को उपमान में भी उपन्यस्त कर अपनी अद्‌भुत चातुरी एवं कलात्मकता का परिचय देता है। कालिदास के उपमा-प्रयोग की यह बहुत बड़ी विशेषता है। कवि के प्रकृति-वर्णन की विशेषता यह है कि प्रकृति-चित्रण के समय वह स्थान और समय पर अधिक बल देता है। जिस स्थान की जो विशेषता होती है और जो वस्तु जहाँ उत्पन्न होती है कवि उनका वहीं वर्णन करता है। प्रत्येक पुस्तक में वह इस तथ्य पर सदा ध्यान रखता है। रघुवंश महाकाव्य में विहार के प्रकृति चित्रण में ईख एवं धान दोनों खेतों की रक्षा करती हुई ग्रामवधू का अत्यन्त मोहक चित्र उपस्थित किया गया है—

इक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुयशः॥

कालिदास ने नागरिक जीवन की जहाँ समृद्धि और विलासिता का चित्र अंकित किया है, वहीं तपोनिष्ठ साधकों के पवित्र वासस्थान का भी स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है। यह कहा कि कवि का मन केवल विलासी नागरिक जीवन के ही वर्णन में रमता है, वस्तुस्थिति से अपने को दूर रखना है। कवि का मन जितना उज्जयिनी, अलका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एवं अयोध्या के वर्णन में रमा है उससे कम उसकी आसक्ति पार्वती की तपनिष्ठा एवं कण्व के आश्रम-वर्णन में नहीं दिखाई पड़ती।

कालिदास रसवादी कलाकार हैं। उन्होंने सरस एवं कोमल रसों का ही वर्णन किया है। इसका प्रधान कारण कवि का शृङ्गार रस के प्रति आकर्षक होना है। शृङ्गार, प्रकृति-वर्णन एवं विलासी नागरिक जीवन को अंकित करने में कालिदास संस्कृति में अकेले हैं। वसन्त के मादक प्रभाव को कवि ने चेतन एवं अचेतन दोनों प्रकार के प्राणियों पर समान रूप से दर्शाया है। भौंरा अपनी प्रिया के प्रति प्रेमोन्मत्त होते दिखाया गया है—

मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः॥

—कुमार संभवः ३।६

अज-विलाप, रति-विलाप एवं यक्ष के अश्रुसिक्त सन्देश-कथन में करुणा का स्रोत उमड़ा पड़ता है। रति-विलास एवं अज-विलाप को आचार्यों ने कालिदास की उत्कृष्ट 'करुणगीति' माना है। इनमें अतीत की प्रणय-क्रीड़ा' की मधुर स्मृति के चित्र रह रह कर पाठकों के हृदय के तार को झंकृत कर देते हैं।

कालिदास उदात्त प्रेमिल भावों के कवि हैं। उनकी प्रेम-भावना में क्रमिक विकास के सोपान दिखाई पड़ते हैं। 'ऋतुसंहार' उनकी प्रथम काव्य-कृति है, अतः उसमें तरुण-तरुणियों के उद्दाम प्रेम का चित्रण किया गया है। पर 'शकुन्तला', 'मेघदूत', 'रघुवंश' एवं 'कुमारसंभव' में कवि ने ऐसे प्रेम का चित्रण किया है जो वासना एवं वाह्य-रूपाशक्ति से रहित होकर कठोर साधना पर आधृत है। कालिदास ने वियोग की भट्टी में वासना के कलुष को भस्मीभूत कर उसके दिव्य एवं पावन रूप का वर्णन किया है। उनका प्रेम-वर्णन मर्यादित एवं स्वस्थ पारिवारिक स्नेह का रूप उपस्थित करता है। भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट अनुराग होने के कारण कवि ऐसे प्रेम का वर्णन नहीं करता जो लोकधर्म के साथ सामंजस्य स्थापित न करे। वह पति-पत्नी के वैवाहिक उदात्त प्रेम को अपने काव्य को आदर्श मानकर उसमें सदाचार एवं लोकरंजन का समावेश करता है।

अश्वघोष

बौद्धधर्म दार्शनिक मान्यताओं तथा धार्मिक विश्वासों को काव्यात्मक रूप देने का श्रेय महाकवि अश्वघोष को है। उन्होंने भगवान् सुगत के जनकल्याणकारी विश्व-धर्म को अपने महाकाव्यों के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी कृतियों का प्रधान लक्ष्य है बौद्धधर्म के विचारों का, काव्य के परिवेश में, जनसाधारण के बीच प्रचारित करना। यह अत्यन्त हर्ष की बात हैं कि संस्कृत के अन्य कवियों की भाँति अश्वघोष का जीवन-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वृत्त अधिक विवादास्पद नहीं है। अश्वघोष कनिष्क के समकालीन कवि थे। कनिष्क ७८ ई० में शासनारूढ़ हुआ था, अतः अश्वघोष का भी यही स्थितिकाल है। बौद्धधर्म के भी अनेक ग्रन्थ इस तथ्य की साक्षी देते हैं कि वे कनिष्क के समसामयिक थे। अश्वघोष के जीवन-सम्बन्धी अधिक विवरण प्राप्त नहीं होते। 'सौन्दरनन्द' नामक महाकाव्य से विदित होता है कि उनकी माता का नाम सुवर्णाली था और वे साकेत (अयोध्या) के निवासी थे। उन्हें महाकवि के अतिरिक्त 'भदन्त', आचार्य तथा 'महावादी' आदि उपाधियों से अलंकृत किया गया था।

कृतियाँ—अश्वघोष बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने समान अधिकार के साथ काव्य, नाटक, धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं। उनके व्यक्तित्व के सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक पक्षों में से कौन उत्कृष्ट है, कहा नहीं जा सकता। उनके नाम पर निम्नांकित ग्रन्थ प्रचलित हैं।

(१) वज्रसूची—इसमें वर्ण-व्यवस्था की आलोचना कर सार्वभौम समानता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। वर्ण-व्यवस्था के समर्थकों के लिए सूई की भाँति चुभने के कारण इसकी अभिधा वज्रसूची है। पर, कतिपय विद्वान् इसे अश्वघोष की कृति मानने के पक्ष में नहीं हैं।

(२) महायान श्रद्धोपादकशास्त्र—इसका मूल संस्कृत अब उपलब्ध नहीं होता। प्रसिद्ध जापानी विद्वान् सुजुकी ने चीनी से इसका आंग्लानुवाद प्रस्तुत किया है। इसमें महायान सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष का निरूपण है और शून्यवाद का विवेचन किया गया है। इसे भी अश्वघोष की कृति होने में सन्देह प्रकट किया जाता है।

(३) सूत्रालङ्कार या कल्पना मण्डितिका—इस ग्रन्थ की मूल प्रति अनुपलब्ध है, इसका केवल चीनी अनुवाद प्राप्त होता है जो कुमारजीव नामक बौद्धविद्वान् द्वारा पंचमशती के प्रारंभ में रचा गया था। इसमें नैतिक एवं धार्मिक भावों से आपूर्ण काल्पनिक कथाएँ संगृहीत हैं।

(४) बुद्धचरित—यह महात्मा गौतमबुद्ध के जीवन चरित पर रचित महाकाव्य है, जो २८ सर्गों में था, पर सम्प्रति इसके १४ सर्ग ही प्रकाशित हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ चीनी एवं तिब्बती अनुवादों में प्राप्त है। इसका प्रथम सर्ग भी अधूरा ही मिला है और चौदहवें सर्ग के ३१ श्लोक तक के ही अंश अश्वघोष कृत माने जाते हैं। इसमें भगवान् बुद्ध के जन्म से लेकर बुद्धत्व की प्राप्ति तक की घटनाएँ वर्णित हैं। कवि ने ग्रन्थारम्भ बुद्ध के गर्भाधान से किया है और क्रमशः अन्तःपुर-बिहार, संवेग-उत्पत्ति, स्त्री-निवारण, अभिनिष्क्रमण, छन्दकविसर्जन, तपोवन-प्रवेश, अन्तःपुरविलाप आदि घटनाओं का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है।

(५) सौन्दरनन्द—यह अष्टादश सर्गों में निबद्ध प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसमें गौतम बुद्ध के अनुज नन्द एवं उनकी पत्नी सुन्दरी की कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जहाँ तक काव्योत्कर्ष का प्रश्न है 'सौन्दरनन्द' 'बुद्धचरित' की अपेक्षा अधिक समृद्ध रचना है। 'बुद्धचरित' में कवि ने बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन का वर्णन किया है, जिसमें इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य है, पर सौन्दरनन्द' में उसने अपने समस्त कला-कौशल एवं काव्य-वैभव को एक कथा के माध्यम से व्यक्त किया है। 'सौन्दरनन्द' 'बुद्धचरित' की परवर्त्ती रचना है, उसमें कवि की काव्यात्मक शक्ति का उत्कर्ष दिखलायी पड़ता है।

(६) शारिपुत्र प्रकरण—यह प्रकरण खण्डित रूप में प्राप्त है, जिसे प्रो० लूडर्स ने मध्य एशिया के तूर्फान नामक क्षेत्र में दो ग्रन्थों के साथ तालपत्र पर प्राप्त किया था। इसकी खण्डित प्रति में इस बात का उल्लेख है कि इसकी रचना सुवर्णाक्षी के पुत्र अश्वघोष ने की थी। इसमें मौद्गल्यायन एवं शारिपुत्र को बुद्ध द्वारा दीक्षित किये जाने का वर्णन है। इसमें संस्कृत के अन्य नाटकों की भाँति नान्दी, प्रस्तावना, सूत्रधार, गद्य-पद्य का मिश्रण, संस्कृत या विविध प्रकार की प्राकृतों के प्रयोग तथा भरतवाक्य आदि सभी नाटकीय तत्त्वों का समावेश है।

समीक्षा एवं काव्य-वैभव—अश्वघोष ऐसे कलाकारों की श्रेणी में परिगणनीय हैं जो कला की यवनिका के पीछे छिप कर अपनी मान्यताएँ प्रकट करते हैं। उन्होंने कविता के माध्यम से बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का विश्लेषण कर उन्हें जनसाधारण के लिए सुलभ एवं आकर्षक बनाया है। उनकी समस्त रचनाओं में बौद्धदर्शन एवं धर्म की झलक प्रदर्शित होती है। भगवान् बुद्ध के प्रति अटूट श्रद्धा तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। दुःखवाद बौद्धधर्म का प्रमुख सिद्धान्त है और उसका चरम लक्ष्य है निर्वाण की प्राप्ति। अश्वघोष ने इस तथ्य का वर्णन दीपक की उपमा द्वारा किया है।

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥

—सौन्दरनन्द, १६।२८

जिस प्रकार दीपक न पृथ्वी पर जाता है, न आकाश में, न दिशा में, न विदिशा में, किन्तु तेल समाप्त होने पर केवल शान्ति को प्राप्त होता है, उसी प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुआ पुण्यात्मा न पृथ्वी पर जाता है, न आकाश में, न दिशा में, न विदिशा में, अपितु क्लेषों के क्षय हो जाने के कारण केवल शान्ति को प्राप्त हो जाता है। यहाँ कवि दीपक का उदाहरण देकर निर्वाण के तत्त्व को बोधगम्य बनाता है। उन्होंने 'सौन्दरनन्द' में शरीर की अनित्यता को सुपुष्ट युक्तियों से प्रतिपादित किया है।

अश्वघोष के काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनका काव्यादर्श वाल्मीकि से अनुप्राणित है। उन्होंने उन्हीं की भाँति सरस एवं सरल अनुष्टुप् छन्द का अधिक प्रयोग किया है तथा अन्य छन्दों को भी स्थान दिया है। उनके दोनों ही महाकाव्य भगवान् बुद्ध की जीवन गाथा से सम्बद्ध हैं, जिनमें कवि ने ऐतिहासिक सत्यों के साथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कल्पना को भी निबद्ध किया है। वे बुद्ध की कथा को काव्योपयुक्त बनाने के लिए अनेक स्थलों पर परिवर्तित भी कर देते हैं। उनकी कविता सरलता की मूर्त्ति, स्वाभाविकता की खान और कृत्रिमता से रहित है तथा उसमें माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का सुन्दर समावेश है। कवि ने महाकवि कालिदास के दाय को ग्रहण कर अपने काव्य के स्वरूप को मण्डित किया है। उनका व्यक्तित्व महाकाव्यकार का है और एक सफल महाकाव्य की रचना के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है उनकी पूर्णता उनमें दिखाई पड़ती है। कवि वस्तुओं एवं कार्य-व्यापारों के मूर्त्त चित्रण में अत्यन्त कुशल है। अश्वघोष को मानव जीवन की भावनाओं का पूर्ण परिज्ञान था तथा किन परिस्थितियों में मनुष्य की क्या स्थिति होती है इसका चित्र उपस्थित करने में वे पूर्ण सफल हुए हैं। 'बुद्धचरित' में कुमार को देखने के लिए समुत्सुक रमणियों का अत्यन्त मोहक चित्र उपस्थित है।

शीघ्रं समर्थापि न गन्तुमन्या गतिनिजग्राह ययौ न तूर्णम्।
ह्रियप्रगल्भाविनिगूहमाना रहः प्रयुक्तानि विभूषणानि॥ ३।१७

"दूसरी सुन्दरी ने शीघ्र जाने में समर्थ होने पर भी अपनी चाल को रोक लिया और वह वेगपूर्वक नहीं गयी, वह संकोचशीला एकान्त में पहने हुए आभूषणों को लज्जावश छिपाने लगी।"

इनमें निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म तथा कल्पना शक्ति विकसित है जिससे इन्होंने अपने चित्रों को अधिक स्वाभाविक एवं हृदयग्राही बनाया है—

वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परा यासितकुण्डलानि।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानिहर्म्येष्विव पङ्कजानि॥

—बुद्धचरित, ३।१९

"वातायनों से निकले हुए स्त्रियों के मुखकमल, जो एक दूसरों के कुण्डलों को छू रहे (क्षुब्ध कर रहे) थे, ऐसे शोभित हुए जैसे प्रासादों में कमल लगे हुए हों।"

बाह्यप्रकृति के चित्रण में भी कवि की कुशलता अवलोकनीय है। उन्होंने प्रकृति का चित्रण शृङ्गाररस के उद्दीपन के रूप में' कहीं आलंबन के रूप में तथा कहीं नीति-विषयक विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए किया है। हिमालय के वृक्षों का सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है—

रक्तानि फुल्लाः कमलानि यत्र प्रदीपवृक्षा इव भान्ति वृक्षाः।
प्रफुल्लनीलोत्पलरोहिणोन्ये सोन्मीलिताक्षा इव भान्तिवृक्षाः॥

—सौन्दरनन्द, १०।२१

"जहाँ लाल कमलों वाले पुष्पित वृक्ष दीपकयुक्त वृक्षों के समान शोभ रहे हैं, विकसित नीलकमलों से युक्त वृक्ष ऐसे शोभित होते हैं जैसे उन्होंने आँखें खोली हों।"

अश्वघोष रसविधायक कलाकार हैं। उनकी कविता में शृङ्गार, करुण एवं शान्तरस की वेगवती धारा अबाध गति से प्रवाहित होती है। उन्हें करुण रस के चित्रण में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

अत्यधिक दक्षता प्राप्त है। नन्द के भिक्षु बन जाने पर उनकी प्रिया सुन्दरी का करुण-क्रन्दन, पत्नी के लिए नन्द का शोक, सिद्धार्थ के प्रव्रज्या-ग्रहण करने पर यशोधरा एवं उनके माता-पिता का विलाप अत्यन्त करुणोत्पादक है। इसी प्रकार की कुशलता अलंकारों के प्रयोग में दिखाई पड़ती है। उनका अलंकार-विधान स्वाभाविक एवं रसोत्कर्ष-विधायक है। बाह्य एवं आन्तर सौन्दर्य-निरूपण के लिए ही शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का समावेश किया गया है। अश्वघोष की भाषा कोमल, सरल एवं अकृत्रिम है। उनकी धर्म-प्रवण-भावना में ही उनकी काव्य-कला का सौन्दर्य निहित है।

भारवि

कालिदासोत्तर महाकाव्यों में अलंकृत शैली का समावेश कर उसे कलात्मक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय भारवि को है। वे संस्कृत अलंकृत महाकाव्य के पुरस्कर्त्ता एवं कालिदास के रीतिपक्ष तथा अभिव्यंजना शैली को ग्रहण कर उसमें चित्रकाव्य की विचित्रता का सन्निवेश करनेवाले कवि है। उनकी कला में कालिदास द्वारा उद्भावित अभिव्यंग्य तथा कथावस्तु के निर्वाह के साथ भावपक्ष एवं कलापक्ष के मंजुल समन्वय का रूप प्रदर्शित नहीं होता, अपितु ठीक इसके विपरीत उन्होंने पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा शाब्दीक्रीड़ा की प्रवृत्ति को प्रधानता दी है; फिर भी संस्कृत महाकाव्य के विकास में नवीन सरणि के प्रवर्त्तक होने और उसे चमत्कारोत्कर्ष की ओर मोड़ने का श्रेय भारवि को है। वे संस्कृत की 'वृहत्रयी' के आद्य प्रणेता के रूप में विख्यात है। संस्कृस महाकाव्य के इतिहास में अलंकृत शैली का प्रवर्त्तन कर उन्होंने पश्चाद्भावी कवियों के लिए आधार स्तम्भ का कार्य किया, जिसे माघ एवं श्रीहर्ष ने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया।

जीवन-वृत्त—'किरातार्जुनीय' भारवि की एक मात्र कृति है। उनका प्रामाणिक जीवनवृत अभीतक अन्धकारमय है। भारवि का समय-निर्धारण पुलकेशी द्वितीय के समय के एक ऐहोल के शिलालेख से होता है जिसमें कवि रविकीर्ति ने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में महाकवि कालिदास के साथ भारवि का भी नाम लिया है। शिलालेख का निर्माण-काल ६३४ ई० है। भारवि पर कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है। और माघ पर भारवि का प्रभाव पड़ा है। विद्वानों ने भारवि का काल ५५० ई० स्वीकार किया है, जो बाणभट्ट के ५० वर्ष पूर्व का है।

किरातार्जुनीय—'किरातार्जुनीय' की रचना महाभारत (वनपर्व) की एक कथा के आधार पर हुई है जिसमें अर्जुन एवं किरातवेशधारी शिव के युद्ध का वर्णन है। इसमें १८ सर्ग हैं तथा तत्कालीन प्रचलित महाकाव्य के शास्त्रीय स्वरूप का पूर्ण निदर्शन है। इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए की गई अर्जुन की तपस्या ही इस महाकाव्य का वर्ण्य विषय है। अर्जुन शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं। इसी बीच एक वराह अर्जुन के पास आता है जिसे लक्ष्य कर शिव एवं अर्जुन दोनों बाण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चलाते हैं। शिव का किरातवेशधारी अनुचर कहता है कि शूकर मेरे बाण से मरा है, तुम्हारे बाण से नहीं। तत्पश्चात अर्जुन एवं किरातवेशधारी शिव में युद्ध होता है। अर्जुन के युद्ध कौशल से शिव प्रसन्न होते हैं और अपना रूप प्रकट कर देते हैं। अर्जुन उनकी प्रार्थना करते हैं और शिव उन्हें पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं। मनोरथ पूर्ण हो जाने पर अर्जुन युधिष्ठिर के पास चले जाते हैं।

किरातार्जुनीय महाकाव्य का प्रारम्भ 'श्रीः' शब्द से होता है और समाप्ति 'लक्ष्मी' शब्द के साथ होती है। इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'लक्ष्मी' शब्द प्रयुक्त है। कवि ने अल्प कथानक को इसमें महाकाव्य का रूप दिया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर एवं आकर्षक संवाद, काल्पनिक चित्र तथा रमणीय वर्णन द्वारा इसके आधारफलक को विस्तृत कर दिया है। चतुर्थ एवं पंचम सर्ग के शरद एवं हिमालय-वर्णन तथा सप्तम, अष्टम, नवम एवं दशम सर्ग में अप्सराओं का विलास एवं उनकी शृङ्गारिक चेष्टाएँ मुक्तक काव्य की भाँति हैं। वास्तव में इन सर्गों में कथासूत्र टूट गया है और ये स्वतन्त्र प्रसंग के रूप में पुस्तक में सभाविष्ट किये गए से प्रतीत होते हैं। ग्यारहवें सर्ग में पुनः कथासूत्र नियोजित होता है और अन्त तक अत्यन्त मन्दगति से चलता है। इसके नायक अर्जुनधीरोदात्त हैं और प्रधान रस वीर है। अप्सराओं का विहार शृङ्गार रस है, जो अंगरूप में प्रयुक्त हुआ है। महाकाव्यों की परिभाषा के अनुसार इसमें सन्ध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी आदि का वर्णन है तथा वस्तु व्यंजना के रूप में जलक्रीड़ा, सुरत आदि का समावेश किया गया है। कवि ने सम्पूर्ण १५ वें सर्ग का वर्णन चित्रकाव्य के रूप में किया है।

काव्य-वैभव—भारवि मुख्यतः कलापक्ष के कवि हैं और उनका ध्यान पदलालित्य एवं अर्थ गाम्भीर्य दोनों पर ही रहता है। शाब्दी-क्रीड़ा प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति इनमें अवश्य है, किन्तु वह परिमित क्षेत्र में दिखाई पड़ती है। कवि ने पंचम एवं पंचदश सर्गों में शाब्दी क्रीड़ा का प्रदर्शन किया है। सम्पूर्ण पंद्रहवाँ सर्ग चित्रकाव्य में रचित है जिसमें पूरे के पूरे श्लोक एकाक्षर हैं।

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो न नुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥

—किरात, १५।१४

"अरे अनेक प्रकार के मुख वालों! निकृष्ट व्यक्तिद्वारा विद्ध किया गया पुरुष पुरुष नहीं है और निकृष्ट व्यक्ति जो विद्ध करता है वह भी पुरुष नहीं है। स्वामी के अविद्ध होने पर विद्ध भी पुरुष अविद्ध ही है और अतिशय पीड़ित व्यक्ति को पीड़ा पहुंचाने वाला व्यक्ति निर्दोष नहीं होता।"

भारवि ने काव्यदर्श के सम्बन्ध में 'किरातार्जुनीय' में विचार किया है और यथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्भव उस पर चलने का प्रयास भी किया है। युधिष्ठिर के शब्दों में अपनी काव्यशैली के आदर्श को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्।। २।२७

इसमें चार तत्त्वों का निरूपण किया गया है—पदों के द्वारा अर्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति का होना, अर्थगाम्भीर्य, नये-नये अर्थों की अभिव्यक्ति तथा वाक्य में परस्पर सम्बन्ध का होना अर्थात् अभीष्ट अर्थ प्रदर्शित करने की शक्ति का होना। भारवि काव्य में कोमल-कान्त पदावली श्रुतिमधुर शब्दों के प्रयोग के भी पक्ष में हैं—

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।।

—१४।३

इन्हीं विशेषताओं के कारण भारवि की प्रसिद्धि संस्कृत में अधिक है। काव्य में उपयुक्त शब्दावली की योजना तथा अर्थ की स्पष्टता एवं गम्भीरता के लिए भारवि विख्यात हैं। 'किरातार्जुनीय' में जो आख्यान चुना गया है वह महाकाव्य की कथावस्तु के सर्वथा अनुपयुक्त है। पर कवि ने अपनी रचना-चातुरी द्वारा उसे अठारह सर्गों में लिख कर विशालकाय काव्य का रूप दिया है। इसका विपुल विस्तार कवि की अद्भुत वर्णन-शक्ति, उर्वरमस्तिष्क एवं मौलिक उद्भावना-शक्ति का परिचायक है महाकाव्य में जिस प्रकार की स्वाभाविक कथावस्तु का प्रवाह होना चाहिए, उसका यहाँ अभाव है। प्रकृति आदि के वर्णनों का समावेश कर कवि ने कथा की क्षीणता को भरने का प्रयास किया है, पर उसके वर्णन स्वतन्त्र रूप से गुंफित मुक्तक काव्य की तरह लगते हैं और कथा-प्रसंग के साथ उनका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। कवि ने वीर रस की निष्पति के लिए रसानुकूल वर्णों का विन्यास कर वीरता के वातावरण को झंकृत किया है। किरात वेशधारी शिव के साथ अर्जुन के मल्लयुद्ध को रूपायित करने में कवि ने वीरता का भाव भर दिया है तथा भीम एवं अर्जुन की उक्तियाँ तथा कार्य-व्यापार द्वारा वीर रस की व्यंजना हुई है।

द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः।
प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कःशतमन्युतेजसः।।

—किरात० २।२३

"कोन है शत्रुओं में ऐसा जो दिग्दिगन्तों में विख्यात, दिग्गजों और चारों समुद्रों की भाँति युद्धस्थल की ओर प्रस्थान करते हुए, इन्द्र के समान पराक्रमी आपके चार कनिष्ठ भ्राताओं के पराक्रभ को सहन कर सकें।"

भारवि का श्रृङ्गार-वर्णन मर्यादित न होकर ऐंद्रिक अधिक है। उनके श्रृङ्गार में श्रृङ्गार रसोचित तरलता का भाव न होकर ऐन्द्रियता का प्राधान्य है जिससे श्रृङ्गार रस में वासनामय चित्र अंकित हो गए हैं। इतना होने पर भी उसमें सरसता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रियेऽपरा यच्छति वाचमुन्मुखी निबद्धदृष्टिः शिथिलाकुलोच्चया।
समादधे नांशुकमाहितं वृथा विवेद पुष्पेषु न पाणिपल्लवम् ॥ ८।१५

"बोलते हुए अपने प्रियतम के ऊपर निबद्ध दृष्टि वाली और ऊपर को मुख उठाये दूसरी स्त्री ने गाँठ के शिथिल होकर खुल जाने पर अपना अधोवस्त्र नहीं सँभाला और न वह फूलों पर व्यर्थ ही प्रसारित अपने पाणिपल्लव को जान सकी।" भारवि ने प्रथम सर्ग में द्रौपदी के चुभते हुए शब्दों में भाषणकला का सुन्दर रूप प्रदर्शित किया है। द्रौपदी-संवाद संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में प्रतिष्ठित है। भारवि कवि के अतिरिक्त महान् पण्डित एवं राजनीति विशारद भी ज्ञात होते हैं। उनके महाकाव्य में नीतिबोध तथा जीवन-विवेक के तथ्य प्राप्त होते हैं। 'किरातार्जुनीय' में कई स्थलों पर नैतिक आदर्शों का निरूपण किया गया है। युधिष्ठिर, भीम एवं द्रौपदी तीनों ही नीतिज्ञों के रूप में चित्रित हैं। उनके कथन में राजा का ध्येयशक्ति, समृद्धि एवं विजय है। इसमें अनेक सूक्तियाँ जीवनादर्श से विभूषित हैं।

क—हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।

ख—व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु येन मायिनः।

ग—सहसा विदधीत न क्रियाम्।

भारवि की शैली प्रभावशाली, प्रांजल तथा हृदय-हारिणी है। उन्होंने अलंकारों के प्रयोग में भी चतुरता से काम लिया है। अर्थान्तरन्यास अलंकार के तो वे मानों सम्राट् हैं। जीवन की सूक्ष्म-अनुभूतियों को गूंफित करते हुए कवि ने अर्थान्तरन्यास अलंकार का सहारा लिया है। उनकी छन्द योजना रसानुकूल एवं मनोरम है तथा शैली अलंकृत होते हुए भी सरस है।

भट्टि

संस्कृत में शास्त्रकाव्य की परम्परा का प्रवर्त्तन भट्टी ने किया। वे मूलतः वैयाकरण और अलंकार शास्त्री थे। उन्होंने काव्य के माध्यम से व्याकरण को बोधगम्य एवं सरण बनाने का प्रयास किया था। वे व्याकरण शास्त्रोपदेशी कवि के रूप में विख्यात हैं तथा व्याकरण-शास्त्र के शुद्ध प्रयोगों की ओर संकेत कर अपने लक्ष्य की सिद्धि करते हैं। उनके समय तक प्राकृत-साहित्य पूर्ण समृद्ध हो चुका था और उसमें महाकाव्यों की रचना होने लगी थी। प्राकृत का व्याकरण अत्यन्त सरल था, अतः तत्कालीन जनता प्राकृत की ओर आकृष्ट हो रही थी और उसके लिए पाणिनि के सूत्रों और महाभाष्य की व्याख्याओं तथा कत्यायन के वार्त्तिकों पर अधिकार प्राप्त करना अपने में कठिन कार्य था। अतः भट्टि ने तत्कालीन जनता की रुचि को ध्यान में रख कर काव्य के माध्यम से व्याकरण के प्रयोगों को सुकुमार मति राजकुमारों और व्यक्तियों के लिए सरल बनाया। उनके इस प्रयास का अनुकरण अन्य कवियों ने किया जिनमें भट्टभौम का 'रावणार्जुनीय' तथा वासुदेव कृत 'वासुदेवचरित' प्रसिद्ध हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जीवनवृत्त—भट्टि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। वे अपने ग्रन्थ 'रावणवध' या 'भट्टिकाव्य' के अन्त में लिखते हैं कि उन्हें वलभी नरेश श्रीधर सेन की सभा में सम्मान प्राप्त हुआ था। शिलालेखों में वलभी के चार श्रीधरसेन नामक राजाओं का विवरण प्राप्त होता है। प्रथम का काल ५०० ई० के लगभग एवं अन्तिम का समय ६५० ई० के आसपास है। श्रीधर द्वितीय के एक शिलालेख में किसी भट्टि नामक विद्वान् को कुछ भूमि देने की बात उल्लिखित है। इस शिलालेख का समय ६१० ई० के निकट है, अतः भट्टि का समय सातवीं शती के मध्यकाल से पूर्व निश्चित होता है।

भट्टिकाव्य—'रावणवध' या भट्टिकाव्य २२ सर्गों में निबद्ध है। उसमें श्लोकों की कुल संख्या ३६२४ है। इसमें भगवान् राम के जीवन की घटनाएँ वर्णित हैं। इस पर मल्लिनाथ की टीका प्राप्त होती है और जयमंगला नामक अन्य टीका भी प्रकाशित हो चुकी है। भट्टिकाव्य चार खण्डों में विभाजित है—प्रकीर्णकाण्ड, अधिकारकाण्ड, प्रसन्नकाण्ड तथा तिङन्तकाण्ड। प्रकीर्णकाण्ड में प्रथम से लेकर पंचम सर्ग तक की कथा है जिसमें रामजन्म से लेकर वनगमन तक की घटनाएँ वर्णित हैं। इस काण्ड में व्याकरणिक दृष्टि से कोई सुनिश्चित योजना नहीं दिखाई पड़ती। अधिकारकाण्ड में षष्ठ से नवम सर्ग तक की कथा आ गयी है इनमें कुछ पद्य प्रकीर्ण हैं तथा कुछ में व्याकरण के नियमों में दुहादि द्विकर्मम धातु (६, ८–१०), ताच्छीलिकक्रृदधिकार, (७, २८–३३) भावेकर्तरिप्रयोग (७, ६८–७७), आत्मनेपदाधिकार (८, ७०–८४) तथा अनभिहितेऽधिकार (३, ९४–१३१) पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रसन्नकाण्ड—इसमें अलंकारों का वर्णन है और इसके अन्तर्गत दशम, एकादश, द्वादश तथा त्रयोदश सर्ग हैं। दशम सर्ग में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार अनेक भेदोपभेदों के प्रयोग के रूप में श्लोकों का निर्माण किया गया है और एकादश तथा द्वादश में माधुर्य और भाविक का तथा त्रयोदश में भाषा सम संज्ञक श्लेष-भेद का निदर्शन है। तिङन्तकाण्ड—इसमें संस्कृत व्याकरण के नौ लकारों—लिङ्, लुङ्, लुट, लृट्, लङ्, लिट्, लिङ्, लोट्, लृट, लुट—का व्यावहारिक रूप १४ से २२ वें सर्ग तक प्रस्तुत किया गया है और प्रत्येक लकार का वर्णन एक सर्ग में है।

काव्यवैभव—भट्टि ने अपने महा काव्य में शास्त्री तथा काव्य का समन्वय किया हैं। उनका कथन है कि व्याकरण का ज्ञान जिसे है उसके लिए यह काव्य दीपक की भाँति प्रकाश देने वाला है, पर जिसे व्याकरण का ज्ञान नहीं है उसके लिए यह अन्धे के हाथ में दर्पण की नाई अनुपयोगी है।

दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तादर्श इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते॥ २२।२३

इसमें कवि के व्याकरण तथा अलंकारशास्त्र-विषयक प्रगाढ़ ज्ञान का परिचय प्राप्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होता है। भट्टि ने अपने महाकाव्य में काव्योचित सरसता के अतिरिक्त व्याकरण-सम्मत शब्दों का व्यवहारिक रूप से संकलन किया है। वे संस्कृत काव्यों की उस परम्परा का अनुवर्तन करते हैं, जिसमें कवित्व तथा पाण्डित्य का सम्यक् स्फुरण हैं। 'रावणवध' में वे काव्य की सरसता का निर्वाह करते हुए पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं। भट्टि पण्डित कवि हैं और उनका व्यक्तित्व व्याकरण-ज्ञान से विमण्डित है। समान अर्थवाले प्रत्ययों तथा विभिन्न लकारों में धातुरूपों का निदर्शन कर उन्होंने उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिससे वे प्रौढ़ वैयाकरण सिद्ध होते हैं।

भट्टिकाव्य में रामकथा का वर्णन प्रारम्भ से लेकर राज्याभिषेक तक है। यद्यपि इसका निर्माण व्याकरण रीति से किया गया है, तथापि इसमें काव्य-गुणों का पूर्ण समावेश है। कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभा का परिचय दिया है। बारहवें सर्ग का प्रभात-वर्णन प्राकृतिक दृश्यों में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। कवि ने द्वितीय सर्ग में भी शरद ऋतु का मनोरम वर्णन किया है। वर्णन-कौशल की भी दृष्टि से भट्टि काव्य में नावीन्य का अभाव दिखाई नहीं पड़ता। किसी विषय का वर्णन करते हुए कवि अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय नहीं देता और न राम-कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान करने में अपनी पटुता दिखाता है। सीता परिणय एवं राम वनगमन ऐसे मार्मिक या हृदयग्राही प्रसंगों की ओर कवि की उदासीनता उसके महाकवित्व पर प्रश्न वाचक चिह्न लगा देती है। इसका कारण यह है कि कवि का मन व्याकरणिक प्रयोगों एवं आलंकारिक चित्रों के प्रस्तुतीकरण में अधिक रमता है रावण द्वारा हरण करने पर सीता का विलाप अत्यल्प है और न रावण की दुष्टता और सीता की असमर्थता का उल्लेख है। प्रकृति-चित्रण में भट्टि ने पटुता प्रदर्शित की है तथा प्राकृतिक दृश्यों का स्वतन्त्र वर्णन न कर कथा का अंग बनाया है। प्रभात समय की मन्द वायु के लगने से काँपती हुई पद्मिनी ऐसी प्रतीत होती है मानो वह अपने प्रिय भ्रमर की मूँछ में कुमुदिनी का पीला पराग लगा हुआ देख क्रोध से कंपित होकर यह कह रही हो कि मानिनी अन्य नायिका के संगम को सहन नहीं कर सकती।

प्रभातवाताहति कम्पिताकृतिः कुमुद्वतीरेणुपिशङ्गविग्रहम्।
निराशभृङ्गं कुपितेव पद्मिनी न मानिनी संसहतेऽन्यसंगमम्॥

—१२।६

इस श्लोक में कवि ने आलंकारिक चित्र की सृष्टि कर सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। अधोलिखित श्लोक में एकावली अलंकार के द्वारा सौन्दर्य का नियोजन किया गया है। शरद ऋतु में ऐसा कोई जल नहीं था जिसमें कमल नहीं शोभ रहे थे और ऐसा कोई कमल नहीं था जिस पर भ्रमर नहीं गूंज रहे थे और ऐसा कोई भ्रमर नहीं था जो मधुर गुंजार न कर रहा हो और ऐसा कोई मधुर गुंजार नहीं था जो मन को न मोहता हो।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न तज्जलं यन्न सुचारु पङ्कजम् न पङ्कजं यत् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं यन्न जहार यन्मनः ॥

—२।१९

भट्टिकाव्य का अंगीरस वीर है और शृङ्गार रस की भी अनेक स्थलों पर योजना की गई है। चूँकि उनका ध्यान व्याकरणिक प्रयोगों की ओर अधिक लगा रहता है, अतः वे रस-योजना की उपयोगिता पर विचार नहीं करते। उन्होंने युद्ध के वर्णन में भी वीरोचित पटुता प्रदर्शित करने में अपनी कुशलता का परिचय नहीं दिया है और न पात्रों के हृद्गत भावों की अभियुक्ति की है। शृङ्गार रस की व्यंजना में भी स्वाभाविकता का अभाव है और उसमें तरलता के दर्शन नहीं होते। उन्होंने रामायण की परम्परागत कथा में कहीं भी परिवर्त्तन नहीं किया है और उसे उसी रूप में ग्रहण किया है, पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण एवं संवादों के नियोजन में, अवश्य ही, वे नव्यता का प्रदर्शन करते हैं। भट्टि ने यथासंभव कथावस्तु में प्रवाह लाने का प्रयत्न किया है और वस्तु के संघटन तथा इतिवृत्तात्मकता के निर्वाह में वे कालिदास का आदर्श स्वीकार कर चलते हैं। उनके पात्र भी अपने परम्परागत रूप में चित्रित हुए हैं। द्वादश सर्ग में उन्होंने रावण को व्यावहारिक एवं राजनीतिक शिक्षाएँ देकर इनकी उपयोगिता सिद्ध की है।

माघ

माघ कालिदासोत्तर अलंकृतशैली के महाकाव्यकारों में अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान के अधिकारी हैं। संस्कृत काव्य के वृहत्त्रयी में उन्हें द्वितीय स्थान प्राप्त है। अपनी विशिष्ट काव्य-शैली के कारण माघ की लोक प्रियता सर्वसिद्ध है। पण्डित-समाज की यह उक्ति है कि 'मेघेमाघं गतं वयः' 'शिशुपालवध' की लोकप्रियता का निदर्शन करती है। महाकवि माघ ने कालिदास की भावतरलता, भारवि की कलाप्रियता तथा भट्टि के व्याकरण-विषयक पाण्डित्य के मिश्रण से अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। वे भारवि की भाँति अधिक कलाप्रेमी और भट्टि से कम व्याकरणिक ज्ञान नहीं रखते, पर कालिदास का भाव-वैभव उनमें उतनी मात्रा में विद्यमान नहीं है। उन्होंने भारवि की अलंकृत काव्य-शैली को गति देने का सफल प्रयास किया है। वे भ.रवि तथा भट्टि के समस्त काव्य गुणों और दुर्बलताओं को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा देते हैं। भारवि की कला को प्रौढ़ और विकसित रूप में उपन्यस्त कर माघ ने अलंकृत काव्य-शैली को नया मोड़ दिया है। शिशुपालवध' में उनका प्रयास पग-पग पर भारवि से आगे बढ़ने का रहा है और इस क्षेत्र में वे सफल होकर अपने काव्य की प्रकृष्ट प्रौढ़ि का निदर्शन करते हैं।

जीवनवृत्त— माघ के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक विवरण प्राप्त नहीं होता। कवि ने ग्रन्थ के अन्त में अपने वंश का संक्षिप्त परिचय पाँच श्लोकों में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिया है; जिसके अनुसार उनके पितामह का नाम सुप्रभदेव था और वे श्री विर्मला नामक नृप के प्रधान मंत्री थे। सुप्रभदेव के पुत्र का नाम दत्तक था जो अत्यन्त गुणवान् थे। इन्हीं दत्तक के पुत्र माघ थे। माघ का जन्म-स्थान गुजरात राज्य का भीमपाल नामक स्थान था। यह स्थान अभी भी राजस्थान में श्रीमालीनगर के नाम से विख्यात है तथा गुजरात की सीमा के निकट है। माघ ने जिस रैवतक पर्वत का वर्णन किया है, वह राजस्थान में ही है। माघ के स्थिति काल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। राजस्थान के वसन्तपुर नामक स्थान में राजा वर्मलात का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसका समय ६२५ ई० है। यह समय माघ के पितामह का है, यदि इसमें ५० वर्ष जोड़ दिया जाय तो माघ का समय ६७५ ई० के निकट माना जा सकता है।

काव्य-वैभव—माघ की एकमात्र कृति 'शिशुपालवध' है जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा २० सर्गों में कही गई है। इस महाकाव्य की कथावस्तु का आधार महाभारतीय कथा है, जिसे महाकवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा विशद रूप दिया है। 'महाभारत' की छोटी घटना के आधार पर महाकाव्य की कथावस्तु संघटित की गई है। कवि ने मूलकथा में अपनी उद्भावना शक्ति एवं कल्पना के प्रयोग द्वारा अनेक परिवर्त्तन उपस्थित किया है। प्रथम सर्ग में आकाशमार्ग से नारद का आगमन एवं कृष्ण से इन्द्र का सन्देश सुनाना, द्वितीय सर्ग में बलराम, उद्धव एवं श्रीकृष्ण का राजनीतिक वार्त्तालाप प्राकृतिक दृश्यों एवं यज्ञ का विस्तृत वर्णन, ये कवि की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। जहाँ तक महाकाव्योचित कथानक का प्रश्न है, 'शिशुपालवध' की कथावस्तु संक्षिप्त होने के कारण अपर्याप्त है। महाकाव्य के लिए जीवन का विस्तार अपेक्षित है, किन्तु 'शिशुपालवध' में जीवन के विस्तृत पक्षों का निदर्शन नहीं है। श्रीकृष्ण के जीवन की एक छोटी-सी घटना को महाकाव्य का रूप दिया गया है। वस्तुतः यह कथा एक खण्डकाव्य के लिए ही उपयुक्त है। इसके अनेक प्रसंग जैसे पानगोष्ठी, रूपविन्यास, प्रातः, सन्ध्या एवं ऋतुवर्णन आदि कथानक से सम्बद्ध होने के कारण स्वतन्त्र रूप से लिखे गए-से लगते हैं, कथावस्तु के विकास में इनका कोई योग नहीं है। तीसरे से लेकर तेरहवें सर्ग तक 'शिशुपालवध' में अनेक वर्णन आनुषंगिक हैं। समष्टि रूप से विचार करने पर यह रचना असफल महाकाव्य सिद्ध होती है। इसमें कवि ने मुख्य और प्रासंगिक घटनाओं के चित्रण में अपना संतुलन खो दिया है। उसका ध्यान प्रबन्ध-निर्वाह की अपेक्षा अपने युग की प्रचलित साहित्यिक विशेषताओं की ओर अधिक होने के कारण ही 'शिशुपालवध' में वन, नगर, पर्वत, चन्द्रोदय, सूर्योदय, युद्ध, नायिकाभेद, पानगोष्ठी, जलविहार एवं विविध शृङ्गारी चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। इसमें पात्रों की संख्या भी अत्यल्प है; केवल दो ही प्रमुख पात्र हैं—श्रीकृष्ण और शिशुपाल; कुछ पात्र जैसे, नारद, युधिष्ठिर, उद्धव, बलराम प्रसंग विशेष से ही सम्बद्ध हैं। कथानक की स्वल्पता ही पात्रों की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न्यूनता का कारण है। इसमें कवि का ध्यान घटना की अपेक्षा पात्रों के चरित्र-दित्रण पर कम रहा है।

माघ का व्यक्तित्व पण्डित कवि का है। उनका आविर्भाव संस्कृत महाकाव्य की उस परम्परा में हुआ था जिसमें शास्त्री, काव्य एवं अलंकृत काव्य की रचना हुई थी। इस युग में पाण्डित्य-रहित कवित्व को अल्प महत्त्व प्राप्त होता था, फलतः माघ ने स्थान-स्थान पर अपने अपूर्व पाण्डित्य का परिचय दिया। वे महा वैयाकरण, दार्शनिक, राजनीतिशास्त्रविशारद एवं नीतिशास्त्री भी थे। शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में उद्धव, श्रीकृष्ण एवं बलराम संवाद के माध्यम से अनेक राजनीतिक गुत्थियाँ सुलझाई गयी हैं तथा राजशास्त्र के सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है।

माघ अलंकृत शैली के कवि हैं। उनका प्रत्येक वर्णन, प्रत्येक भाव, अलंकृत भाषा में ही अभिव्यक्त किया गया है। उनका काव्य कठिनता के लिए प्रसिद्ध है, और कवि ने कहीं-कहीं चित्रालंकार का प्रयोग कर इसे जानबूझकर कठिन बना दिया है। जहाँ तक महाकाव्य की इतिवृत्तात्मकता एवं महाकाव्यात्मक गरिमा का प्रश्न है, 'शिशुपालवध' सफल नहीं कहा जा सकता। माघ का ध्यान इतिवृत्त-निर्वाहकता की ओर नहीं है। इस दृष्टि से भारवि, अवश्य ही, माघ से अच्छे हैं। महाकाव्य के लिए प्रासंगिक वर्णनों का सन्तुलन एवं मूल कथा के साथ उनका सम्बन्ध होना चाहिए। 'शिशुपालवध' की कथावस्तु में चतुर्थ से लेकर त्रयोदश सर्ग तक का वर्णन अप्रासंगिक-सा लगता है। मूलकथा प्रथम, द्वितीय, चतुर्दश एवं बीसवें सर्ग तक ही सीमित रहती है। कवि ने अप्रासंगिक गौण वर्णनों पर अधिक ध्यान देकर पुस्तक की कलेवरवृद्धि की है। 'शिशुपालवध' के वीररसपूर्ण इतिवृत्त में अप्रासंगिक शृङ्गार लीलाओं का पूरे ६ सर्गो में विस्तार से वर्णन ऐसा लगता है जैसे किसी ने पुरानी सूती की रजाई के बीच में रेशम की थिकली लगा दी हो। इसका अंगीरस वीर है और अन्य रस विशेषतः शृङ्गार अंगरस हैं। पर पानगोष्ठी, जलविहार रतिविलास आदि की बहुलता देख कर लगता है कि अंगरंग से अंगी रस को धर दबोचा है। माघ का प्रकृति-चित्रण कृत्रिम एवं अलंकार के भार से बोझिल है। उन्होंने चतुर्थ एवं षष्ठ सर्ग के प्रकृति-वर्णन को यमकालंकार से भर दिया है। इसी प्रकार नवम सर्ग के सूर्यास्त-वर्णन एवं एकादश सर्ग के प्रभात-वर्णन में अप्रस्तुत-विधान का प्राधान्य होने के कारण प्रकृति का रूप अलंकृत एवं दूरारूढ़ कल्पना से आपूर्ण है। उन्होंने मुख्यतः उद्दीपन के ही रूप में प्रकृति का वर्णन किया है, पर कहीं-कहीं विशेषतः द्वादश सर्ग में ग्रामीणों, खेतों तथा गायों का चित्र उपस्थित कर प्रकृति के स्वाभाविक रूप को सुरक्षित रखा है। उनके अप्रस्तुत-विधान में शृङ्गारिकता एवं पाण्डित्य की झलक मिलती है तथा मानवोचित शृङ्गारी चेष्टाओं का प्रकृति पर आरोप किया गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदय – शिखरशृङ्गप्रांगणेष्वेव रिंगन्
सकमल – मुखहासं वीक्षितः पद्मनीभिः ।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्यावयोभिः
परिपतति दिवाऽङ्के हेलया बालसूर्यः ॥''

''आँगन के समान उदयाचल की चोटी पर यह सूर्य शिशु की भाँति रेंगता है । जिस प्रकार दासियाँ प्रसन्न मुख होकर आँगन में रेंगते हुए बच्चे को देखती हैं, उसी प्रकार कमलिनियाँ कमलों को विकसित करके सूर्य का निरीक्षण करती हैं । जैसे शिशु माता के पुकारने पर अपने हाथों को फैलाकर उसकी गोद में चला जाता है, उसी प्रकार चिड़ियों के चहचहाने पर प्रातःकालीन सूर्य की किरणों का प्रसार करके आकाश की गोद में जा पड़ता है ।''

माघ की कविता पद-लालित्य के लिए विख्यात है । कहीं-कहीं तो उनमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जो कालिदास में भी दुर्लभ हैं । ऐसे छन्दों में शब्दालंकारों की भी छटा दिखाई पड़ती है ।

मधुरया मधुबोधित – माधवी
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥ —६।२०

माघ में वर्णन-सौन्दर्य एवं चमत्कार-विधान चरम सीमा पर दिखाई पड़ता है । कवि ने तीस पद्यों में द्वारिकापुरी का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है । इसी प्रकार प्रथम सर्ग में नारद का आकाश से अवतरण भी वर्णनकला की चारुता का परिचायक है ।

श्रीहर्ष

श्री हर्ष 'नैषधचरित' नामक महाकाव्य के प्रणेता हैं । उन्होंने अपने महाकाव्य में कई स्थानों पर अपना परिचय दिया है । उनके पिता का नाम श्रीहीर तथा माता का नाम मामल्ल देवी था । श्रीहीर काशी नरेश गहड़वालवंशी विजयचन्द्र की सभा के पण्डित थे । श्री हर्ष ने अपने नैषधचरित' में लिखा है कि वे कान्य कुब्जेश्वर के सभा पण्डित थे तथा उनकी सभा में उन्हें दो बीड़े पान के द्वारा सम्मानित किया जाता था ।

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् ।
—२२।१५३

श्रीहर्ष कान्यकुब्जेश्वर विजयचन्द्र एवं उनके पुत्र जयन्तचन्द्र दोनों के ही दरबार में थे । जयन्तचन्द्र इतिहास प्रसिद्ध कन्नौज नरेश जयचन्द ही हैं; किन्तु श्रीहर्ष के समय उनकी राजधानी काशी में थी । दोनों पिता-पुत्रों का समय ११५६ से ११९३ ई० तक है । इस प्रकार श्रीहर्ष का समय यही निश्चित होता है । उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की है—'स्थैर्यविचारणप्रकरण', 'विजय प्रशस्ति', 'खण्डन-खण्डखाद्य' 'गौडोर्वीश कुलप्रशस्ति', 'अर्णववर्णन' 'छिन्दप्रशस्ति' तथा 'नवसाहसांकचरित-चम्पू'।

'नैषध चरित' में नलदमयन्ती की प्रणय-कथा का २२ सर्गों में वर्णन हुआ है। श्रीहर्ष की कथावस्तु का स्रोत 'महाभारत' में वर्णित नल-दमयन्ती की कथा है; किन्तु कवि ने नूतन उद्भावना-शक्ति एवं कल्पना के बल पर इसमें नवीन भाव भर दिया है। इसमें नल का सम्पूर्ण वृत्त न होकर नल-दमयन्ती के प्रेम-विवाह और मिलन तक ही है।

महाकवि श्रीहर्ष कालिदासोत्तर काल के कलावादी कवियों में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। उनका महाकाव्य दूरारूढ़ कल्पना, पाण्डित्य-प्रदर्शन, आलंकारिक सौन्दर्य, रसपेशलता एवं अद्भुत अप्रस्तुत-विधान का अपूर्व भाण्डागार है। उनका उद्देश्य सुकुमार मति पाठकों के लिए काव्य-रचना करना नहीं था। उन्होंने कोरे रसिकों के लिए काव्य की रचना न कर केवल पण्डितों के मनोविनोद के लिए अध्ययनजन्य ग्रन्थिलता के भार से बोझिल 'ग्रन्थग्रन्थि' का निर्माण किया था। उनका दार्शनिक ज्ञान नितान्त प्रौढ़ था, अतः बीच-बीच में उन्होंने 'नैषधीयचरित' को निगूढ़ दार्शनिक रहस्यों से संपृक्त कर दिया है। नैषध का सत्रहवाँ सर्ग तो एकमात्र दार्शनिक सिद्धान्तों से ही आपूर्ण है। इस सर्ग में कवि ने चार्वाक मत का अत्यन्त सफलता के साथ खण्डन किया है तथा अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का भी प्रदर्शन किया है। श्रीहर्ष ने सभी दर्शनों के मत को लेकर उन्हें काव्य-कल्पना के द्वारा मनोरम बनाया है। नल और दमयन्ती के मन के दो परमाणुओं के मिलने से नवीन सृष्टि निर्मित करने की बात वैशेषिक दर्शन के आधार पर की गई है।

> दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां नमन्तु सरस्वतीम्,
> तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम्।
> स परमपरः क्षीरोदन्वान्यदीयमुदीयते,
> मथितुरमृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम्॥ —२२।१५१

"पर्वत के पाषाणखण्ड इधर-उधर ऊपर-नीचे गिर कर गर्जन आडम्बर करने वाले अपना स्रोत बहाया करें, किन्तु क्षीरसागर से उनकी समता ही क्या जिसमें मन्थन करने वालों को परम सुखद, श्रमापहारी अमृत प्राप्त होता है। उसी प्रकार सूक्ति-रचना में जड़ कविगण अपने पद जोड़ा करें और उनमें ऊपरी अलंकार ध्वनि आदि लाने का भी प्रयत्न करें, किन्तु क्षीरसागर के समान वह श्रीहर्ष नाम का कोई लोकोत्तर ही कवि है जिसे वाणी-प्रवाह में परमानन्ददायी अमृत की प्राप्ति होती है।"

> अन्योन्यसंगमवशादधुना विभातां
> तस्यापि तेऽपि मनसी विकसद्विलासे।
> स्रष्टुं पुनर्मनसिजस्य ननु प्रवृत-
> मादाविव द्व्यणुककृत्परमाणुयुग्मम्॥ —३।१२५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"इस समय परस्पर मिलकर नल के और तुम्हारे दोनों के मन अपनी विलास कलाओं को व्यक्त करते हुए सुशोभित हों। मानो कामदेव के शरीर का पुनः निर्माण करने के लिए द्व्यणुक बनाने में दो परमाणु प्रवृत्त हुए हैं।"

विशुद्ध काव्य की दृष्टि से भारवि, माघ आदि से श्रीहर्ष बढ़कर हैं। भारवि और माघ द्वारा उद्भावित एवं अतिशायित काव्यविधान को नैषधकार ने चरमोत्कर्ष प्रदान किया है। संस्कृत भाषा पर तो मानो उनका असाधारण अधिकार है और वाणी कवि की अनुवर्त्तिनी हो गई है। उनमें नवीन भावों, आकर्षक कल्पनाओं, नये शब्द-संगठनों, व्यंजनाओं एवं चित्रों को उत्सृष्ट करने की अद्‌भुत क्षमता दिखाई पड़ती है। श्रीहर्ष ने युगीन सांस्कृतिक चेतना को आत्मसात् करते हुए अपनी संवेदना को उससे प्रभावित किया है। उनमें कुछ नवीन कहने की प्रवृत्ति अत्यधिक बलवती है। तत्कालीन ह्रासोन्मुखी हिन्दू-समाज की भावनाओं का चित्रण नैषध में पूरे प्रकर्ष पर है। इस सम्बन्ध में डॉ० देवराज का कथन ध्यातव्य है—"श्रीहर्ष का सौन्दर्यबोध तथा नीतिबोध बहुत दूर तक परम्परा का उत्कर्षकालीन उदात्त परम्परा का अनुसरण करता है। ऐसे बोध के प्रकाशन में जहाँ-तहाँ पर्याप्त नवीनता तथा चमत्कार है। किन्तु इस बोध के साथ वह अपने युग के विशिष्ट बोध को अनजाने ही मिश्रित कर देता है, जिससे प्रसंग विशेष का समग्र प्रभाव मिश्रित, कुछ घटिया कोटि का बन जाता है। कहने का मतलब यह कि 'नैषधीयचरित' में ऊँचे तथा घटिया सौन्दर्य-बोध का संकुल मिश्रण है। जहाँ उसे बढ़िया सौन्दर्य-बोध का स्रोत भारतीय काव्य की उदात्त परम्परा है, वहाँ मानना चाहिए कि उस बोध की कमियों तथा जिज्ञासाओं का हेतु उसके युग का अपेक्षाकृत निचला सांस्कृतिक धरातल है।"*

श्रीहर्ष मुख्यतः शृङ्गाररस के कवि हैं। उन्होंने शृङ्गार-वर्णन में स्थान-स्थान पर वात्स्यायन का गम्भीर अध्ययन प्रदर्शित किया है तथा अठारहवें एवं बीसवें सर्ग के रति-केलि-वर्णन में, अनेक स्थलों पर, अपने कामशास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन करते हुए अनेक अप्रस्तुत विधान का नियोजन किया है। सप्तम सर्ग में किया गया दमयन्ती का नख-शिख-वर्णन विलासमय चित्रों से आपूर्ण है तथा कई स्थलों पर तो मर्यादा का भी अतिक्रमण कर दिया गया है। सोलहवें सर्ग के ज्योनार-वर्णन में वारस्त्रियों की चेष्टाओं का अश्लील चित्रण इसका प्रमाण है।

घृतप्लुते भोजनभाजने पुरः
स्फुरत्परंध्री प्रतिबिम्बिताकृतेः।
युवानिधायोरसि लड्डुकद्वयं
नखैर्लिलेखाथ ममर्द निर्दयम्॥ —१६।१०३

---

* भारतीय संस्कृति, पृ० १७५।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"युवक के सामने घी से चिकने चमकते भोजन-पात्र में सुन्दरी का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। युवक ने उस प्रतिबिम्ब के वक्षःस्थल पर दो लड्डू रखकर उन्हें नख से कुरेदना प्रारम्भ किया, और अन्त में सुन्दरी के देखते हुए उन दोनों लड्डुओं को निर्दयता के साथ मसल डाला।"

अप्रस्तुत-विधान की दूरारूढ़ता के कारण कहीं-कहीं उनका विप्रलम्भ-वर्णन इस प्रकार भाराक्रान्त हो गया है कि उससे वियोग की अनुभूति भी नहीं हो पाती। नख-शिख-वर्णन की बहुलता नैषध की अन्यतम विशेषता है। कवि ने नल एवं दमयन्ती दोनों का ही नख-शिख-वर्णन किया है। उनका नख-शिख-वर्णन कथा के प्रवाह का अवरोधक तो है ही, साथ-ही-साथ पिष्टपेषण भी करनेवाला है, जिससे पाठक का मन ऊबने लगता है। अप्रस्तुत-विधान के तो श्रीहर्ष अक्षय भण्डार हैं और इस गुण के कारण वे सभी कवियों में अग्रणी सिद्ध होते हैं। उन्होंने उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति, अपह्नुति आदि अलंकारों का आश्रय ग्रहण कर विचित्र कल्पनाएँ की हैं और कहीं-कहीं अप्रस्तुत विधान के घटाटोप में स्वाभाविकता को भी ओझल कर दिया है। नैषधकार अपने पद-लालित्य के कारण संस्कृत विद्वानों में समादृत हैं और नैषध सुन्दर पदों का अपूर्व भाण्डागार दिखाई पड़ता है। उनका प्रकृति-चित्रण अनावश्यक पौराणिक विवरणों एवं आलंकारिक चमत्कार से भरा पड़ा है। उन्नीसवें सर्ग का बन्दियों द्वारा किया गया प्रभात-वर्णन इन्हीं दोषों के कारण उबानेवाला सिद्ध होता है। कुल मिलाकर नैषधमहाकाव्य कृत्रिम एवं अलंकृत शैली को चरमोत्कर्ष पर पहुँचानेवाला एक महनीय ग्रन्थ रत्न है, जो श्रीहर्ष को उच्चकोटि का कवि सिद्ध करता है। स्वयं कवि ने अपनी शैली को वैदर्भी रीति कहा है, पर नैषध में सर्वत्र वैदर्भी रीति नहीं मिलती यत्र-तत्र गौड़ी की गाढ़बन्धता भी दृष्टिगत होती है। वैदर्भी की सरस कोमलता का तो नैषध महाखान है। कवि ने कला पक्ष का परमोदात्त रूप इस प्रकार प्रदर्शित किया है जिससे उसका भावपक्ष दब गया है। नैषध को सूक्तिवादी तथा चमत्कारपूर्ण काव्य का वास्तविक प्रतिनिधि कृति कहा जा सकता है, जिसमें महाकाव्यों की कृत्रिम शैली का चरम परिपाक दिखाई पड़ता है।

अमरुक

अमरुक संस्कृत के उत्कृष्ट मुक्तक कवियों में से हैं। उनकी एकमात्र अमर कृति 'अमरुकशतक' है। मुक्तक काव्य की जितनी भी विशेषताएँ हो सकती हैं, वे सब अमरुक के काव्य में चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी हैं। अल्प शब्दों में अधिक भाव भरने की उनकी निजी प्रवृत्ति है। उनका काव्य भावप्रवण, कल्पनायुक्त तथा प्रौढ़ कलात्मकता से आपूर्ण है। आचार्यों ने उनके एक-एक श्लोक पर सैकड़ों प्रबन्ध काव्यों को न्योछावर करने की घोषणा कर उनकी महनीयता का परिचय दिया है। कला और भावपक्ष का अपूर्व सम्मिलन उनकी कविता की विशिष्टता है। अमरुक शृंगारिकता के कवि हैं। वे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

शृङ्गाररस के विविध आकर्षक चित्रों को प्रस्तुत कर अपनी तूलिका की रसप्रवणता तथा कलात्मकता का परिचय देते हैं और संस्कृत मुक्तकों की अखण्ड परम्परा को अन्तर्मुक्त कर उसे चरम सीमा पर पहुँचा देते हैं। कथन की भंगिमा या उक्तिवैचित्र्य से उनका 'शतक' परिपूर्ण है। उन्हें शृङ्गार की विविध स्थितियों के वर्णन में अपूर्व दक्षता प्राप्त है।

'अमरुकशतक' में एक सौ से कुछ ऊपर श्लोक हैं और वह हस्तलेखों में विभिन्न दशाओं में प्राप्त होता है। सभी हस्तलेखों में ५१ श्लोक तो समान रूप से प्राप्त होते हैं, पर उनके क्रम में अन्तर दिखाई पड़ता है। उनके श्लोकों जी संख्या ६० से ११५ तक पहुंचती है। कुछ विद्वानों ने केवल शार्दूलविक्रीडित छन्द को ही अमरुक की रचना मानने के पक्ष में मत प्रकट किया है, पर इससे उसकी संख्या ६०-६१ से अधिक नहीं पहुंचती और शतक पूर्ण नहीं होता। कुछ विद्वानों का विचार है कि 'अमरुकशतक' के प्राचीन टीकाकार अर्जुनवर्मदेव (१२१५ ई० के आसपास) द्वारा अभिस्वीकृत पाठ ही प्रमाणिक है, किन्तु इस पक्ष की अभी पूर्ण पुष्टि नहीं हो सकी है।

उनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता और न उनका समय ही निर्धारित हो सका है। आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' में उनकी प्रशंसा कर उनके श्लोकों को उदाहरण स्वरूप रखा है। आनन्दवर्द्धन काश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा के (८५० ई०) के समकालीन थे। उनके पूर्व वामन ने (८०० ई०) अमरुक के श्लोकों को उद्धृत किया है, अतः इससे सिद्ध होता है कि नवमशती के आरम्भ में ही अमरुक की रचना लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थी। इस प्रकार अमरुक का समय ७५० ई० के पूर्व निश्चित होता है।

'अमरुकशतक' की अनेक टीकाएँ प्राप्त होती हैं। अर्जुनवर्मदेव की टीका का नाम 'रसिकसञ्जीवनी' है। इसके अतिरिक्त वेमभूपालकृत 'शृङ्गारदीपिका' नामक टीका भी मिलती है।

अमरुक मूलतः शृङ्गार रस के कवि हैं और उनका वास्तविक प्रतिपाद्य है नायक-नायिका की विविध मोहक भावनाओं का चित्रण। उन्होंने शृङ्गार रस के उभय-संयोग और वियोग-पक्षों का अत्यन्त हृदयग्राही एवं कलात्मक चित्र उरेहा है। कुछ विद्वानों ने यहाँ तक कह दिया है कि अमरुक ने न केवल नायक-नायिका-भेदों का अपितु कामशास्त्र की तत्तत् नियम-सरणि को ध्यान में रख कर ही अपने मुक्तकों की रचना की है। पर, वास्तविकता ऐसी नहीं है। कवि ने स्वतन्त्र रूप से शृङ्गारी पदों की रचना की है, जिनमें विभिन्न प्रेमिल भावों को इस प्रकार उपन्यस्त किया गया है कि जिससे उनमें नायिका-भेदों और कामशास्त्रीय तत्त्वों का भी समावेश हो गया है। अमरुक ने तत्का-लीन विलासी जीवन एवं प्रणय-व्यापार का मादक तथा मोहक चित्र खींचा है, जिसे पश्चात्वर्ती आचार्यों ने अपने लक्षणों के अनुरूप देखकर लक्ष्य के रूप में उन्हें उदाहृत

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किया है। कालान्तर में रतिशास्त्र विशारद आचार्यों ने अमरुक के पद्यों में वात्स्यायन की साम्प्रयोगिक पद्धतियों को ढूंढ़ कर निकाल लिया। शृङ्गार के विविध पक्षों का सफल चित्र अंकित करने में अमरुक अपनी सानी नहीं रखते। उनकी तूलिका कलाविदग्ध चित्रकार की भाँति चित्र की रेखाओं, सूक्ष्मता एवं भंगिमा का मनोरम रूप उपस्थित करती है। नख-शिख वर्णन के लिए अल्प क्षेत्र होने पर भी कवि ने नायिका के लावण्य का मनोहारी चित्र खींचा है। अमरुक में युवा हृदयों की अस्थिर भावनाओं को निरलंकृत एवं काव्यात्मक धरातल बहुरंगी कल्पना से व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है। जब नवोढ़ा पत्नी देखती है कि उसका प्रिय प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न है तब वह वासगृह को सूना लख कर धीरे से उठ कर उसके मुंह को निहारती है और पुनः आश्वस्त होकर उसके मुख का चुम्बन करती है, पर कपोलों को रोमांचित होते देखकर वह लज्जा से नतमुख हो जाती है और प्रिय उसे बहुत देर तक चूमता रहता है।

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै-
र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरंनिर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता॥ —८२

अमरुक रस-सिद्ध कवीश्वर हैं। उनके पास भावों की अपूर्व तरलता दिखाई पड़ती है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उनका कलापक्ष गौण है, यह बात अलग है कि वे सहज स्वाभाविक और अकृत्रिम शैली में भावों की व्यंजना कराते हैं, अलंकारों या उक्ति-वैचित्र्य के समावेश के लिए आयास नहीं करते; पर उनकी कविता में अनायास ही अलंकारों का गुंफन हो जाता है। अमरुक का प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है। उन्होंने वैदर्भी रीति को अपना कर छोटे-छोटे पदों के द्वारा शार्दूलविक्रीडित छन्द में शृङ्गार-रस की व्यंजना कराई है, वैसे वे वसन्ततिलका और शिखरिणी के भी प्रयोग में पटु हैं। उनके पदों में भाषा की समास-शैली बेजोड़ है। उनकी अभिव्यंजना में कलात्मकता का प्रदर्शन न होकर समस्त पदावली में व्यंजना की आकर्षक मसृणता दिखाई पड़ती है।

जयदेव

जयदेव संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट गीति-काव्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी कविता में संगीत, भक्ति एवं कोमलकांत पदावली का रासायनिक सम्मिश्रण है। उन्होंने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला को संगीतात्मक अभिव्यक्ति की है जिसमें उनके हृदय की मार्मिक अनुभूतियों और प्रेम-प्रणय-भावना का उन्नयन हुआ है। उनकी प्रसिद्धि का कारण एक मात्र उनकी कृति 'गीतगोविन्द' है।

जीवन वृत्त—स्वयं कवि ने अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ संकेत किये हैं तथा अन्य स्रोतों से भी उनके जीवन वृत्त पर प्रकाश पड़ता है। वे बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सभापति थे, उनका आविर्भाव बारहवीं शती के अन्तिम चरण में हुआ था। उनके पिता का नाम भोजदेव एवं माता का नाम राधादेवी था। उनका जन्म बंगाल के किन्दुविल्व या केन्दुली नामक स्थान में हुआ था। उनकी दो पत्नियाँ थीं—पद्मावती और रोहिणी। कतिपय विद्वान् उन्हें उत्कल-निवासी मानने के पक्ष में हैं, पर इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। जयदेव संस्कृत के प्रसिद्ध कवि उमापतिधर, गोवर्द्धन तथा धोयी के समकालीन थे और सभी लक्ष्मणसेन के दरबार में रहते थे। राजालक्ष्मण-सेन का एक शिलालेख ११२६ ई० का प्राप्त होता है, जिससे जयदेव का समय ११०० ई० के निकट स्थिर होता है।

काव्य-वैभव—जयदेव देववाणी के पीयूषवर्षी कवि एवं युगप्रवर्त्तक गीतिकार हैं। उन्होंने 'गीतगोविन्द' की रचना बारह सर्गों में की है; किंतु उन्हें गेयपद शैली में लिखा है। उनकी अभिव्यंजनाशैली कलात्मक और सांगीतिक माधुर्य से संबलित है। संगीत और पदलालित्य के समन्वय के कारण जयदेव की कलात्मकता भास्वर हो उठी है। उनके सम्बन्ध में कई प्रशस्तियाँ प्रचलित हैं तथा स्वयं कवि ने भी अपने काव्य के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक स्वर व्यक्त किया है।

आकर्ण्य जयदेवस्य गोविन्दानन्दिनी गिरः।
बालिशाः कालिदासाय स्पृहयन्तु वयं तु नः॥

'गीतगविंद' को बारह सर्गों के उपविभाग में विभक्त कर उन्हें प्रबन्ध कहा गया है, जिनकी संख्या चौबीस है। यह काव्य प्रबन्धात्मक या कथात्मक है, जिसमें राधा-कृष्ण की सरस प्रेम-लीला को उसका कथानक बनाया गया है। उसमें गीतों के साथ ही साथ संस्कृत के वर्णिकवृत्त भी प्रयुक्त हुए हैं। कथासूत्र के विकास में वर्णिकवृत्त सहायक हुए हैं और जहाँ पात्रों की भावनाओं को व्यक्त किया गया है वहाँ गेयपदों का नियोजन हुआ है। प्रत्येक सर्ग गीतों से युक्त है तथा सर्ग के कथानक का निर्देश वर्णनात्मक पद्यों द्वारा हुआ है। प्रारम्भ में कवि ने चार श्लोकों में मंगलाचरण, प्रस्तावना, रचनोद्देश्य एवं कवि परिचय प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् एक पद्य में दशावतार का वर्णन है।

जयदेव की कविता में शृङ्गार का ऐसा उद्दाम रूप चित्रित है जिससे सहसा पाठक को उनके राधा और कृष्ण लौकिक नायिका-नायक के रूप में प्रतिभासित होने लगते हैं और उनकी प्रेमिल भंगिमाएँ मांसल प्रेम को अभिव्यक्त करती हैं। ऐसा लगता है कि स्वयं कवि ने भी अपनी इस दुर्बलता को भाँप लिया था। इसीलिए प्रत्येक सर्ग के अन्त में उसने अपनी ओर से तर्क दिया कि उसके आराध्य कृष्ण भगवान् हैं और उनकी लीला का गान करने से पाठकों का कल्याण होगा। एक स्थान पर गर्वोक्ति करते हुए कवि ने कहा है कि 'गीतगोविन्द' में भक्ति, संगीत एवं काव्य का संगम है।

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
कलितकोमलकान्तपदावलीम् शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'गीतगोविन्द' शृङ्गारपरक काव्य है। इसमें शृङ्गार रस के उभय पक्षों-संयोग और वियोग—का हृदयावर्जक चित्र अंकित किया गया है और उनमें भी संयोग के चित्र अत्यन्त मनोरम हैं। जयदेव ने संयोग शृङ्गार का वर्णन अत्यन्त विस्तार एवं कौशल के साथ किया है, वियोग का नहीं। उनके पूर्व संस्कृत में गीतिकाव्य की दो प्रमुख धाराएँ—शृङ्गारिकता तथा धार्मिकता—प्रचलित थीं जो गीतगोविन्द में आकर समाविष्ट हो गई हैं। उन्होंने अनेक शृङ्गारी परिस्थितियों की कल्पना कर राधा को विभिन्न नायिकाओं का रूप प्रदान किया है। वह उत्कण्ठिता, अभिसारिका, प्रोषितपतिका, खण्डिता, धीराधीरा, स्वाधीनभर्तृका तथा कलहान्तरिता के रूप में प्रस्तुत की गई है और कृष्ण दक्षिण नायक बनकर उसके चरणों को अपने हाथों से दबाकर उसके श्रमजनित कष्ट का निवारण करते दिखाई पड़ते हैं।

करकमलेन करोमि चरणमहमागतासि विदूरम्।
क्षणमुपकुरु शयनोपरिमामिव नूपुरमनुगतिशूरम्॥ १२।१२

श्री कृष्ण को शठ तथा धृष्ट नायक के भी रूप में चित्रित किया गया है। वे किसी अन्य सखी के साथ विहार कर राधिका के प्रति अपने शठत्व का परिचय देते हैं और कभी अन्य सुन्दरी के चरण-कमल में लगे जावक से सुशोभित वक्षस्थल को राधिका को दिखाकर अपनी धृष्टता प्रकट करते हैं। 'गीतगोविन्द' में गौडी एवं वैदर्भी रीति का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है तथा समासबहुल पदों का खुल कर प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं तो गीत की एक पंक्ति में एक ही समस्त पद मिलता है—

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे॥

सम्पूर्ण रचना में एक भी ऐसा पद्य नहीं मिलता जो भावानुरूप कोमल न हो। इसमें कवि ने संस्कृत के वर्णिक वृत्त तथा संगीत के मादक पदों का विचित्र समन्वय किया है। आलोचक जयदेव की कृति में मौलिकता का अभाव मानते हैं; क्योंकि उन्होंने पूर्ववर्त्ती कवियों की शृङ्गारी उक्तियों को अपने काव्य में स्थान दिया है। भावना अथवा कल्पना दोनों में ही उनका मौलिक रूप प्रदर्शित नहीं होता, पर वे शब्दशय्या और पद-विन्यास में अपनी अपूर्व कलाचातुरी का परिचय देकर नवीनता की सृष्टि करते हैं। सांगीतिक छटा के कारण उनका काव्य अभिनव रमणीयता से आच्छादित हो जाता है और पाठक को इसका पता नहीं चलता कि जयदेव के अप्रस्तुत विधान परम्परामुक्त हैं या अलंकारों के नियोजन में कोई नावीन्य नहीं है। उनका कलापक्ष अनुपम एवं ललित परिवेश से युक्त है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पंचम अध्याय

गद्यकवि

(पञ्चतन्त्र, सुबन्धु, दण्डी, बाणभट्ट और त्रिविक्रमभट्ट)

पञ्चतन्त्र

पञ्चतन्त्र संस्कृत पशु-कथा का महान् ग्रन्थ है । इसके रचयिता विष्णुशर्मा हैं । यह विश्व पशु-आख्यायिका की परम्परा में भारत की एक महान् देन है । इसमें सरल भाषा में अनेक पशुकथाएँ वर्णित हैं जिनमें जीवन की विविध समस्याओं का समाधान किया गया है। ये कथाएँ मूलतः गद्य में हैं, किन्तु बीच-बीच में प्रचुर मात्रा में पद्यों का भी समावेश कर विषय को अधिक स्पष्टता प्रदान की गई है । 'पञ्चतन्त्र' की कहानियाँ नितान्त प्राचीन है । इसका सर्वाधिक प्राचीन संस्करण 'तन्त्राख्यायिका' के नाम से विख्यात है तथा इसका मूल स्थान काश्मीर है । इसके विभिन्न शताब्दियों में विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न संस्करण हुए हैं । प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० हर्टेल ने अत्यन्त श्रम के साथ इसके प्रामाणिक संस्करण को खोज निकाला था । उनके अनुसार 'तन्त्राख्यायिका' या 'तन्त्राख्यान' ही 'पञ्चतन्त्र' का मूल रूप है । इसमें कथा का रूप भी संक्षिप्त है तथा नीतिमय पद्यों के रूप में समाविष्ट पद्यात्मक उद्धरण भी कम हैं । सम्प्रति 'पञ्चतन्त्र' के चार भिन्न-भिन्न संस्करण उपलब्ध होते हैं—

(क) मूलग्रन्थ का पहलवी अनुवाद, जो प्राप्त नहीं होता, पर इसका रूप सीरियन एवं अरबी अनुवादों में सुरक्षित है ।

(ख) 'पञ्चतन्त्र' का दूसरा रूप गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' में दिखाई पड़ता है। 'बृहत्कथा' की रचना पैशाची भाषा में हुई थी, किन्तु इसका मूल रूप नष्ट हो गया है । और क्षेमेन्द्ररचित 'बृहत्कथामंजरी' तथा सोमदेव लिखित 'कथासरित्सागर' उसी के अनुवाद हैं ।

(ग) तृतीय संस्करण में 'तन्त्राख्यायिका' एवं उससे सम्बद्ध जैन कथाओं का संग्रह है । आधुनिक युग का प्रचलित 'पञ्चतन्त्र' इसी का रूप है ।

(घ) चतुर्थ संस्करण दक्षिणी 'पञ्चतन्त्र' का मूलरूप है तथा इसका प्रतिनिधित्व नेपाली 'पञ्चतन्त्र' एवं 'हितोपदेश' करते हैं । इसका प्रकार 'पञ्चतन्त्र' एक ग्रन्थ न होकर 'एक विपुल साहित्य का प्रतिनिधि' है । इसका रचनाकाल अनिश्चित है, किन्तु इसका प्राचीन रूप डॉ०हर्टेल के अनुसार, दूसरी शताब्दी है । इसका प्रथम पहलवी अनुवाद छठी शताब्दी में हुआ था । हर्टेल ने पचास भाषाओं में इसके दो सौ अनुवादों का उल्लेख किया है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'पञ्चतन्त्र' का सर्वप्रथम परिष्कार एवं परिबृंहण प्रसिद्ध जैन विद्वान् पूर्ण भद्रसूरि ने संवत् १२५५ में किया है और आजकल का उपलब्ध संस्करण इसी पर आधृत है। पूर्णभद्र के निम्नोक्त कथन से 'पञ्चतन्त्र' के पूर्ण परिष्कार की पुष्टि होती है—

प्रत्यक्षरं प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम् ।
श्रीपूर्णभद्रसूरिर्विशोधयामास शास्त्रमिदम् ॥

'पञ्चतन्त्र' के पाँच तन्त्र या विभाग हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धिविग्रह, लब्धप्रणाश एवं अपरिक्षितकारक। इसके प्रत्येक अंश में एक मुख्य कथा होती है और उसको पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएँ गुंफित होती हैं। प्रथम तन्त्र की अंगी कथा के पूर्व दक्षिण में महिलारोप्य के राजा अमर शक्ति की कथा दी गई है। उन्हें इस बात का दुःख है कि उनके पुत्र मन्दबुद्धि हैं और वे किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ हैं। वे विष्णुशर्मा नामक महापण्डित को अपने पुत्रों को सौंप देते हैं और वे उन्हें छह माह के भीतर आख्यायिकाओं के माध्यम से शिक्षित करने का कठिन कार्य सम्पन्न करने में सफल होते हैं। तत्पश्चात् मित्रभेद नामक भाग की अंगी कथा में एक दुष्ट सियार द्वारा पिंगलक नामक सिंह के साथ संजीवक नामक बैल की शत्रुता उत्पन्न कराने का वर्णन है, जिसे सिंह ने आपत्ति से बचाया था और अपने दो मन्त्रियों—करकट और दमनक—के विरोध करने पर भी उसे अपना मित्र बना लिया था। द्वितीय तन्त्र का नाम मित्र-सम्प्राप्ति है। इसमें कपोत-राजचित्रग्रीव की कथा है। तृतीय तन्त्र में युद्ध और सन्धि का वर्णन किया गया है। उसमें उलूकों की गुहा को कौओं द्वारा जला देने की कथा कही गई है। चतुर्थ तन्त्र में लब्ध प्रणाश का उदाहरण एक बन्दर तथा ग्राह की कथा द्वारा प्राप्त होता है। पंचम तन्त्र में बिना विचारे काम करने वालों को सावधान करने की कथा कही गई है।

'पञ्चतन्त्र' की कथा के माध्यम से लेखक ने अनेक सिद्धान्त रूप वचन कहे हैं जिनमें नैतिक, धार्मिक; दार्शनिक तथा राजनीतिक जीवन के सामान्य नियम अनुस्यूत हैं। इसकी भाषा सरल, ललित एवं चुभनेवाली है। वाक्य छोटे तथा प्रभावशाली अधिक हैं। कथा में व्यवहारिकता अधिक है और लेखक ने उसे जीवन के निकट ला दिया है। यत्र-तत्र विशेषणों एवं कल्पनाओं का समावेश कर इसमें काव्यात्मक प्रवाह प्रकट किया गया है, पर वहाँ भी भाषा अलंकारों के भार से बोझिल नहीं बनी है। ग्रन्थ के प्रत्येक पृष्ठ पर शास्त्रनिष्ठ, व्यवहार कुशल एवं नीति-पटु व्यक्ति का व्यक्तित्व झांकता है। इसकी मुहावरेदार तथा सरल भाषा में विनोद-प्रियता एवं व्यंग्यात्मकता झलकती रहती है। कहीं भी वाक्य:विन्यास में दुरूहता एवं दुर्बोधता के दर्शन नहीं होते। लेखक ने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों—रामायण, महाभारत तथा प्राचीन नीति ग्रन्थों—से सूक्तियों को लेकर अपने विचारों की पुष्टि की है। "लेखक की भाषा स्पष्टतः सुन्दर है, और विशेष रूप से पद्यों में हम परिष्कृत तथा जटिल छन्दों के साथ-साथ श्लेष तथा परिष्कृत शैली के अन्य चिह्न

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

भी पाते हैं। कुछ पद्यों में काव्य की सरलतर शैली में प्रचलित समासों की अपेक्षा कुछ बड़े समास भी पाये जाते हैं; परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं, जहाँ अर्थ की वास्तविक जटिलता मूल ग्रन्थ में बताई जा सके। यह स्पष्ट है कि लेखक सुरुचि से युक्त था और यह समझता था कि बाल राजकुमारों के लिए अभिप्रेत रचना में भाषा शैली की अत्यधिक कृत्रिमता अनुपयुक्त है।*

सुबन्धु

अलंकृत गद्य लिखने वाले संस्कृत लेखकों में सुबन्धु एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में परिगणित होते हैं। उनकी एकमात्र उपलब्धकृत 'वासवदत्ता'। है सुबन्धु का न तो प्रामाणिक जीवनवृत्त ज्ञात है और न तिथिक्रम का ही पता चलता है। उनकी 'वासवदत्ता' से भी अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उनके जीवनवृत्त की जानकारी प्राप्त नहीं होती। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में उनका नामोल्लेख किया है। उनके जीवनवृत्त और समय दोनों ही विवादास्पद हैं और इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् उन्हें काश्मीरक स्वीकार करते हैं तो कुछ के अनुसार वे मध्य देशीय हैं। बाण के 'हर्षचरित' में उत्तरांचल के कवियों की श्लेषप्रियता का उल्लेख है। सुबन्धु ने अपनी रचना को 'प्रत्यक्षरश्लेषमय-प्रबन्ध' कहा है जिससे उनका काश्मीरी होना सिद्ध होता है। यह श्लेषप्रियता संभवतः उनकी प्रान्तगत विशेषता के कारण हो सकतीं है। यदि सुबन्धु की रचना में श्लेषाधिक्य का कारण उनका उदीच्य होना स्वीकार किया जाय तो उन्हें काश्मीरी माना जा सकता है। अनुमान से ज्ञात होता है कि वे वैष्णव रहे होंगे, क्योंकि 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में उन्होंने सरस्वती की वन्दना करने के पश्चात् दो श्लोकों में कृष्ण की भी स्तुति की है और एक श्लोक शिव के भी, सम्बन्ध में लिखा है। [वासवदत्ता, १, २, ३, ४,] उनका समय छठीं शताब्दी का मध्य निश्चित होता है; क्योंकि उन्होंने कामसूत्र के प्रणेता वात्स्यायन (समय ५वीं शती) का उल्लेख किया है।

वासवदत्ता—'वासवदत्ता' की कथा काल्पनिक है और उसका सम्बन्ध भासकृत 'स्वप्नवासवदत्ता' से नहीं है। इसमें चिन्तामणि राजा के पुत्र कन्दर्पकेतु द्वारा एक सुन्दरी (वासवदत्ता) को स्वप्न में देखने का वर्णन है जो उसके लावण्य पर मुग्ध होकर उसकी खोज में निकल पड़ता है और रात के समय विन्ध्याटवी में अपने मित्र मकरन्द के साथ सोई हुई अवस्था में उसे एक शुक-दम्पत्ति द्वारा वासवदत्ता की सूचना प्राप्त होती है। वह उनके द्वारा संकेत प्राप्त कर वासवदत्ता के नगर में पहुँचता है और वहाँ दोनों का मिलन होता है। मार्ग में अनेक विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त कर तीनों अपनी राजधानी में पहुँच जाते हैं।

* ए० बी० कीथ—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३०८–३०९

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'वासवदत्ता' में भारतीय लोक कथाओं में प्रायः प्रयुक्त होनेवाली कथानक रूढ़ियों का समावेश करते हुए इसे रोमानी कहानी का रूप प्रदान किया गया है। वर्णन-क्रम में कवि ने नख-शिख-वर्णन की पद्धति का प्रयोग कर कथा को रोचक बनाने का प्रयास किया है। बीच-बीच में वह नगर, समुद्र, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, पर्वत, युद्ध आदि का भी वर्णन कर पाठकों के मन को रमाता है और वर्णन का पृष्ठाधार भी प्रस्तुत करता है। वह लोककथाकार की भाँति केवल मूलकथा को ही नहीं कहता अपितु उसे विभिन्न प्रकार के वर्णनों से सजाकर अपनी कलात्मक रुचि का परिचय देता है। यह ठीक है कि लेखक का ध्यान चरित्र-विश्लेषण या चारित्रिक वैशिष्ट्य को प्रकट करने की ओर नहीं गया है; क्योंकि वह पहले ही प्रतिज्ञा कर चुका है कि वह 'प्रत्यक्षरश्लेषमय-प्रबन्ध' की रचना करने के लिए उद्यत है, फलतः कथानक के चढ़ाव-उतार या चारित्रिक उच्चावचता की अपेक्षा उसकी रुचि अभिव्यंजना पक्ष को अधिक मार्मिक और प्रभावशाली बनाने की ओर उन्मुख है। वह इतिवृत्त के प्रवाह में या रसोद्बोध में विघ्न उपस्ति कर शाब्दी-क्रीड़ा के प्रदर्शन में दत्तचित्त हो जाता है। कवि ने कन्दर्पकेतु द्वारा वासवदत्ता को स्वप्न में देखने का इतने विस्तार से वर्णन किया है कि पाठक का मन ऊब जाता है और वह वर्णन इतिवृत के विकास में अवरोधक बन जाता है। विद्वानों ने वासवदत्ता का अध्ययन कर उसे एक असफल कथा सिद्ध किया है; क्योंकि उसमें न तो जटिल घटनाओं की योजना की गई है और न उन्हें परिष्कृत करने के लिए लेखक की ओर से कोई प्रयास किया गया है।

रचना-कौशल—सुबन्धु रचित 'वासवदत्ता' का सम्बन्ध उदयन और वासवदत्ता से नहीं है। इसमें कवि ने ऐसी काल्पनिक कथा का वर्णन किया है जो उसके मस्तिष्क की उपज है। लेखक ने ग्रन्थारम्भ में ही अपनी श्लेषप्रियता का उल्लेख किया है—

सरस्वती दत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥ १३

"सरस्वती ने वर प्रदान कर जिस पर अनुग्रह किया है और जो सज्जनों का एक मात्र बन्धु है उस सुबन्धु ने प्रत्येक अक्षर में श्लेष द्वारा सप्रपंच रचना की निपुणता का परिचायक वासवदत्ता नामक ग्रन्थ का निर्माण किया है।" सुबन्धु अलंकृत गद्य-शैली के प्रणेता एवं श्लेषप्रिय गद्य काव्य लेखक हैं। उन्होंने अपनी रचना के प्रत्येक अक्षर को श्लेषमय बनाने की प्रतिज्ञा की है और इस यत्नसाधित शैली का निर्वाह करने में पूर्णतः सफल हुए हैं। उनकी शैली में बौद्धिकता का प्राधान्य एवं रागात्मकता का अल्पनिर्वाह हुआ है। उन्होंने पात्रों के हर्ष-दुःखादि भावों के चित्रण में अपनी वृत्ति को लीन न कर शाब्दी-क्रीड़ा-प्रदर्शन की ओर अधिक अभिनिवेश प्रकट किया है श्लेषसाफल्य ही उनकी कला का अभिप्रेत है और अलंकृत गद्य-शैली की समस्त विशेषताएँ उनकी रचना में समाविष्ट हो गई हैं। भावपक्ष के चित्रण में उन्होंने उत्कृष्ट कवित्व शक्ति का परिचय नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिया और उनकी शैली कृत्रिम अलंकार-विन्यास के कारण बोझिल हो गई है। वासवदत्ता के विरह-वर्णन में कवि सानुप्रासिक छटा को ही अधिक महत्व देता है—

"सुकान्ते कान्तिमति ! मन्दंमन्दमपनय वाष्पबिन्दून् । यूथिकालङ्कृते यूथिके ! संचारय नलिनीदलतालवृन्तेनार्द्रवातान् । एहि भगवतिनिद्रे ! अनुगृहाण माम् । धिक्, इन्द्रियैरपरैं, किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यङ्गानि विधिना । भगवान् कुसुमायुध-तवायमञ्जलिः, अनुवशोभव भाववति मादृशेजने । मलयानिलसुरतमहोत्सवदीक्षागुरो वह यथेष्टम्, अपगता मम प्राणाः, इति बहुविधं भाषमाणा वासवदत्ता सखीजनेन समं संमुमूर्च्छ ।" पृ० १४३-१४४ वासवदत्ता

सुन्दरी कान्तिमती ! धीरे-धीरे आँसू पोंछ दो, जूही के पुष्पों से अलंकृत यूथिके ! कमल पत्र के पंखे से शीतल हवा करो। भगवति निद्रे ! आओ, मुझ पर कृपा करो। अन्य (नेत्रातिरिक्त) इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है, ब्रह्मा ने सब इन्द्रियाँ नेत्र-स्वरूप क्यों न बनाईं। (अतः) उसे धिक्कार है। भगवान् कुसुमायुध ! यह हाथ जोड़ती हूँ, इन अनुरक्त जन पर कृपा करो। सुरतरूपी महोत्सव के प्रवर्त्तक मलयानिल । अब तुम इच्छानुसार चलो, मेरे प्राण तो निकल ही गए, इस तरह अनेक प्रकार से कहती हुई वह सखियों के साथ मूर्च्छित हो गयी।"

पाण्डित्य-प्रदर्शन के मोह में सुबन्धु रसों का सम्यक् परिपाक नहीं करा सके। उन्होंने अवसर का बिना विचार किये ही श्लेष, यमक, विरोधाभास, परिसंख्या तथा मालादीपक अलंकारों की सेना तैयार कर दी है। अवश्य ही, उन्होंने छोटे-छोटे वाक्यों की रचना कर तथा श्लेष-मोह का त्याग कर रोचक शैली में जहाँ इस काव्य का प्रणयन किया है, वहाँ सहृदयों के मनोरंजन का पर्याप्त साधन प्रस्तुत हो गया है, पर ऐसे स्थल क्वचित् कदाचित् ही दिखाई पड़ते हैं। किन्तु अनेक स्थलों पर उन्होंने स्वाभाविकता का भी निर्वाह किया है तथा अपनी कृत्रिम शैली की योजना में पूर्ण काम कहे जा सकते हैं।

दण्डी

सुबन्धु ने जिस अलंकृत शैली का प्रवर्त्तन किया था उसका चरम परिपाक बाणभट्ट की रचना में हुआ। दण्डी की रचना में सुबन्धु की अलंकृत और कृत्रिम शैली के अतिरिक्त पंचतन्त्र की स्वाभाविक शैली का समन्वय परिलक्षित होता है। उन्होंने जीवन के कटु और यथार्थ अनुभव को यथार्थवादी शैली का रूप प्रदान किया है। महाकवि दण्डी संस्कृत के सुप्रसिद्ध गद्यकार हैं; जिन्होंने परम्परानुसार तीन प्रबन्धों का प्रणयन किया है। इनमें एक 'दशकुमारचरित' है और दूसरा 'काव्यादर्श' और तीसरे के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। पिशेल ने बताया हैं कि तीसरी कृति 'मृच्छकटिक' ही है जो भ्रमवश शूद्रक की रचना के नाम से प्रसिद्ध है। इस मत की पुष्टि उन्होंने 'मृच्छकटिक' एवं 'दशकुमार-चरित' में वर्णित सामाजिक सम्बन्धों के सादृश्य के कारण की है। पर, इतने भर से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दण्डी 'मृच्छकटिक' के रचयिता सिद्ध नहीं होते। कुछ विद्वानों ने 'छन्दोविचिति' को दण्डी की तृतीय कृति माना है, क्योंकि इसका संकेत 'काव्यादर्श' में ही प्राप्त होता है। पर, डॉ० कीथ इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार 'छन्दोविचिति' तथा 'काल-परिच्छेद' दण्डी की स्वतन्त्र रचना न होकर 'काव्यादर्श' के दो परिच्छेद थे। दण्डी की तीसरी रचना 'अवन्तिसुन्दरी कथा' को कहा जाता है, जो अपूर्ण रूप में प्रकाशित है।

दण्डी के काल-निर्धारण में भी मतैक्य नहीं दिखाई पड़ता है। उनको बाण से बीस-पचीस पर्व पूर्व माना गया है। साम्प्रतिक विद्वानों के मतानुसार दण्डी का समय सप्तम शती का उत्तरार्ध है। वे बाण के पूर्ववर्त्ती थे। उनका गद्य बाण की अपेक्षा कम अलंकृत एवं श्लेष वक्रोक्ति अलंकारों से बोझिल न होकर प्रसाद गुण-युक्त है। यदि बाण दण्डी के परिवर्त्ती होते तो उनकी शैली भी निश्चित रूप से अलंकृत होती। दूसरी बात यह है कि 'दशकुमारचरित' में जिस समाज का चित्रण किया गया है, वह हर्षवर्द्धन के पूर्व भारत से सम्बद्ध है। इस दृष्टि से उनका समय ६०० ई० के आस-पास निश्चित होती है।

रचना-कौशल—'दशकुमारचरित' में दसकुमारों की रोचक कथा वर्णित है। इस समय प्राप्त होनेवाले 'दशकुमारचरित' में दो पीठिकाएँ हैं—पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका पूर्वपीठिका में पाँच उच्छ्वास हैं और आठ उच्छ्वासों में पुनः कथा का वर्णन है। पूर्व-पीठिका के पाँच उच्छ्वासों में दो कुमारों की कहानी है तथा उत्तरपीठिका में किसी की कहानी न होकर ग्रन्थ का उपसंहार मात्र है। इसमें दसकुमारों का चरित वर्णित है, किन्तु सम्प्रति यह ग्रन्थ जिस रूप में उपलब्ध है वह दण्डी की मूलरचना न होकर उसका परिवर्द्धित रूप है। पुस्तक की पूर्वपीठिका तथा उत्तर-पीठिका के बीच मूलग्रन्थ है जिसके आठ उच्छ्वासों में आठ कुमारों का चरित वर्णित है। मूल ग्रन्थ में दण्डी ने राजा राज-वाहन एवं उनके साथ मित्रों की कथा का वर्णन किया है। प्रथम उच्छ्वास में राजा राजवाहन की कथा वर्णित है। उसके सात साथी आकर उससे मिलते हैं और वह उनके अनुभवों की कथा कहने को कहता है। इसमें पंचतन्त्र की भाँति एक कथा में दूसरी कथा को जोड़नेवाली परिपाटी अपनाई गई है और उसे अन्ततः मूल कथा के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। इन सभी कहानियों के द्वारा दण्डी ने यह विचार व्यक्त किया है कि चातुर्य के द्वारा ही व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है। इन कहानियों का उद्देश्य 'पंचतन्त्र' आदि की तरह कथा के माध्यम से नीतिशास्त्र की शिक्षा देना न होकर दण्डी का एक मात्र लक्ष्य है सहृदयों का अनुरंजन करना, और इस उद्देश्य में वे पूर्णतया सफल रहे हैं।

पूर्वपीठिका के सम्बन्ध में विद्वानों का कहना है कि यह दण्डी की रचना न होकर परवर्त्ती जोड़ है तथा इसका मंगलाचरण 'ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः' भी दण्डी कृत नहीं है। पूर्वपीठिका के इस रूप को ११ वीं शताब्दी से प्राचीन माना जाता है क्योंकि यही श्लोक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection

भोज रचित 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भी प्राप्त होता है। इसकी शैली कृत्रिम है और उस पर बाणोत्तर काल की ह्रासोन्मुखी काव्य शैली का प्रभाव है। इसकी शैली में शाब्दी एवं आर्थी क्रीड़ा का संघात दिखाई पड़ता है। दण्डी रचित मूल 'दशकुमार-चरित' में राजवाहन एवं उसके सात साथियों की कथा है। पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका के दृष्टिकोण में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। 'दशकुमारचरित' का दृष्टिकोण यथार्थवादी है; किन्तु पूर्वपीठिका में आदर्शवादी दृष्टि अपनाई गई है। पूर्वपीठिका के देवता यज्ञादि का उपयोग करते हैं तथा ब्राह्मण पृथ्वी के देवता कहे गए हैं। इसके सभी पात्र कर्त्तव्य कर्म पर विश्वास न कर अपने को दैवाधीन मानते हैं। इसमें अनेक अतिमानवीय घटनाओं एवं शापादि के कारण होने वाले भयंकर परिवर्त्तनों का वर्णन है। किन्तु दण्डी रचित कथाभाग में चारित्रिक विकास पर बल दिया गया है। इस प्रकार की भिन्नताओं के कारण 'दशकुमारचरित' का पूर्वपीठिका वाला अंश दण्डी कृत नहीं माना जाता।

दण्डी को भाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने आख्यान का सरल एवं सुबोध ढंग से वर्णन करते हुए भाषागत दोष पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया है। पात्रों के कथनों एवं भाषणों में उन्होंने भाषा-सम्बन्धी जटिलता एवं दुरूहता के विस्तार के दोष से अपने को दूर रखा है। किसी विषय का वर्णन करते समय वे मुख्यतः वैदर्भी रीति को अपना कर पद-लालित्य में सबों को पीछे छोड़ देते हैं। वर्णनों में उनकी प्रतिभा प्रदर्शित होती है और वे विषयानुसार भाषा को परिवर्त्तित कर देते हैं। अभिव्यक्ति की यथार्थता एवं अर्थ की स्पष्टता पर भी उनका ध्यान गया है और कर्णकटु ध्वनियों एवं शब्दाडम्बर से भी अपने को बचाते हैं। उन्होंने प्रकृति का भी मनोरम चित्र अंकित किया है और सूर्योदय तथा सूर्यास्त का बड़ा ही रमणीय चित्र चित्रित किया है। अभिव्यंजना शैली के निर्वाह में संतुलन उपस्थित कर दण्डी ने संस्कृत गद्य-काव्य में नवीन पद्धति प्रारम्भ की है। शाब्दी-क्रीड़ा अथवा आर्थी क्रीड़ा की ओर कभी-कभी उनका मन अवश्य जाता है, पर इससे अर्थ प्रतीति में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं होता।

चरित्र-चित्रण की विशिष्टता दण्डी की निजी विशेषता है। उन्होंने अपनी कृति में हास्य एवं व्यंग्य का पुट देकर उसे और भी अधिक आकर्षक बनाया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में दण्डी ने राजकुमारों के विचित्र अनुभव का बड़ा ही हास्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। कुल मिलाकर दण्डी विषय-चयन, अभिव्यंजना-कौशल तथा शैलीगत दोष की अति के दोष से रहित हैं। संयम तथा अनुपात का उन्होंने सर्वत्र ध्यान रखा है और असंयत समासान्तपदावली, निरर्थक वाक्याडम्बर, जटिलश्लेष योजना तथा दुरारूढ़ कल्पना से अपने को मुक्त रखा है। पर, दण्डी की शैली को अनलंकृत भी नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि उन्होंने संक्षिप्त, सूक्ष्म तथा संयम-पूर्ण वर्णन-शैली के द्वारा अपनी रचना में प्रभावोत्पादकता को अक्षुण्ण रखा है। द्वितीय उच्छ्वास में राजकुमारी का सौन्दर्य-वर्णन उनकी कला का ... द्योतक है "रक्ततलांगुली यवमत्स्यकमल-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कलशाद्यनेकपुण्डलेखाञ्छितौ करौ, समगुल्फसंधी मांसलावशिरालौ चांघ्री, जंघे चानुपूर्वं-वृत्ते .... सक्तद्विभक्तचतुरस्रः ककुन्दरविभागशोभो रथांगाकारसंस्थिश्च नितम्बभागः-तनुतरमीषन्निम्नं गंभीरं नाभिमण्डलम्, वलिचयेण चालंकृतमुदरम्, उरोभागव्यापिना-वुन्मग्नचूचुकौ विशालरंभशोभिनौ पयोधरौ, धनधान्यपुत्रभूयस्त्वचिह्नलेखालाञ्छिततले स्निग्धोदग्रकोमलनखमणी, ऋृज्वनुपूर्ववृत्तताम्रांगुली संनतांसदेशे सौकुमार्यवत्यौनिमग्नपर्वसन्धी च बाहुलते, ... इन्द्रनीलशिलाकाररम्यालकपंक्तिद्विगुणितकुण्डलितम्लाननालीकनाल-ललितलम्बश्रवणपाशयुगलमाननकमलम्, अनतिभंगुरो बहुलः पर्यन्तेप्यकपिलरूचिरायामावानेकैकनिसर्गसमस्निग्धनीलो गन्धग्राही च मूर्धजकलापः।' "इसके करतल लाल हैं और उनमें यव, मत्स्य, कमल, कलश, आदि अनेक समृद्धि सौभाग्य-सूचक रेखाएँ हैं। इसके दोनों पैर मांस से भरे हुए हैं, उनकी नसें नहीं दिखाई देती और टॅखने के जोड़ एक-से भरे हुए हैं। इसकी पिंडलियाँ एक-सी सुडौल हैं।......... इसका कटिपश्चाद्भाग चारों ओर अच्छी तरह गठा है, उनके बीच में ककुंदर (नितम्बस्थित गड्ढा) है, तथा वह नितम्बभाग रथ के चक्र के समान विशाल है। इसका नाभिमण्डल छोटा, कुछ झुका हुआ और गहरा है, तथा उदर त्रिवलि से विभूषित है। इसकी दोनों बाहें कोमल हैं। उनकी अंगुलियां लाल हैं, कंधे झुके हैं, नाखून कोमल तथा चिकने हैं और जोड़ भरे हुए हैं, इनके तल, धन, धान्य, पुत्र आदि की समृद्धि की सूचना देनेवाली सामुद्रिक रेखाओं से अलंकृत हैं।......इसका मुखरूपी कमल नीलम के समान सुन्दर घनी काली अलकपङ्क्ति से युक्त है, तथा लम्बे-लम्बे कानों में कमलनाल को दुहरा करके कुण्डल की तरह खोस रखा है और उससे उसके दोनो कान सुन्दर दिखाई दे रहे हैं। उसका सुगंधित केश-कलाप अधिक घुंघराला नहीं है, वह सघन है और किनारों पर भी भूरा न होकर स्वाभाविक स्निग्ध नीलिमा से युक्त है।" दण्डी राजमार्ग, राजप्रासाद, श्मशान, निर्जन महारथी के वर्णन में भी अपनी दक्षता प्रदर्शित करते हैं। वे सशक्त स्फीत संस्कृत शैली के अधिराज हैं।*

बाणभट्ट

सुबन्धु की कृत्रिमगद्य शैली का विकसित, प्रौढ़ एवं मसृण रूप बाण की शैली की निजी विशिष्टता है, जिसमें महाकवि कालिदास का भाव तारल्य एवं माघ तथा भवभूति की सानुप्रासिक समासान्त-पदावली अनुस्यूत होकर एकरूप हो गई है। महाकवि बाणभट्ट संस्कृत के श्रेष्ठ कथाकार एवं संस्कृत गद्य के सार्वभौम सम्राट् हैं। संस्कृत के सभी साहित्यकारों में एक मात्र बाण ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनके जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त रूप से प्रामाणिक सामाग्री उपलब्ध होती है। उन्होंने 'हर्षचरित' की प्रस्तावना एवं

* षष्ठ उच्छ्वास, पृ० २२१-२२३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'कादम्बरी' के प्रारम्भ में अपना परिचय दिया है। उनके पुर्वज सोननद के निकटस्थ 'प्रीतिकूट' नामक नगर के निवासी थे। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह स्थान विहार राज्य के भोजपुर जिले में 'पियरो' नामक ग्राम है तो कुछ विद्वान् औरंगाबाद जिले के 'देव' नामक स्थान के निकट 'पिट्रो' नामक ग्राम को प्रीतिकूट मानते हैं। बाण का कुल विद्वता एवं पाण्डित्य के लिए विख्यात था। वे वात्स्यायनगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके प्राचीन पूर्वज का नाम कुवेर था, जो प्रसिद्ध कर्मकाण्डी एवं वेद के विद्वान् थे। उनके यहाँ छात्र यजुर्वेद और सामवेद का पाठ किया करते थे। कुवेर के चार पुत्र थे—अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत। पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति था और अर्थपति के ग्यारह पुत्र थे, जिनमें चित्रभानु के पुत्र बाणभट्ट थे। उनकी माता का नाम राजदेवी था। विद्वता के प्रभाव से उन्हें महाराज हर्षवर्धन की सभा में स्थान मिला। कुछ दिनों तक वहाँ रह कर वे अपनी जन्म-भूमि में आये और उन्होंने लोगों के आग्रह पर 'हर्षचरित' की रचना कर महाराज हर्षवर्धन की जीवन-गाथा सुनाई। 'हर्षचरित' की रचना करने के पश्चात् उन्होंने अपने महान् ग्रन्थ कादम्बरी का प्रणयन किया, किन्तु उनके जीवन-काल में वह ग्रन्थरत्न पूर्ण न हो सका। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र पुलिन्दभट्ट ने 'कादम्बरी' के उत्तर भाग को पूर्ण किया। बाण की तीसरी रचना 'चण्डीशतक' है जिसमें कवि ने स्रग्धरा छन्द में भगवती दुर्गा की स्तुति एक सौ श्लोकों में की है। बाणभट्ट का समय महाराजहर्षवर्धन का शासन-काल ६०७ से ६४८ ई० तक है।

कृतियाँ—'हर्षचरित' में कवि ने आठ उच्छ्वासों में तत्कालीन भारतसम्राट् हर्ष के जीवन का वर्णन किया है। इस कृति को स्वयं लेखक ने आख्यायिका की संज्ञा दी है। इसमें कवि ने हर्ष की सम्पूर्ण जीवन-गाथा का वर्णन न कर उनके जीवन की आरम्भिक घटनाओं का ही उल्लेख किया है। आख्यायिका में ऐतिहासिक आधार होता है अर्थात् कथानक ऐतिहासिक होता है और उसका वक्ता स्वयं नायक हुआ करता है। आख्यायिका उच्छ्वासों में विभक्त होती है और उसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द प्रयुक्त होते हैं। 'कादम्बरी' की रचना कथा की शैलौ में हुई है। इसके दो भाग हैं—पूर्वभाग एवं उत्तरभाग। इसके प्रारम्भ में बीस श्लोकों की प्रस्तावना है जिसमें देवताओं की स्तुति, गुरुवन्दना, खलनिन्दा तथा कविवंश वर्णन किया गया है। इसके बाद कथा का प्रारम्भ होता है। कवि ने विदिशा के राजा शूद्रक की राजसभा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। एक चाण्डाल कन्या वैशम्पायन नामक तोते को लेकर सभा में उपस्थित होती है। वह तोता पण्डित तथा मनुष्य की भाँति बोलने वाला है। वह राजा की प्रशंसा करते हुए एक आर्या का पाठ करता है। राजा उसकी प्रतिभा पर मुग्ध होकर उससे अपनी कथा सुनाने को कहता है। तोता विस्तार पूर्वक विन्ध्याटवी उसके आश्रम एवं पद्मसर का वर्णन कर शाल्मली तरु के कोटर में अपने निवास-स्थान का परिचय देता है। एक दिन एक शवर सेनापति अपनी सेना के साथ उसी मार्ग से निकलता है और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एक वृद्ध शबर उस कोटर में स्थित उसके माता-पिता को मार डालता है, पर नीचे गिर जाने के कारण वैशम्पायन बच जाता है। दैवयोग से हारीत नामक एक ऋषि आकर उसे आश्रम में ले जाते हैं और उसे अपने पिता जाबालि के आश्रम में रखते हैं। जाबालि पवित्र जल से उसे प्रक्षालित कर बताते हैं कि यह अपनी धृष्टता का फल पा रहा है। पुनः वह ऋषियों के पूछने पर उसके पूर्वजीवन का वृत्तान्त सुनाते हैं।

'कादम्बरी की कथा कल्पित और निजंधरी है। इसके घटनाचक्र में एक व्यक्ति के तीन जीवन का वृत्तान्त है। मगध का राजा शूद्रक प्रथम जन्म में चन्द्रमा, द्वितीय जन्म में चन्द्रापीड़ एवं तृतीय जन्म में शूद्रक था। इसी प्रकार वैशम्पायन पहले श्वेतकेतु का पुत्र पुण्डरीक, द्वितीय जन्म में वैशम्पायन तथा तृतीय जन्म में तोता हुआ। इसकी कथा का स्रोत 'बृहत्कथा' के राजा सुमनस की कहानी में दिखाई पड़ता है। क्योंकि इसमें भी 'बृहत्कथा' की भाँति शाप एवं पुनर्जन्म की कथानक रूढ़ियाँ प्रयुक्त हुई हैं। इसमें एक कथा के भीतर कथा की योजना करने में 'बृहत्कथा' की ही रूढ़ि ग्रहण की गई है। लोक-कथा की अन्य कहानियों की भाँति इसमें प्रथम पुरुष की शैली अपनायी गई है तथा जाबालि की कथा में अन्य पुरुष की शैली प्रयुक्त हुई है। इसमें कवि ने लोक-कथा की अनेक रूढ़ियों का प्रयोग किया है; जैसे मनुष्य की भाँति बोलने वाला सर्वशास्त्रविद् शुक, त्रिकालदर्शी महात्मा जाबालि, किन्नर, गन्धर्व एवं अप्सराएँ, शाप से आकृति-परिवर्त्तन, पुनर्जन्म की मान्यता तथा पूर्वजन्म के स्मरण की कथा। इसके पात्र दण्डी आदि की तरह जगत् के यथार्थवादी धरातल के पात्र न होकर चन्द्रलोक, गन्धर्व-लोक एवं मर्त्यलोक में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करने वाले आदर्शवादी पात्र हैं। कवि ने पात्रों के चारित्रिक पार्थक्य की अपेक्षा कथा कहने की शैली के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित की है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें चारित्रिक सूक्ष्मताओं कविश्लेषण कम है। 'कादम्बरी' का महत्त्व साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से है। कवि ने तत्कालीन भारतीय जीवन एवं सांस्कृतिक परम्परा को दृष्टि में रख कर उस युग के लोकमानस की अभिव्यक्ति की है। बाण ने कादम्बरी के अद्भुत कथाशिल्प को राज-प्रासाद की भाँति सजाया है।

रचना-कौशल—बाण अत्यन्त प्रतिभाशाली साहित्यकार है। उन्होंने कथासाहित्य में युग-प्रवर्त्तन किया है। उनकी वर्णन-शैली अत्यन्त निपुण है, और वे कृत्रिम अलंकारिक शैली के पक्षधर हैं। 'हर्षचरित' की प्रस्तावना में उनकी शैली-सम्बन्धी मान्यता का पता चलता है। उनके पूर्व वक्रोक्ति रहित स्वाभावोक्तिपूर्ण रचनाएँ प्रचलित थीं; जिन्हें उन्होंने हेय दृष्टि से देखा है और उन्हें 'असंख्यान' की संज्ञा दी है। उनके अनुसार आदर्श गद्य-शैली में "नूतन एवं चमत्कारपूर्ण अर्थ, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, सरलश्लेष, स्पष्ट रूप से प्रतीत होनेवाला रस तथा अक्षरों की दृढ़बन्धता" आवश्यक है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नवाऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥ ७

बाण ने अपनी कथा काव्य में इन तत्त्वों का पूर्ण रूप से पालन किया है। उनमें चित्रग्राहिणी बुद्धि एवं नवीन उद्‌भावना की अपूर्व क्षमता थी। अपनी सूक्ष्म दर्शिका शक्ति द्वारा प्रस्तुत किये गए चित्र के प्रत्येक दृश्य का सांगोपांग चित्रण करने में बाण अपनी सानी नहीं रखते। धनपाल ने उन्हें अमृत उत्पन्न करनेवाला गम्भीर समुद्र कहा है। "बाण वर्णनात्मक शैली के धनी हैं।..........बाण के वर्णन ही उनके काव्य की निधि हैं। इन वर्णनों ने उकताना ठीक नहीं। इनके भीतर पैठकर युक्ति से इनका रस लेना चाहिए। जब एक बार पाठक इन वर्णनों की अणुवीक्षण की युक्ति से देखता है तो उनमें उसे रुचि उत्पन्न हो जाती है, एवं बाण की अक्षराडम्बरपूर्ण शैली के भीतर छिपे हुए रसवाही सोते तक पहुंच जाता है। उस समय यह इच्छा होती है कि कवि ने अपने वर्णन के द्वारा चित्रपट पर जो चित्र लिखा है उसकी प्रत्येक रेखा सार्थक है और चित्र का समग्ररूप प्रस्तुत करने में सहायक है। जिस प्रकार रंगवल्ली की विभिन्न आकृतियों से भूमि सजाई जाती है उसी प्रकार बाण ने अपने काव्य की भूमिका मण्डन करने के लिए अनेक वर्णनों का विधान किया है। महाप्रतिभाशाली इस लेखक ने अपनी विशेष प्रकार की श्लेषमयी वर्णनात्मक शैली के द्वारा जो हमें कुछ दिया है वह पर्याप्त है और उसके लिए हमें उनका कृतज्ञ रहना चाहिए।"*

बाण की गद्यशैली तीन प्रकार की है—दीर्घसमासवती, अल्पसमासवती एवं समास-रहित। इन्हें क्रमशः उत्कलिका, चूर्णक एवं आविद्ध कहा गया है। बड़े-बड़े वर्णनों में कवि ने उत्कलिका का प्रयोग किया है। बाण किसी विषय का वर्णन करते समय विभिन्न अलंकारों का सहारा लेकर उसे सौन्दर्यपूर्ण बनाते हैं। उन्होंने विशेष रूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोध एवं परिसंख्या अलंकार का प्रयोग किया है। परिसंख्या अलंकार तो उनका अपना अलंकार है। पाश्चात्य पण्डित वेबर ने बाण की शैली की आलोचना करते हुए इसे उस सघन भारतीय अरण्याणी की तरह कहा था जिसमें पद-पद पर अप्रचलित क्लिष्टशब्द, श्लिष्टपदयोजना एवं समासान्त पदों के लम्बे-लम्बे वाक्य विचित्र एवं भयंकर रूप धारण कर भय उत्पन्न कर देते हैं। पर सर्वत्र ऐसी बात नहीं है। बाण ने कहीं भी औचित्य का त्याग नहीं किया है। विषय एवं स्थिति के अनुसार उन्होंने छोटे-छोटे वाक्यों एवं संवादों का भी प्रयोग किया है।

उनके गद्य में काव्य की गति विद्यमान है तथा प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण की भी शक्ति है। हिमालय, अच्छोद सरोवर, महाश्वेता का निवास-वर्णन एवं कई स्थानों पर सन्ध्या वर्णन में (हर्षचरित एवं कादम्बरी में) उनकी चित्रण कला एवं प्रकृति प्रेम के

---

* डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ॰ २

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दर्शन होते हैं। बाण अपनी वर्णन चातुरी के लिए प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहे हैं और आचार्यों ने उनके इस गुण पर मुग्ध होकर—बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्—तक कह दिया है। उनके आलोचकों ने शैली की क्लिष्टता, आलंकारिक प्रेम दीर्घवाक्यता, समूहीकृत विशेषणों के समन्वित वाक्यों, श्लिष्ट प्रयोग एवं असाधारण तथा अप्रचलित पदावली के प्रयोग की निन्दा की है पर तत्कालीन साहित्य-रूप एवं लेखक की मान्यता को देखते हुए इन दोषों पर विचार करना बाण के साथ अन्याय करना है। बाण अपनी रसप्रवणता, कलात्मक सौन्दर्य, वक्रोक्तिमय अभिव्यंजनाप्रणाली तथा सानुप्रास समासान्त पदावली के प्रयोग के लिए अमर रहेंगे। बाण का उदात्त कला पक्ष रस की स्रोतस्विनी प्रवाहित करने में पटु है। 'कादम्बरी' में कवि ने नागरिक तथा ग्रामीण दृश्यावली का विस्तृत समावेश किया है तथा ऋतुओं और सूर्यास्त के वर्णन में परम्परागत वर्णन की शैली का आश्रय ग्रहण कर उन्हें स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया है जिसमें आलंकारिता के कारण काव्यात्मक संवेदनशीलता क्षीण नहीं होने पायी है।

"क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोवनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी हंसपतिदुकूलपरिधाना मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसिपतिते दिवस करे वेगोत्थितमम्भः सीकर-मिव तारागणमम्बरमधारयत्। अचिरच्चिसिद्धकन्यकाविक्षससन्ध्यार्चनकुसुमशबलमिव तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वविप्रकीर्णैः प्रणामांजलिसलिलैः क्षाल्यमाना इव गलदखिलः सन्ध्यारागः।"

कादम्बरी, पृ० १०५।

"तपोवन वासियों ने देखा कि दिनभर कहीं घूम-घामकर लालतारों वाली रक्तिम सन्ध्या, लालपुतलियों वाली कपिला तपोवनधेनु की तरह लौट आई है। कमलिनी अभी हाल में विदेश गए हुए सूर्य (नायक) के वियोग से दुखी होकर कमल की बन्द कली के कमण्डलु को धारण करती हुई, हंसों के धौत वस्त्र पहने, मृणाल के श्वेत यज्ञोपवित से सुशोभित होकर, भौरों के रुद्राक्ष का वलय पहन कर मानो सूर्य के पुनर्मिलन के लिए तपस्या कर रही थी। सूर्य के तेजी से पश्चिम समुद्र में गिरने से उछली हुई पानी की बूंदों की तरह आकाश ने तारागण को धारण किया। थोड़ी सी देर में सारे आकाश के तारे छिटक पड़े, मानो सिद्ध कन्याओं के द्वारा सन्ध्या-पूजा के लिए प्रस्तुत पुष्प बिखेर दिए गए हों और क्षण भर में ही सारी सायंकालीन लालिमा इसी तरह लुप्त हो गई, मानों सूर्यास्त के समय दिये हुए मुनियों के अर्ध्यदान के जल से उसे धो दिया गया हो।"*

---

* संस्कृत कवि दर्शन, पृ० ५११-५१२ (प्रथमसंस्करण)।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्रिविक्रमभट्ट

संस्कृत चम्पू काव्य के आद्य प्रणेता के रूप में त्रिविक्रमभट्ट का नाम उल्लेखनीय महत्त्व का है। उनका 'नलचम्पू' प्राचीनतम ज्ञात चम्पू है। चम्पू काव्य का वह रूप है, जिसमें वर्ण्य-विषय का प्रतिपादन गद्य और पद्य दोनों के मिश्रण से किया जाता है। संस्कृत साहित्य में बाणभट्ट ने गद्य-काव्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया था। उनकी शैली इतनी प्रौढ़ थी कि परवर्ती लेखकों की प्रतिभा उनके समक्ष निस्तेज पड़ गयी और 'कादम्बरी' में भाषा का वह उदात्त और उन्नत रूप दिखाई पड़ा जिससे पश्चाद्वर्त्ती रचनाकारों की भाषा एवं शैली-विषयक प्रौढ़ता की सारी संभावनाएँ क्षीण पड़ गयीं। बाण की वर्णन-पटुता के दर्शन विरल हो गए, अतः लेखकों ने चम्पू काव्य के रूप में गद्य तथा पद्य की मिश्रित नूतन काव्य-शैली का समारम्भ किया। दण्डी ने गद्य पद्यमयी कथा को चम्पू की संज्ञा देकर इसके शास्त्रीय स्वरूप की प्रतिष्ठा की, फलतः संस्कृत में इस प्रकार के साहित्य का विकास स्वतन्त्र शैली के रूप में हुआ।

जीवन वृत्त—त्रिविक्रम भट्ट ने अपना परिचय 'नलचम्पू' में दिया है। उनके नाम पर दो चम्पू काव्य प्रसिद्ध हैं—नलचम्पू और मदालसाचम्पू। 'नलचम्पू' को 'दमयन्तीचम्पू' भी कहते हैं। 'मदालसाचम्पू' में मदालसा नामक नायिका की प्रणयगाथा है। त्रिविक्रमभट्ट शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह का नाम श्रीधर तथा पिता का नाम नेमादित्य या देवादित्य था। उनका समय दशम शतक का प्रथमार्ध है। वे गुजराज नरेश इन्द्रराज तृतीय के सभापण्डित थे।

नलचम्पू—इसमें निषधनरेश नल तथा उनकी पत्नी दमयन्ती की प्रणय-गाथा का वर्णन है। यह ग्रन्थ उच्छ्वासों में विभक्त हैं। जिनकी संख्या सात है। प्रथम उच्छ्वास में राजा नल एवं उनके मन्त्री श्रुतिशील का विवरण प्रस्तुत किया गया है। कवि दक्षिण देश से आये हुए यात्री के मुख से दमयन्ती का वर्णन कराता है। पथिक यह भी सूचना देता है कि उस युवती दमयन्ती के समक्ष एक युवक (राजा नल) की प्रशंसा किसी पथिक ने की है। उसके रूप लावण्य का वर्णन सुनकर राजा दमयन्ती की ओर आकृष्ट होता है। द्वितीय उच्छ्वास में राजा नल की हंस से भेंट होने का वर्णन है और वह राजा से दमयन्ती के जन्म की कथा कहता है। यह प्रकरण तृतीय उच्छ्वास तक चलता है। चतुर्थ उच्छ्वास में हंस राजा का सन्देश लेकर कुण्डिलपुर जाता है और दमयन्ती को कह सुनाता है। पञ्चम उच्छ्वास में हंस की बातें श्रवण कर दमयन्ती के मन में राजा के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है और राजा नल दमयन्ती के स्वयंवर में सेना के साथ प्रस्थान करता है षष्ठ उच्छ्वास में कुण्डिलपुर में नल के पधारने और उनके स्वागत का वर्णन है। सप्तम उच्छ्वास में नल का इन्द्रादि का दूतत्व करने और नल-दमयन्ती के वार्त्तालाप का वर्णन है।

 CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'नलचम्पू' में नल-दमयन्ती की सम्पूर्ण कथा वर्णित नहीं है और मध्य में ही पुस्तक समाप्त हो जाती है। इसमें नल द्वारा देवताओं का सन्देश दमयन्ती तक पहुँचाने का ही वर्णन है और ग्रन्थ बीच में ही सहसा समाप्त हो जाता है। कवि ने अपने काव्य का नाटकीय ढंग से अन्त कराकर व्यंजना द्वारा नल और दमयन्ती के भावी मिलन की सूचना दी है।

काव्य वैभव—'नलचम्पू' की गरिमा का कारण इसका मधुरतरश्लेष विन्यास है तथा इसकी भाव-सृष्टि भी सहृदयों के लिए आकर्षक रही है। राजाश्रय में रहने के कारण इसका रचयिता शास्त्रज्ञान से संवलित होकर भी लोक विद्या में निपुण था। 'नलचम्पू' की श्लेषबहुल शब्दार्थ प्रौढ़ि में उसकी लोक विद्या सर्व सुलभ नहीं रह सकी है। त्रिविक्रम भट्ट के श्लेष सरस, प्रसन्न, रमणीय तथा चमत्कार जनक हैं। उनके पूर्व सुबन्धु ने भी वासवदत्ता में दूरारूढ़ श्लेष की योजना की थी। त्रिविक्रमभट्ट सभंगश्लेषों की सरल योजना में अपनी पटुता प्रदर्शित करते हैं। उनकी रचना में यथा संभव अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है और पद-विन्यास इतना आकर्षक है और रचना इतनी मधुर है कि अध्येता बार-बार उसका रसास्वादन करते हुए तृप्त नहीं होता। यों तो उनकी प्रकृति रसानुकूल है, पर तत्कालीन युगबोध की प्रवृत्ति ने उन्हें चमत्कारवादी कवि बना दिया। प्रबन्ध पटुता के अतिरिक्त सहज वर्णन विस्तार प्रगाढ़ पाण्डित्य, भाषा का प्रकृत प्रवाह और शब्द भण्डार की समृद्धि का सम्यक् संयोग त्रिविक्रम भट्ट के कलात्मक प्रौढ़ि के पद चिह्न हैं। नल के आतिथ्य के समस्त उपादानों को कवि ने दमयन्ती के शरीर में प्रदर्शित कर अपने काव्य-निर्माण की प्रतिभा को प्रकट किया है। नल के सहसा प्रकट होने पर पियङ्गुलता कहती है कि स्वामिन् मेरी सखी ने कंकणध्वनि से ही आप से स्वागत प्रश्न किया है तथा लज्जा के कारण अपने मुख-कमल को नीचे कर आप के चरणों में नैनों के कमलों को चढ़ा दिया है। आपको ऐसे हृदय में बैठाया है जिसके द्वार पर स्तनद्वय मंगल कलश के रूप में विराजमान हैं। अब आप ऐसे अतिथि के लिए उसने क्या नहीं उचित सत्कार किया।

किञ्चित् कम्पितपाणिकङ्कणरवैः पृष्टं ननु स्वागतम्।
व्रीडानम्रमुखाब्जया चरणयोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले।
द्वारस्थस्तनयुग्ममङ्गल—घटे दत्तः प्रवेशो यदि
स्वामिन् किन्न तवातिथेः समुचितं सख्याऽनयाऽनुष्ठितम्॥

—नलचम्पू, ७।३७

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

षष्ठ अध्याय

नाटककार

(भास, कालिदास, शूद्रक, हर्षवर्द्धन, भवभूति, भट्टनारायण, विशाखदत्त)

भास

संस्कृत नाटक की अधुना उपलब्ध सामग्री के आधार पर भास को आद्य नाटककार का पद प्रदान किया है। उन्होंने तेरह नाटकों की रचना की है जो (सभी) प्रकाशित हो चुके हैं। दुर्भाग्यवश भास के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। उनके नाटक बहुत दिनों तक अज्ञानान्धकार में पड़े हुए थे और उनका स्वरूप लोगों को अज्ञात था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्व तो भास के सम्बन्ध में कतिपय उक्तियाँ ही प्रचलित थीं—'भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।' भास के नाटकों का उद्धार म० म० टी० गणपति शास्त्री ने १९०९ ई० में किया। उन्हें पद्मनाभ-पुरम् के निकट 'मनल्लिकारमठम्' में स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'पञ्चरात्र' 'चारुदत्त', 'दूत-घटोत्कच', 'मध्यमव्यायोग', 'कर्णभार' तथा 'ऊरुभङ्ग' की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं। उन्हें 'दूतवाक्य' की एक खण्डित हस्तलिखित प्रति भी तालपत्र पर प्राप्त हुई थी। सभी हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। आगे चलकर गणपति शास्त्री को त्रिवेन्द्रम के राजप्रासाद पुस्तकागार में 'प्रतिमा' तथा 'अभिषेक' की प्रतियाँ प्राप्त हुईं। शास्त्री जी ने भास कृत तेरह नाटकों को संपादित कर १९१२ ई० में अनन्त शयन संस्कृत ग्रन्थावली से प्रकाशित कराया। सम्प्रति सभी नाटकों का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी से हो गया है।

भास की निश्चित तिथि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। विद्वानों ने उनका समय ईस्वी पूर्व ६ठी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक स्वीकार किया है। अन्तः एवं बहिःसाक्ष्यों के आधार उनका समय ई० पूर्व चतुर्थ एवं पञ्चम शतक के मध्य निर्धारित किया गया है। अश्वघोष एवं कालिदास दोनों ही भास से प्रभावित हैं, अतः उनका दोनों का पूर्ववर्ती होना निश्चित है। कालिदास का समय ई० पूर्व प्रथम शताब्दी माना गया है। भास में अपाणिनीय प्रयोगों की बहुलता देखकर उनकी प्राचीनता सन्देह से परे सिद्ध हो जाती है। इतिवृत्त के आधार पर भासकृत तेरह नाटक चार वर्गों में विभक्त किये गए हैं—(१) रामायण नाटक—प्रतिमा, अभिषेक, (२) महाभारत नाटक—बालचरित, पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, ऊरुभंग, कर्णभार एवं दूत

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

घटोत्कच, (३) उदयन नाटक—स्वप्न वासवदत्ता, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, (४) कल्पित नाटक—अविमारक एवं दरिद्रचारुदत्त।

नाटकीय संविधान की दृष्टि से भास के नाटकों का वस्तुक्षेत्र विविध है जिससे उनकी प्रतिभा की मौलिकता सूचित होती है। इतना सब होने पर भी सभी नाटकों में समान रूप से नाट्यकौशल दिखाई नहीं पड़ता। रामायण-सम्बन्धी नाटकों का कथा-संविधान शिथिल है, किन्तु महाभारत के आधार पर निर्मित नाठक इस दोष से रहित हैं और उनमें भास की प्रतिभा का प्रौढ़त्व प्रदर्शित होता है। उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सफलता लोक-कथाओं के आधार पर निर्मित प्रेम-प्रवण नाटकों में मिली है जिनमें कवि ने उदयन के रूमानी प्रेम का आकर्षक चित्र खींचा है। इस दृष्टि से 'स्वप्नवासवदत्तम्' एवं 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' भास के सर्वोत्तम नाटक सिद्ध होते हैं और इनमें भी प्रथम का स्थान ऊपर है। विस्तृत क्षेत्र से कथानक ग्रहण करने के कारण उनके पात्रों की संख्या अधिक है और उनकी कोटियाँ भी अनेक हैं। इतने अधिक पात्रों के चरित्र का वर्णन कर उन्होंने दृष्टि विस्तार एवं विशद अनुभव का परिचय दिया है। भास ने कई नाटकों में मौलिक उद्भावना-शक्ति का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए 'प्रतिमा' नाटक में प्रतिमा वाला सम्पूर्ण प्रसंग भास की नवीन कल्पना है। 'मध्यम व्यायोग' एवं 'अविमारक' दो नाटक ऐसे हैं जिनमें ब्राह्मणीय संस्कृति एवं वैदिक धर्म का प्रभाव प्रदर्शित किया गया हैं। भास के सभी पात्र प्राणवन्त एवं इसी लोक के प्राणी हैं, उनमें कृत्रिमता नाममात्र को नहीं है। उन्होंने यथासंभव अपने पात्रों के प्रोज्ज्वल चरित्र को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है और इसके लिए उन्हें कथानक में भी परिवर्त्तन करना पड़ा है। पात्रों के संवाद नाटकीय विधान के सर्वथा अनुरूप हैं। भास ने संवादों की योजना में विशेष रूप से दक्षता दिखलाई है। उनके संवाद लघु हैं तथा उनमें वाग्विस्तार का परिहार सर्वत्र दिखाई पड़ता है। वार्त्तालापों के द्वारा ही कवि सभी दृश्यों को उपस्थित करता है और सरल शब्दावली का नियोजन कर संवादों को यथासाध्य सार्वजनीन बनाता है। रस परिपाक की दृष्टि से भी उनके नाटक उत्तम हैं। उन्होंने नवों रसों का प्रयोग कर अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। वैसे भास मुख्यतः वीर, शृङ्गार और करुण रसों के वर्णन में विशेष दक्ष हैं। उनका हास्य-वर्णन अत्यन्त उदात्त है और इसकी स्थिति प्रायः विदूषक में दिखलायी गई है। उनके सभी नाटक अभिनय-कला की दृष्टि से सफल सिद्ध होते हैं। कथानक, पात्र, भाषा-शैली, देशकाल एवं संवाद किसी के कारण उनकी अभिनेयता में बाधा नहीं पड़ती। उनके नाटक उस समय निर्मित हुए थे जब नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, फलतः उन्होंने कई ऐसे दृश्यों का विधान किया है जो शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित हैं, जैसे वध, अभिषेक आदि। पर ये दृश्य इस प्रकार रखे गए हैं कि इनके कारण नाटकीयता में किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित होती।

भास की शैली सरल एवं अलंकार विहीन अकृत्रिम है। उनमें उच्चकोटि की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कवित्व-शैली है। उनके सभी पद्य घटनाओं एवं पात्रों से सम्बद्ध हैं और ऊपर से जोड़े हुए स्वतन्त्र पद्यों की तरह नहीं लगते। अपने वर्ण्यविषयों को उन्होंने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ रखा है। किसी दृश्य का वर्णन करते समय वे उसके प्रत्येक पक्ष को अत्यधिक सूक्ष्मता के साथ प्रदर्शित करते हैं और पाठक को उसका पूर्णरूप से बिम्ब ग्रहण हो जाता है। उनका प्रकृति-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं आकर्षक है।

भास के नाटकों में कुछ त्रुटियाँ भी प्राप्त होती हैं। उनके नाटकों में कालान्विति पर ध्यान नहीं दिया गया है और घटनाओं में अधिक समय का समावेश किया गया है। 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'चारुदत्तम्' 'बालचरित' तथा 'अभिषेक' में कालान्विति का अभाव है। वे नाटकों में कांचुकीय, धात्री तथा चेटी का प्रवेश अति शीघ्रता से कराते हैं जिससे कथानक में तीव्रता नहीं आने पाती। उन्होंने नाटकों में आकाशभाषित की योजना कर चमत्कार के स्थान पर अपरूपता उपस्थित कर दी है, फलतः कथानक प्रभावशाली नहीं हो सके हैं। भास के अनेक पात्र निरर्थक हैं और रंगमंच पर उनकी कोई उपयोगिता नहीं दिखलाई पड़ती। पर, ये त्रुटियाँ कलात्मक न्यूनता का सूचक न होकर परम्परा के व्यामोह के कारण हो गई हैं। एकमात्र कालान्विति का अभाव ही कलागत त्रुटि है।

स्वप्नवासवदत्तम्—यह महाकवि भास का श्रेष्ठ नाटक है। इसमें छह अंक हैं तथा वत्सराज उदयन की कथा वर्णित है। इसका कथानक लोक कथाओं पर आश्रित है। उदयन राजा प्रद्योत के प्रासाद से वासवदत्ता का हरण कर विषय-वासना में लिप्त हो राजकीय कार्यों से विरत हो जाता है। इसी बीच उसका शत्रु आरुणि उस पर आक्रमण कर देता है, पर उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण सचेत होकर सारी समस्याओं का समाधान निकाल लेता है। यौगन्धरायण मगध नरेश की पुत्री पद्मावती से राजा का (उदयन का) विवाह करा कर उसकी शक्ति-विस्तार करना चाहता है, पर राजा वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त अनुरक्त है, अतः वह दाव-पेंच के द्वारा यह कार्य सम्पन्न करना चाहता है। वह वासवदत्ता को सारी योजना बताकर इस कार्य में उसकी सहायता चाहता है। एक दिन जब राजा मृगया के लिए जाते हैं तो यौगन्धरायण यह अफवाह फैला देता है कि वासवदत्ता और वह दोनों आग से जल मरे। जब राजा आखेट से आते हैं तो अत्यधिक संताप से पीड़ित होकर प्राण त्याग करने को उद्यत हो जाते हैं, पर अमात्यों के समझाने पर विरत होते हैं। अमात्य रुमण्यवान् राज्य का संरक्षण करने लगता है। यौगन्धरायण परिव्राजक का वेश बना कर वासवदत्ता को लेकर मगधनरेश की राजधानी में घूमता है। उसी समय पद्मावती अपनी माता के दर्शन के लिए जाती है और कंचुकी आश्रमवासियों से पूछता है कि जिसे जो वस्तु अभीष्ट हो, मांगे। यौगन्धरायण आगे आकर पूछता है कि यह मेरी भगिनी प्रोषितपतिका है, आप इसका संरक्षण करें। उसने दैवज्ञों से सुन रखा था कि पद्मावती के साथ उदयन का विवाह होगा, अतः वह वासवदत्ता को पद्मावती के साथ रखना उपयुक्त समझता है। पद्मावती के साथ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उदयन का विवाह हो जाता है। राजा को वासवदत्ता की स्मृति आ जाती है और वे उसके वियोग में बेचैन हो जाते हैं। उनके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं। उसी समय पद्मावती आ जाती है और उदयन उससे बहाना बनाते हुए कहता है कि उसकी आँखों में पुष्प-रेणु पड़ गये थे। पद्मावती शिरोवेदना के कारण चली जाती है और राजा सो जाता है। वह स्वप्न में वासवदत्ता का नाम लेकर बड़बड़ाने लगता है। उसी समय वासवदत्ता आ जाती है और राजा को पद्मावती समझ कर उसके पास सो जाती है। राजा वासवदत्ता का नाम पुकारने लगता है। वासवदत्ता वहाँ से चली जाती है, पर नींद टूटने पर उदयन उसका पीछा करता है और धक्का लगने पर द्वार के पास गिर पड़ता है। विदूषक उसे बतलाता है कि यह स्वप्न था। एक दूत महासेन के यहाँ से आकर राजा उदयन एवं वासवदत्ता का चित्र-फलक लाकर राजा को देता है। पद्मावती उसे देख कर कहती है कि ऐसी ही स्त्री एक मेरे पास भी है, जिसे ब्राह्मण ने प्रोषितपतिका कह कर मेरे पास रखा था। राजा उसे तुल्यरूपता की संभावना की बात कहता है, अतः वह कोई अन्य स्त्री होगी। इसी बीच यौगन्धरायण आ जाता है और पद्मावती से अपना न्यास (धरोहर) माँगता है। वासवदत्ता आ जाती है और सभी लोग उसे पहचान लेते हैं। यौगन्धरायण राजा के चरणों पर गिर पड़ता है और अपने अविनय के लिए क्षमा मांगता है। राजा द्वारा इस रहस्य को पूछने पर वह बतलाता है कि दैवज्ञों ने पद्मावती के साथ आपके विवाह की बात कही थी। इस समय मगध राज्य की सहायता से आप को पद्मावती और राज्य दोनों ही प्राप्त हुए। सभी लोग महासेन को यह संवाद सुनाने के लिए उज्जयिनी जाने को उद्यत होते हैं और भरतवाक्य के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है। राजा द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता को देखने के कारण इस नाटक का नाम 'स्वप्न-वासवदत्तम्' रखा गया है।

नाट्य कौशल—'स्वप्नवासवदत्तम्' में भास की कला की चरम परिणति दिखाई पड़ती है। नाटकीय संविधान, चरित्रांकन, संवाद, प्रकृति-चित्रण तथा रसोन्मेष सभी तत्त्वों का इस नाटक में पूर्ण परिपाक हुआ है। यों तो इसके सभी दृश्य आकर्षक हैं, पर स्वप्न वाला दृश्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसे देखकर दर्शक विशेष रूप से अभिभूत हो जाते है। धीर ललित नायक उदयन की कलाप्रियता जहाँ एक ओर दर्शकों का आवर्जन करती है, वहीं कूटनीतिज्ञ यौगन्धरायण का बुद्धि-कौशल उन्हें चमत्कृत कर देता है। इसमें प्रधान रस शृङ्गार है तथा गौण रूप से हास्य एवं वीर रस का वर्णन किया गया है। वासवदत्ता तथा उदयन की कथा के आधार पर इसमें विप्रलम्भ शृङ्गार की प्रधानता है। पद्मावती एवं वासवदत्ता के विनोद में शिष्ट हास्य की झलक है तथा विदूषक के वचनों में हास्य की सृष्टि की गई है।

कथानक का वैशिष्ट्य तथा रस—इसकी कथा के सरस भाग अंकों में एवं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नीरस अंश विष्कम्भक, प्रवेशक और अर्थोत्क्षेपक द्वारा प्रदर्शित किये गए हैं। कथावस्तु के गठन में नाटककार ने पूर्ण दक्षता दिखलाई है। नाटक के अन्त में वासवदत्ता का पूर्ण परिचय तथा उसके परिज्ञान के निमित्त चित्रफलक की उपस्थिति, उसकी धात्री का आना, उसकी चारित्रिक शुद्धता की साक्षी के रूप में पद्मावती की उपस्थिति तथा स्वयं यौगन्धरायण की विद्यमानता नाटकीय कथानक की पूर्णता के द्योतक हैं। इस नाटक का मूलाधार है यौगन्धरायण का अपूर्व त्याग तथा पति के अभ्युदय के लिए वासवदत्ता का कष्ट सहना। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के द्वितीय अंक में प्रवेशक की योजना की गई है जिसके द्वारा पद्मावती का आगमन सूचित होता है जो वासवदत्ता के साथ कंदुक क्रीड़ा में संलग्न है। चतुर्थ तथा पंचम अंक के प्रवेशक में पद्मावती, अवन्तिका तथा राजा के आगमन की सूचना है। छठें अंक के प्रारम्भ में मिश्र विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है जो राजा तथा विदूषक के आगमन की सूचना देने के लिए प्रयुक्त हुआ है। भास ने पात्रों के सुयोजन, चरित्रों की उदात्तता, घटनाओं की सुकरता तथा दृश्यों के साधारणीकरण के द्वारा इस नाटक को पूर्ण अभिनेय बनाया है। इसमें भारती वृत्ति तथा विप्रलम्भ शृङ्गार का प्राधान्य है। इसका नामकरण इस नाटक की एक घटना विशेष के आधार पर किया गया है। स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शन के आधारपर इसका नाम स्वप्नवासवदत्तम् दिया गया है जो कथानक के अनुरूप एवं सार्थक है। वासवदत्ता तथा राजा के सम्बन्ध के आधार पर 'इसका प्रधान रस विप्रलम्भ शृङ्गार माना जा सकता है, पर पद्मावती तथा राजा के सम्बन्ध की दृष्टि से इसमें सम्भोग शृङ्गार है। द्वितीय अंक में गेंद खेलती हुई पद्मावती के साथ वासवदत्ता के वार्त्तालाप में हास्यरस की छटा छिटकती है, पर यह हास स्मित की कोटि का ही है, उससे ऊपर नहीं उठता। चतुर्थ अंक में विदूषक की उक्तियों में हास्य की फुलझड़ियाँ फूटती हैं, पर प्रमद वन में घूमते हुए राजा की उक्तियों में विप्रलम्भ शृङ्गार की व्याप्ति हुई है। पंचम अंक में वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है और वत्सराज उदयन के शोकोद्गार में करुण रस की योजना की गई है। उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि इसमें किसी एक रस का पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है, पर अन्य रसों की अपेक्षा विप्रलम्भ शृङ्गार अधिक पुष्ट रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसमें रसों का हल्का रंग प्रयुक्त हुआ है।

चरित्र-चित्रण—पात्रों के शील-निरूपण की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है। इसमें प्रधान पात्र हैं—उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती तथा यौगन्धरायण।

(१) उदयन—इस नाटक के नायक राजा उदयन हैं। शास्त्रीय दृष्टि से वे धीर-ललित नायक हैं। वे कला-प्रेमी विलासी तथा रूपवान् हैं और वीणा-वादन की कला में दक्ष हैं। वे बहुपत्नीक होते हुए भी दाक्षिण्य गुण से युक्त हैं। एक पत्नी के रहने पर वे जानबूझकर द्वितीय विवाह नहीं करते, अपितु परिस्थितिवश वैसा करने को प्रस्तुत

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होते हैं। वासवदत्ता के प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम है और पद्मावती से परिणय होने पर भी वासवदत्ता की स्मृति उन्हें बनी रहती है।

पद्मावती से विवाह करने के पश्चात् जब विदूषक उनसे वासवदत्ता के सम्बन्ध में पूछता है तो वे उत्तर देते हैं कि पद्मावती वासवदत्ता की भाँति उनके मन को आकृष्ट नहीं करती। जब वे आखेट के लिए जाते हैं तभी लावाणक गृह की घटना घटती है। वासवदत्ता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् भी उसका प्रेम उनके हृदय में विद्यमान रहता है। वे वासवदत्ता के प्रति अगाध प्रेम का भाव रखते हुए भी पद्मावती के प्रति उदार बने रहते हैं और उसे किसी प्रकार से दुःख नहीं पहुँचाते। वासवदत्ता के वियोग में अश्रुसिक्त होने पर वे पद्मावती से अश्रुपूर्णनेत्र होने का कारण पुष्पों के पराग नेत्रों में पड़ जाने को कहते हैं। दाक्षिण्य गुण उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ है और वे वासवदत्ता के प्रति अपने प्रेम को पद्मावती पर प्रकट होने नहीं देते। राजा अत्यधिक कलापरायण हैं और मृदु होने के कारण उनमें क्रोध का अभाव है, पर उनमें शौर्य की कमी नहीं है। पंचम अंक में आरुणि पर रुमण्वान् द्वारा आक्रमण करने की बात सुनकर वे युद्ध के लिए उद्यत हो जाते हैं। उनमें गुरुजनों के प्रति सम्मान की भावना है। महासेन तथा अंगारवती के यहाँ से आये हुए ब्राह्मण का सन्देश सुनने के लिए आसन से उठ जाते हैं। भासने इस नाटक में उनके चरित्र को सुन्दर उदात्त एवं मनोवैज्ञानिक बना दिया है।

वासवदत्ता—वासवदत्ता त्याग की प्रतिमूर्ति एवं रूपयौवनवती पतिप्राणा रमणी है। वह स्वामी के हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने में भी नहीं हिचकती। वह उज्जयिनी नरेश महासेन प्रद्योत की पुत्री है। जब उदयन उसके पिता के यहाँ बन्दी थे तभी उससे उनका परिचय हुआ था और अन्ततः यह परिचय प्रगाढ़ प्रेम के रूप में परिणत हो गया। वासवदत्ता में स्वाभिमान का भाव भरा हुआ है। वह अत्यन्त उदार है तथा पद्मावती के प्रति ईर्ष्या का भाव प्रकट नहीं करती। वह पद्मावती के विवाह के समय स्वयं माला गूंथती है। वासवदत्ता काफी चतुर है तथा किसी भी स्थिति में अपनी मृत्यु के रहस्य को खोलती नहीं। वह धैर्य के साथ परिस्थितियों का सामना करती है और अपने पति के लिए यौगन्धरायण के साथ दर-दर भटकती रहती है। वह गुणग्राहिणी भी है तथा सदैव पद्मावती के रूप की प्रशंसा करती है। उदयन का प्रेम ही उसके जीवन का संबल है और उनके मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर वह उल्लसित हो जाती है। वह भोजन बनाने के कार्य में काफी कुशल है और मिष्ठान्न बनाकर विदूषक को प्रसन्न करती है। आदर्श रानी पत्नी एवं सौत के रूप में उसका चरित्र उज्ज्वल है। उसे पतिव्रता नारी के धर्म का पूर्ण परिज्ञान है, अतः वह पर पुरुष के दर्शन से दूर रहती है। राजा के प्रति उसके हृदय में अपार प्रेम है। प्रथम अंक में जब वह ब्रह्मचारी के मुख से राजा के मूर्छित होने का समाचार सुनती है तो दुःखी होकर रोने लगती है और मन में कहती है कि अब यौगन्धरायण का मनोरथ पूर्ण हो। कवि ने उसे आदर्श सौत के रूप में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चित्रित किया है। वह पद्मावती से ईर्ष्या नहीं करती और प्रथम अंक में ही राजा के भावी विवाह की चर्चा सुनकर उसे अपना स्नेह प्रदान करती है। पद्मावती की बीमारी का समाचार सुनकर वह उद्विग्न हो जाती है। शास्त्रीय दृष्टि से उसे धीरा नायिका कहा जा सकता है। उसे अपने उच्चकुल का अभिमान है वह पद्मावती को सौत की तरह नहीं छोटी बहन की तरह आजीवन प्यार करती है।

पद्मावती—पद्मावती राजा दर्शक की बहिन है और वासवदत्ता की सौत होते हुए भी उसके प्रति अत्यधिक उदार है वह अत्यन्त रूपवती है। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा वासवदत्ता किया करती है। विदूषक के अनुसार वह 'सर्वगुणों का आकर' है। राजा भी उसके रूप की प्रशंसा करता है। वह राजा के प्रति प्रेम, अपनी सौत वासवदत्ता के प्रति आदर तथा अन्य जनों के प्रति सहानुभूति रखती है। वह वासवदत्ता की भाँति आदर्श सौत है तथा उसके माता-पिता को अपने माता-पिता की भाँति आदर और सम्मान प्रदान करती है। पद्मावती बुद्धिमती नारी है। वासवदत्ता का रहस्य प्रकट होने पर वह अपने अविनय के लिए उससे क्षमा मांगती है।

यौगन्धरायण—यौगन्धरायण आदर्श मन्त्री के रूप में चित्रित है। इस नाटक की सारी घटना उसी की कार्यदक्षता एवं बुद्धिकौशल पर चलती है। उसमें स्वामिभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है और वह राजा के हित-साधन के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार रहता है। ज्योतिषियों के कथन को ही सत्य मान कर कि राजा पद्मावती का पति होगा यौगन्धरायण सारा खेल रच देता है। उसके बुद्धि कौशल एवं स्वाभि-भक्ति के कारण राजा को उसका खोया हुआ राज्य प्राप्त होता है। सारे भेद खुल जाने पर वह राजा के पैरों पर गिर पड़ता है।

भाषा-शैली—'स्वप्नवासवदत्तम्' की भाषा सरल, बोधगम्य और अकृत्रिम है। इसमें बड़े-बड़े समासों एवं समस्त पदों का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके वाक्य छोटे-छोटे एवं सरस हैं। इसमें सर्वत्र बोल-चाल की संस्कृत प्रयुक्त हुई है। भास की भाषा को प्रसाद-गुण-युक्त कहा जा सकता है। भाषा अनलंकृत होकर भी व्यंग्य प्रधान है। नाटक की उक्तियाँ प्रभावशाली और चुभनेवाली हैं। इसमें प्रकृति का रोचक, यथार्थ और व्यापक रूप चित्रित किया गया है।

खगा वासोपेता सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीपोऽग्निर्भातिप्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्त–शिखरम्॥

"सायंकाल हो रहा है। पक्षी अपने नीड़ों की ओर चले गए हैं। मुनियों ने जलाशय में स्नान कर लिया है। सायंकालीन अग्निहोत्र के लिए जलाई गई अग्नि सुशोभित हो रही है, और उसका धुआँ मुनिवन में फैल रहा है। सूर्य भी रथ से उतर गया है और

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उसने अपनी किरणें समेट ली हैं और रथ को लौटा कर वह अस्ताचल की ओर धीरे-धीरे प्रविष्ट हो रहा है।

कालिदास

कवि के रूप में तो कालिदास की ख्याति है ही, नाटककार के रूप में भी उनकी कला की चरम समृद्धि देखी जाती है। उन्होंने अपने पूर्व के संस्कृत नाट्य-साहित्य को अपनी रचनाओं द्वारा प्रौढ़ता प्रदान की है। कालिदास के पूर्व भास ने तेरह नाटकों की रचना की थी, जिसमें संस्कृत नाट्यकला का प्रारम्भिक विकास दिखाई पड़ता है। कालिदास ने अपनी रचनाओं द्वारा उसे समृद्ध किया। उन्होंने तीन नाटकों की रचना की है, जिनमें उनकी कला का क्रमिक विकास दिखाई पड़ता है। 'मालविकाग्निमित्र' उनकी प्रथम नाट्यकृति है, अतः इससे उनकी कला का अंकुर दिखाई पड़ता है। 'विक्रमोर्वशीय' में उसका सहज विकास है और 'शकुन्तला' में कवि की नाट्यकला का चरमोत्कर्ष दिखाई पड़ता है।

कालिदास के नाटक भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुरूप हैं या यों कहा जाय कि भरत द्वारा प्रतिपादित नाट्यसिद्धान्तों का कवि ने प्रायोगिक रूप प्रदर्शित किया है, तो कोई अत्युक्ति नहीं। भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रमुख तीन तत्त्व माने गये हैं—वस्तु, नेता और रस। इनमें सर्वाधिक महत्त्व रस-योजना को ही प्राप्त है अर्थात् भारतीय नाटक रस प्रधान हुआ करते हैं, क्योंकि प्रारम्भ में रसों का निरूपण नाटकों के लिए ही किया गया था। भारतीय नाटक प्रायः सुखान्त हुआ करते हैं और इनमें मृत्यु आदि घटनाएँ प्रदर्शित नहीं की जातीं, अतः इनका सुखान्त होना आवश्यक है। कालिदास के तीनों नाटक सुखान्त हैं और सबों का प्रतिपाद्य विषय श्रृङ्गार है। 'मालविकाग्निमित्र' की कथा ऐतिहासिक है और इसके सारे कार्य-व्यापार मालविका एवं अग्निमित्र की प्रणय-कथा को ही केन्द्र बनाकर अग्रसर होते हैं। इसका नायक विदिशा का राजा अग्निमित्र है जो धीरललित कोटि का नायक है। मालविका इसकी नायिका है और वह विदर्भराजा की भगिनी है। इसमें नृत्य, गीत, चित्र, शिल्प एवं विदूषक की चातुरी के सौन्दर्य की सृष्टि की गयी है। 'विक्रमोर्वशीय' एवं 'शकुन्तला' दोनों का कथानक पौराणिक है। कवि ने अपनी कथा की योजना 'ऋग्वेद', 'शतपथब्राह्मण', 'महाभारत' एवं 'मत्स्यपुराण' आदि ग्रन्थों के आधार पर की है। 'विक्रमोर्वशीय' में पुरुरवा उर्वशी की प्रणय-गाथा वर्णित है जिसका प्रथम सूत्र 'ऋग्वेद' में प्राप्त होता है। 'शकुन्तला' का कथानक 'महाभारत' से प्रभावित है। इसमें कवि की नाट्यकला का चरम परिपाक है। 'शकुन्तला' में कथा वस्तु का इस प्रकार गठन किया गया है जिससे कि छोटी-छोटी घटनाओं का भी महत्त्व बना हुआ है। कवि ने कथा में विभिन्न घटनाओं का इस प्रकार नियोजन किया है कि उसके विकास में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता। उन्होंने अपने तीनों ही नाटकों में नायि-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काओं को प्रथमतः दयनीय दशा में उपस्थित किया है और वे नायक द्वारा किये गए उपकार के कारण उसकी ओर आकृष्ट होती हैं। मालविका को दासी के रूप में देखकर अग्निमित्र उसके प्रति सदय होता है और विक्रमोर्वशीय में राक्षस की चपेट में आई हुई उर्वशी को विपद् से बचाकर पुरुरवा उसका कृपाभाजन बनता है। 'शाकुन्तल' में दुष्यन्त भौंरे के विघ्न से शकुन्तला की रक्षा करता है और उपकार के कारण उसका प्रेम प्राप्त करता है। अतः कालिदास के नाटकों की वस्तु-योजना का प्रथम सूत्र नायक द्वारा किये गए उपकार से उसके प्रति नायिका का आकृष्ट होना है—और यही आकर्षण उसके मिलन का केन्द्र-बिन्दु बनता है। कालिदास ने अपने कथानक में नायक अथवा नायिका द्वारा एक दूसरे की स्थिति को छिप-छिप कर देखने का वर्णन किया है। 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी छिप जाती है और शकुन्तला में राजा दुष्यन्त उसकी विरहावस्था का छिप कर अवलोकन करता है।

कालिदास ने चरित्र-चित्रण में नाट्यशास्त्र के नियमों को ही आधार बना कर धीरोदात्त एवं धीरललित नायकों की योजना की है। नाटकों में पात्रों का नियोजन अत्यन्त कौशल के साथ किया गया है और छोटे-छोटे तथा गौण पात्रों का भी कथा के विकास में महत्त्वपूर्ण योग रहता है एवं उनके व्यक्तित्व की निजी विशेषताएँ होती हैं। कवि ने पात्रों के चित्रण में अत्यन्त सूक्ष्मता प्रदर्शित की है और प्रायः एक समान लगनेवाले पात्रों के आचरण, विचार एवं व्यक्तित्व में अन्तर प्रदर्शित किया है। कवि ने जीवन की उदात्त भावनाओं का चित्रण कर अपने चरित्रों के माध्यम से जीवन को उन्नत बनाने वाला स्वस्थ विचारों का उद्योतन किया है।

कालिदास ने जीवन के विस्तृत क्षेत्रों से पात्रों का चयन किया है। राजकीय जीवन, तपोवन एवं निम्न श्रेणी के जीवन को स्पर्श कर कवि ने अपनी विशाल जीवन-दृष्टि का परिचय दिया है। कण्व तपोनिष्ठ ऋषि हैं, किन्तु वे स्नेहशील पिता का भी प्रतिनिधित्व करते हैं 'शकुन्तला' के तृतीय अंक के विष्कम्भक में अत्यन्त निम्न श्रेणी के पात्र चित्रित किये गए हैं तथा तत्कालीन पुलिस वर्ग का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है। मालविका राजकन्या होकर भी एक साधारण परिचारिका के रूप में अंकित है उर्वशी एक दैविक चरित्र के रूप में उपस्थित की गई है तो शकुन्तला तपोवन की अबोधवाला का प्रतिनिधित्व करती है। उनके सभी नाटकों के नायक राजा हैं, जो प्रेमी के रूप में अंकित हैं।

कालिदास की नाट्यकला की उत्कृष्टता का कारण उनकी काव्यकला है। यों तो कहीं भी कवि अपने कवित्व के बोझ से नाटकीय-विधान को भाराक्रान्त नहीं करता और काव्य तथा नाटक के शिल्प में सदा औचित्य एवं सन्तुलन बनाये रहता है, पर उसका कवित्व उसके नाटकों को गरिमामय बना देता है, इसमें किसी प्रकार की द्विधा नहीं है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसी काव्यात्मकता के कारण कालिदास के नाटक भावनावादी अधिक हैं या भावनाट्य हैं।

कालिदास ने अपने नाटकों में कोरा शृङ्गारी वातावरण ही प्रस्तुत नहीं किया, अपितु वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करने वाले राजाओं का चित्रण कर एक नया आदर्श उपस्थित किया है। उनके पात्र जीवन्त प्राणी हैं और वे इसी धरती की उपज हैं। कवि का मुख्यलक्ष्य रस-व्यंजना है, अतः उसके चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक स्थिति एवं अन्तर्द्वन्द्व के संघर्ष का अभाव दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण भारतीय नाटकों का रसात्मक होना ही है। कालिदास मुख्यतः शृङ्गार रस के कवि हैं, उन्होंने हास्य, करुण, भयानक एवं वीर रसों का भी अत्यन्त सफलता के साथ प्रयोग किया है। कवि विदूषक की व्यंग्यपूर्ण एवं हास्यात्मक उक्तियों के द्वारा हास्य की योजना करने में दक्ष है। दुष्यन्त के डर से भाग कर जाते हुए हिरण के चित्रांकन में भयानक रस का मार्मिक रूप दिखलाया गया है। 'शकुन्तला' की बिदाई का दृश्य तो करुणा से सिक्त ही है। उनके नाटकों में शिष्ट एवं पुरुष पात्र संस्कृत का प्रयोग करते हैं और शेष पात्र प्राकृत बोलते हैं। कवि ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर संवाद-कला का सुन्दर नियोजन किया है। 'शकुन्तला' के षष्ठ अंक के प्रवेशक के अतिरिक्त सभी जगह शौरसेनी प्राकृत प्रयुक्त हुई है और छठें अंक में मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है। 'विक्रमोर्वशीय' में पुरुरवा के प्रलाप में कई स्थानों पर अपभ्रंश की भी छाया दिखाई पड़ती है। कालिदास के नाटकों में सर्वत्र वैदर्भी रीति प्रयुक्त हुई है और वे उसके सिद्धहस्त लेखक हैं।

अभिज्ञान शाकुन्तल—इसमें सात अंकों में राजा दुष्यन्त एवं शकुन्तला के प्रणय, वियोग तथा पुनर्मिलन की कहानी का वर्णन किया गया है। 'शकुन्तलता' की मूल कथा "महाभारत' और 'पद्मपुराण' में मिलती है। इनमें महाभारत की कथा अधिक प्राचीन है। इस कथा में सरसता नहीं और यह सीधी-सादी तथा नीरस है। 'महाभारत' की कथा को कवि अपनी प्रतिभा एवं कल्पनाशक्ति के द्वारा सरस तथा गरिमामयी बना देता है। उसने महाभारत के हीन चरित्रों को उदात्तता प्रदान कर उन्हें प्राणवन्त बना दिया है तथा उसकी निर्जीव एवं चमत्कारहीन कथा में आवश्यकतानुसार परिवर्त्तन कर उसे सरस और रोचक बनाया है। इस कथा में दुष्यन्त का चरित्र गिर गया है और वह अत्यन्त कामी, लोलुप तथा व्यभिचारी सिद्ध होता है और शकुन्तला अपने पुत्र को राजा बनाने की शर्त लगाकर एक स्वार्थी नारी के रूप में उपस्थित होती है। महाभारत की शकुन्तला का प्रेम, प्रेम न होकर, व्यापार हो जाता है। 'महाभारत' में शकुन्तला दुष्यन्त से अपने जन्म की कथा स्वयं कहती है, पर शकुन्तला नाटक में यह बात शकुन्तला की दो सखियों - अनुसूया एवं प्रियंवदा—की बातचीत से ज्ञात होती है। ऐसा कर कवि ने शकुन्तला के शील एवं मुग्धत्व की रक्षा की है। 'महाभारत' की शकुन्तला विवाह के लिए एक शर्त रखती है कि यदि उसका पुत्र राजा का उत्तराधिकारी होगा तभी वह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विवाह करेगी। वह प्रगल्भ, स्पष्टवादिनी एवं निर्भीक तरुणी के रूप में उपस्थित होती है। उसमें हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क का प्राधान्य है। 'शकुन्तला' नाटक की शकुन्तला में उपर्युक्त दोष नहीं है। वह लज्जावती, प्रेमपरायण एवं निश्छल मुग्धा बालिका के रूप में प्रस्तुत की गई है। 'महाभारत' में कण्व फल-मूलादि लाने के लिए वन में गये हैं, जहाँ वे एक या दो घंटे के भीतर आ गये होंगे। इसी अन्तराल में प्रेम और विवाह की बात अयौक्तिक सी लगती है। पर, कालिदास ने नाटक में कण्व ऋषि को शकुन्तला के भावी अनिष्ट के शमन के लिए सोमतीर्थ में जाने का वर्णन किया है। अतः उनकी दीर्घ कालीन अनुपस्थिति में घटित होने वाली यह घटना स्वाभाविक लगती है। कालिदास ने दुर्वासा के शाप तथा अंगूठी की बात की कल्पना कर दो महत्त्वपूर्ण नवीनताएँ जोड़ी हैं। इससे दुष्यन्त, कामी, लोलुप, भीरु एवं स्वार्थी न होकर शुद्ध उदात्त चरित्र का व्यक्ति सिद्ध होता है। 'महाभारत' में वह समाज भीरु है तथा जानबूझकर शकुन्तला को तिरस्कृत करता है, पर कालिदास ने शाप की बात कह कर उसके चरित्र का प्रक्षालन किया है। शाप के अनुसार शकुन्तला का पति द्वारा तिरस्कार आवश्यक था तथा शील स्खलन के कारण उसका अभिशप्त होना भी अनिवार्य था। इससे उसका चरित्र, दण्ड प्राप्त कर, उज्ज्वल हो जाता है। शाप की घटना द्वारा कवि ने शकुन्तला के दण्ड का भी विधान किया है तथा अंगूठी की बात का समावेश कर शाप-विमोचन के साधन की सृष्टि की है। राजा के पास जाने के पूर्व ही शकुन्तला की अंगूठी का गिर जाना एवं शकुन्तला के तिरस्कार के पश्चात् अंगूठी के मिलने पर राजा को उसकी स्मृति का होना, ये दोनों बातें अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से वर्णित हैं।

शकुन्तला नाटक का वस्तु-विन्यास मनोरम तथा सुगठित है। कवि ने विभिन्न प्रसंगों की योजना इस ढंग से की है जिससे की अन्त तक उसमें सामंजस्य बना हुआ है। इसकी विविध घटनाएँ मूल कथा के साथ सम्बद्ध हैं और उनमें स्वाभाविकता बनी हुई है। इसमें एक भी ऐसा प्रसंग या दृश्य नहीं है जो अकारण या निष्प्रयोजन हो। नाटक के आरम्भिक दृश्य का काव्यात्मक महत्त्व अधिक है। दुष्यन्त के रथ पर आरूढ़ होकर आश्रम मृग का पीछा करते हुए आश्रम में प्रवेश करना सौन्दर्य से पूर्ण है। द्वितीय अंक में प्रणय-प्रतिमा शकुन्तला एवं प्रणयी राजा दुष्यन्त के मानसिक उद्वेलन का चित्रण है। प्रथमतः द्वन्द्व का प्रारम्भ दुष्यन्त के ही हृदय में होता है कि ब्राह्मण की कन्या होने के कारण यह क्षत्रिय नृप के लिए 'अपरिग्रह' है, पर उनके अन्दर का मानव शकुन्तला को उपभोग की वस्तु मानता है और अन्ततः सखियों द्वारा उसके जन्म का वृत्तान्त जान कर उनका आन्तरिक संघर्ष शान्त हो जाता है। "जब नवोत्थित प्रणयावेग उसे एक ओर खींचता है और उसका मुग्ध स्वभाव तपोवनोचित संस्कार तथा कन्योचित लज्जा दूसरी ओर खींचते हैं।" चौथे अंक के विष्कम्भक में प्रातःकाल का वर्णन कर भावी दुःख एवं वियोग की सूचना दी गई है। दुर्वासा के भयंकर शाप जैसी महत्त्वपूर्ण घटना का सम्बन्ध

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इससे है जो कवि के अपूर्व नाट्य कौशल का परिचायक है। शकुन्तला की बिदाई के समय मानव-हृदय की करुणा ही मुखरित हो उठी है। यहाँ कवि ने मानव एवं मानवेतर प्राणियों के हृदय में समान रूप से करुणा का भाव व्यंजित किया है।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'अभिज्ञान शाकुन्तल' उच्चकोटि का नाटक है। कवि ने 'महाभारत' के नीरस एवं अस्वाभाविक चरित्रों को अपनी कल्पना एवं प्रतिभा द्वारा उदात्त एवं स्वाभाविक बनाया है। उसके चरित्र आदर्श एवं उदात्तता से युक्त हैं, किन्तु उनमें मानवोचित दुर्बलताएँ भी दिखाई गई हैं, जिससे वे काल्पनिक लोक के प्राणी न होकर भूतल के जीव बने रहते हैं।

दुष्यन्त—राजा दुष्यन्त शकुन्तला नाटक का धीरोदात्त नायक है। कवि ने इसके चरित्र की अवतारणा में अत्यन्त सावधानी एवं सतर्कता से काम लिया है। उसका व्यक्तित्व बहुमुखी है। वह राजा, प्रेमी, विवेकवादी तथा हृदयवादी दोनों ही रूपों में चित्रित किया गया है। दुष्यन्त इस नाटक में दो रूपों में चित्रित है—आदर्श राजा एवं आदर्श मनुष्य। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावशाली है। स्वयं प्रियंवदा ने उसकी गम्भीर आकृति एवं मधुरवाणी की प्रशंसा की है—'दुरवगाहगम्भीराकृतिर्मधुरमालापनप्रभुत्वदाक्षिण्यं विस्तारयति' पृ० ५४। वह वीर तथा उत्साही है। मृगया से श्रमित उसके शरीर का जिस प्रकार सेनापति द्वारा वर्णन किया गया है वह उसके शारीरिक सुगठन, परिश्रमशीलता एवं बलिष्ठता का परिचायक है। [शकुन्तला २।४] 'अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरवर्ष्मा (पृ० ६६), नगरपरिघप्रांशुबाहुः। (पृ० ११३)। उपर्युक्त वाक्यों से उसकी शरीर सम्पत्ति का ज्ञान होता है।

राजा दुष्यन्त वीर है और उसकी वीरता का सदुपयोग सद्कार्यों में होता है। वह अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा तपोवन की रक्षा करता है तथा इन्द्र के शत्रु कालनेमिवंश के राक्षसों का दमन करता है। वह उत्साही तथा वीरता की मूर्त्ति है। इन्द्र का सारथी मातलि जब माढव्य पर आक्रमण करता है तो उसकी करुण पुकार सुनकर वह शीघ्र ही धनुष-बाण लेकर उसकी रक्षा के लिए उद्यत हो जाता है। इन्द्र के द्वारा साहाय्य के लिए बुलाया जाना उसकी वीरता की ख्याति एवं महत्त्व का परिचायक है।

वह अत्यन्त मधुरभाषी है। प्रियंवदा ने उसके मधुर भाषण की प्रशंसा की है। जब वह लड़कियों से बिदा लेता है तो अपने कथन से उनको आकृष्ट कर लेता है—दर्शनेनैव भवतीनां सम्भूतसत्कारोऽस्मि, पृ० ७६। राजा वीर होते हुए भी विनयी है। उसकी विनयशीलता आश्रमवासी मुनि कुमारों के प्रति शिष्ट-व्यवहारमें, अनुसूया एवं प्रियंवदा के वार्त्तालाप में तथा मातलि द्वारा प्रशंसित होने पर इन्द्र के प्रति व्यक्त किये गए सम्मान तथा कृतज्ञता सूचक शब्दों में व्यक्त होती है।

राजा धर्मभीरु है और राजा के रूप में वर्णाश्रम धर्म की रक्षा को ही अपना परम कर्त्तव्य स्वीकार करता है। प्रारम्भ में वह मृगया प्रिय वीर व्यक्ति के रूप में दिखाई पड़ता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। उसकी मृगया-सम्बन्धी मान्यताएँ मर्यादित हैं। ज्योंही उसके कानमें मृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।' त्योंही वह अपनी प्रत्यंचा ढीली कर देता है। ऋषि-मुनियों के प्रति उसके मन में असीम सम्मान एवं श्रद्धा का भाव है। आश्रम में प्रवेश करते ही उसके दर्शन से वह अपने को धन्य मानता है—पुण्याश्रम-दर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे। वह आश्रम में अपने सभी वस्त्राभूषणों को उतार कर विनीत-विनीत वेष में प्रवेश करता है; इससे उसकी आश्रम के प्रति भक्ति एवं पूज्य भावना प्रदर्शित होती है। वह शार्ङ्गरव एवं शारद्वत को देखकर अपने आसन से उठ कर उनका अभिवादन करता है। आश्रमवासी एवं कण्व ऋषिके कल्याण की भावना उसके मनमें सजग रहती है। जब शकुन्तला को लेकर आश्रम-वासी उसके दरबार में जाते हैं तो वह सर्वप्रथम यही प्रश्न करता है कि—'अपि निर्विघ्न-तपसो मुनयः'। वह मर्यादा का कभी भी अतिक्रमण नहीं करता। अपूर्व लावण्यवती अनिंद्य सुन्दरी शकुन्तला को देखकर वह आकृष्ट होता है, किन्तु उसके प्रति प्रेम-प्रदर्शित करने के पूर्व यह जान लेना चाहता है कि वह उसके विवाह के योग्य है या नहीं। यद्यपि उसके विवेक और अन्तर अपने योग्य मानने को विवश करते हैं—

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः॥

—१।२३

"इसमें सन्देह नहीं कि यह क्षत्रिय के ग्रहण करने योग्य है। क्योंकि मेरा साधु मन इसे चाहता है। किसी संदिग्ध वस्तु में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाणित होती हैं।"

दुष्यन्त अपने वंश की उज्ज्वल परम्परा पर गर्व करता है। वह मानता है कि जब तक कोई भी पौरव इस पृथ्वी पर राज्य करेगा तब तक तपोवन की मर्यादा तथा ऋषि-मुनियों एवं उनकी कन्याओं का कोई भी बुरा नहीं हो सकता। वह गम्भीर प्रकृति का मनुष्य है। शकुन्तला का तिरस्कार करने पर शार्ङ्गरव उसे कटूक्तियों से प्रहार करता है, पर दुष्यन्त उसकी बातों को सहन कर कठोर आत्म-संयम का परिचय देता है। एक असाधारण रूपवती युवती जब उसे पति के रूप में मानने की प्रार्थना करती है और ऋषि भी उसके लिए तर्क उपस्थित करते हैं, फिर भी वह उसके प्रति झुकता नहीं। उसके इस आत्म-संयम एवं दृढ़व्रत की प्रशंसा कंचुकी भी करता है—'अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति'।

उसे हम ललित कलाओं का मर्मज्ञ एवं अनुरागी के रूप में पाते हैं। वह रानी हंस-पादिका के गीत को सुनकर उस पर जो टिप्पणी करता है उससे उसकी कलाभिज्ञता की प्रतीति होती है—'अहो रागपरिवाहिनीगीतिः'। वह चित्रकला में भी निपुण है। शकुन्तला के वियोग में अपने आश्रम की पृष्ठभूमि में जो उसका चरित्रांकन किया है, उसमें उसके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अंग सौष्ठव के अतिरिक्त मानसिक भावों की भी अभिव्यक्ति हुई है। विदूषक एवं अप्सरा सानुमती दोनों ही उसकी चित्रकला की प्रशंसा किये बिना नहीं रहते।

राजा धीरोदात्त नायक, उत्तम पति तथा उत्साही प्रेमी है। अनेक पतियों के साथ सम्बन्ध रहने पर भी उसमें नैतिकता का भाव बना रहता है। नवीन स्त्री पर आकृष्ट हो जाने पर भी वह अपनी अन्य स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव बनाये रखता है एवं उनके प्रति अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं होता। वह उनकी सुख-सुविधा का सदा ध्यान रखता है। शकुन्तला के प्रति प्रगाढ़-प्रेम होते हुए भी वह रानी वसुमती के आगमन की सूचना प्राप्त कर शकुन्तला के चित्र को छिपा देता है। रानी हंसपादिका के गीत से यह ध्वनि निकलती है कि वह 'अभिनव मधु-लोलुप' है, पर इस नाटक में इस वृत्ति का कोई संकेत प्राप्त नहीं होता।

कवि ने दुष्यन्त में मानव-सुलभ दुर्बलताओं का निदर्शन कर उसे काल्पनिक या आश्चर्यजनक पात्र नहीं बनाया है। छिप कर तपस्वी कन्यकाओं के रूप-दर्शन करने एवं उसके परिहासपूर्ण वार्त्तालाप सुनने, शकुन्तला की सखियों से अपना असत्य परिचय देने, माता की आज्ञा को बहाने से टाल कर अपने स्थान पर माढव्य को राजधानी भेजने आदि कार्यों में उसकी दुर्बलताएँ व्यंजित हुई हैं। अपनी परिणीता पत्नी का तिरस्कार एवं त्याग के कारण दुष्यन्त का चरित्र गिर जाता है, पर दुर्वासा के शाप के कारण उसका काला धब्बा मिट जाता है। उसका चरित्र इस घटना के कारण परमोज्ज्वल होकर पूर्ण रूप से निखर जाता है। कवि ने वियोग के ताप में दुष्यन्त को जलाकर उसके वासनामूलक कलुष को निःशेष कर दिया है और उसका अन्तःकरण पवित्र होकर श्वेतकमल की भाँति प्रोज्ज्वल हो उठता है। वह शकुन्तला के विरह-ताप में झुलसते हुए भी अपने धर्म एवं कर्त्तव्य का पूरा ध्यान रखता है। राजा संततिविहीन धर्मबुद्धि नामक वणिक् की मृत्यु का समाचार पाकर उसके धन को राजकोष में न मिला कर इस बात की घोषणा करा देता है—

येन येन वियुज्यन्ते प्रजास्निग्धेन बन्धुना।
स स पापाहते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्॥

इस घोषणा के द्वारा उसकी कर्त्तव्यपरायणता का ज्ञान होता है। अन्त में राजा का चरित्र अत्यन्त स्वच्छ एवं पवित्र हो जाता है। सर्वदमन को देखते ही उसका वात्सल्य स्नेह में निमग्न हो जाता है। शकुन्तला पर दृष्टि पड़ते ही वह पश्चात्ताप से पिघल कर उसके चरणों पर गिर पड़ता है जिससे उसकी मूक महानता मुखरित हो उठती है। मारीच के आश्रम के पवित्र वातावरण में दुष्यन्त का प्रेम स्वस्थ एवं पावन बन जाता है और शकुन्तला के अश्रुओं को पोंछते हुए वह स्वयं अपने पापों का प्रक्षालन कर लेता है।

दुष्यन्त उच्चकोटि का शासक है एवं उसमें कर्त्तव्य परायणता, प्रजाप्रेम, लोभ का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रभाव—ये तीन गुण विद्यमान हैं। प्रथम अंक में हाथियों का उपद्रव सुनते ही लड़कियों से विदा लेकर तुरत उसको दण्ड देने के लिए सन्नद्ध हो जाने एवं दो तपस्वियों द्वारा तपोवन की रक्षा के लिए बुलाये जाने पर उसके इस कथन में—गच्छतां भवन्तौ, अहमनुपदमागत एव, उसकी कर्त्तव्यपरायणता झलकती है। शकुन्तला के विरह ताप से दग्ध होने पर भी नित्य प्रति राज काज में भाग लेना तथा रोज मन्त्रियों के कार्य का निरीक्षण किये बिना कोई आज्ञा प्रसारित न करना, उसके वास्तविक शासक होने के उदाहरण हैं। वह स्वभाव से अविकत्थन है।

राक्षसों का संहार कर मार्ग में आते समय इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा अपने पौरुष एवं विजय की प्रशंसा सुनकर भी राक्षसों की पराजय का सारा श्रेय इन्द्र को देता है और उसमें अपना तनिक भी योग नहीं मानता। इस दृष्टि से दुष्यन्त अपना आदर्श व्यक्तित्व उपस्थित करता है।

शकुन्तला—शकुन्तला इस नाटक की नायिका है। महाकवि ने उसके शील-निरूपण में अपनी समस्त प्रतिभा एवं शक्ति को लगा दिया है। जिस सजगता के साथ वह उसके रूप-लावण्य की विवृत्ति करता है उसी प्रकार की सचेष्टता एवं कलात्मक निपुणता उसके शील को भी अनावृत्त करने में लगा देता है। निसर्ग कन्या शकुन्तला तपोवन की प्रकृति की भाँति नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रतिमा है। कवि उसका चरित्रांकन करने में अपनी प्रतिभा को चरम सीमा पर पहुँचा देता है। शकुन्तला के जीवन में रोमांस की मादकता एवं यथार्थ की निर्ममता दोनों का अपूर्व संयोग है। जिसके चित्रण में कवि की रसार्द्र-चेतना ने पर्याप्त संयम का सहारा लिया है। यदि शकुन्तला के व्यक्तित्व का रोमांस-रोमांस ही बन गया होता या यथार्थ मात्र यथार्थ बन कर रह गया होता तो कालिदास भारतीयता के प्रतीक न बन पाते।*

राजा दुष्यन्त के अनुसार शकुन्तला 'अव्याजमनोहरवपु' वाली रमणी है। वह प्रकृति की सहचरी है तथा प्रकृति की सुरम्य गोद में लालित-पालित होने के कारण उसके हृदय में लता-विरुवों के प्रति भी स्नेह एवं आत्मीयता हो गयी है। तपोवन के कोमल वृक्षों के सिंचन से उसे अपूर्व आह्लाद प्राप्त होता है। मृगछौनों के प्रति भी उसका अधिक स्नेह प्रदर्शित होता है तथा जब उन्हें दर्भांकुरों से आहत देखती है तो उनके मुख में हिंगोट का तेल लगाती है। ऋषि कण्व भी उसे अधिक स्नेह करते हैं तथा अतिथि सत्कार का दायित्व भी उसी के ऊपर छोड़ देते हैं। इस प्रकार उसके जीवन में तपोवन की तापसी के व्यक्तित्व के अतिरिक्त गार्हस्थ जीवन की भावना का भी मंजुल सामंजस्य दिखाई पड़ता है। वह शान्त एवं पवित्र वातावरण में पोषित होकर भी अवस्थाजन्य चांचल्य से विभूषित है, जिसका रूप सखियों के साथ होनेवाले उसके हास-परिहास में प्रकट होता

* महाकवि कालिदास, पृ॰ १९३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। शकुन्तला के सभी अवयव व्यक्त हो चुके हैं, पर उसका जीवन भोली-भाली मुग्धा नायिका की भाँति है। वह राजा को देखकर अपने मन में होने वाली काम-विकारजन्य वेदना को सखियों से भी नहीं कहती, किन्तु जब वेदना व्याधि का रूप ग्रहण कर लेती है तब सखियों के पूछने पर अपने रहस्य को खोलती है—'यतः प्रभृतितपोवनरक्षिता स राजर्षिः।' जब राजा उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है तब वह लज्जावनत हो जाती है और प्रियंवदा द्वारा विवाह की चर्चा करने पर वहाँ से भागने का उपक्रम करती है। तृतीय अंक में राजा से एकान्त में मिलने पर वह बार-बार जाने का ही प्रयास करती है। उसका स्वभाव अत्यन्त सरल है। बार-बार सखियों द्वारा परिहास किये जाने पर भी कुछ नहीं बोलती। कुलपति की कन्या होने पर भी उसे इस बात का घमण्ड नहीं है और वह अपनी सखियों के आदेश का सहर्ष पालन करती है—'हला! शकुन्तले! गच्छ, उटजात् फलमिश्रमर्घ्यभाजनमुपाहर'। पृ० ५२।

शकुन्तला का राजा के साथ गान्धर्वविवाह करना तथा प्रणयसूत्र में आबद्ध होकर गर्भधारण करना, कतिपय आलोचकों की दृष्टि से उसके चारित्रिक स्खलन का द्योतक है। पर, कवि ने उसकी दो सखियों का समावेश कर एवं उसके समक्ष गान्धर्वविवाह की योजना कर उसके चारित्रिक औचित्य की रक्षा की है। प्रारम्भ में दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला का प्रेम अत्यन्त उद्दाम एवं वासनात्मक है। उसकी विचार-शक्ति थोड़ी देर के लिए अवश्य ही सजग रहती है, पर प्रेम की प्रखर ऊष्मा में वह पराजित हो जाती है। उसका यह आवेगजन्य प्रेम अन्ततः विरह ताप में जल कर सुवर्ण की भाँति दमकने लगता है और उसमें अपूर्व दीप्ति आ जाती है। कवि ने शकुन्तला को कलावती के रूप में चित्रित किया है। वह पत्र लिखते समय (राजा के पास) अपनी काव्य-रचना-शक्ति का परिचय देती है। उसके हृदय में दुष्यन्त के प्रति अपार स्नेह एवं श्रद्धा का भाव है। दुष्यन्त के द्वारा तिरस्कृत होने एवं समस्त नारी समाज पर दोषारोपण किये जाने पर थोड़ी देर के लिए, अवश्य ही, उसका नारीत्व जाग उठता है, पर बाद में वह सदा अपने भाग्य को ही दोषी ठहराती है।

सखी और पुत्री के रूप में भी शकुन्तला आदर्श रूप में प्रस्तुत की गई है। उसकी दोनों सखियाँ उससे अनेक प्रकार का हास-परिहास करती है, पर उन्हें वह बुरा नहीं मानती। वह अपना कोई भी रहस्य उनसे छिपाती नहीं। दोनों के प्रति उसके हृदय में प्रगाढ़ स्नेह है। दुष्यन्त के अत्यधिक आग्रह करने पर वह उनसे कहती है कि मुझे पहले सखियों से पूछ लेने दीजिए। महर्षि कण्व उसे पुत्री के रूप में मानते हैं और शकुन्तला को उनका अविचल स्नेह प्राप्त होता है। पतिगृह जाने के समय कालिदास ने शकुन्तला के प्रति कण्व के जिस स्नेह एवं भावार्द्रता का चित्रण किया है, वह अपूर्व है। जाते समय शकुन्तला अपनी चिन्ता न करने को कहती है; क्योंकि इससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जायगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकुन्तला का व्यक्तित्व आदर्श हिन्दू रमणी का है। उसमें पति के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण का भाव है एवं पति के तिरस्कार करने पर उसके अन्तस् का आग और पानी नेत्रों के मार्ग से प्रवाहित होने लगता है। राजा द्वारा व्यंग्य करने पर उसका नारीत्व जागरूक हो जाता है और वह व्यंग्योक्तियों का उत्तर कटूक्तियों से देती हुई राजा को अनार्य भी कह देती है। उसकी कटूक्तियों में उसके हृदय के वास्तविक स्नेह का बल है। मारीच के आश्रम में जब राजा उसके चरणों पर गिर पड़ता है तो वह क्षमा की अद्भुत मूर्ति बन कर सारे क्रोध और कटुता को पी जाती है और राजा के प्रति उसका सारा आक्रोश गल जाता है। पुत्र के पूछने पर कि मां ! यह कौन है ? वह कहती है कि पुत्र भाग्य से पूछ। राजा को वह पहचान कर अपने मन में जो कुछ सोचती है उसमें उसके हृदय का स्नेह लिपटा हुआ दीखता है।

"धीरज धरो, मेरे हृदय ! आज दैव ने पिछला सब वैर भुलाकर मेरी सुन ली है। सचमुच ये तो आर्यपुत्र ही हैं।" वह आदर्श पत्नी की भाँति अपने पति को दोषी न ठहराकर सारे दोष को अपने भाग्य का कारण मान लेती है।

कवि ने शकुन्तला का चित्रण तीन रूपों में किया है। उसका प्रथम रूप प्रेमावेश से भरी हुई उद्याम कामातुरा युवती का है जो लतापुंजों को आमन्त्रित करती हुई राजा को पुनः आने का संकेत करती है—'लतावलयसन्तापहारक-आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परि-भोगाय'। उसका दूसरा रूप पति द्वारा निरादृत निरीह नारी का है जो उसे नीच और अनार्य कहकर डाँटती-फटकारती है। उसके तीसरे रूप में गंगा की पवित्रता एवं धवलता है, जो अपूर्व क्षमादात्री के रूप में प्रकट होती है। वह राजा के सारे दोष को विस्मृत कर अपने भाग्य-विपर्यय का दोष मान कर पूर्वजन्मार्जित कृत्यों का फल स्वीकार करती है और मारीच ऋषि से दुर्वासा के शाप की बात श्रवण कर मानसिक समाधान प्राप्त कर लेती है।

अन्य पात्र—इस नाटक के अन्य पात्र भी सजीव एवं निजी वैशिष्ट्य से पूर्ण हैं। कण्व तपस्या एवं साधना की मूर्त्ति होते हुए भी वात्सल्य स्नेह से आपूर्ण हैं। उनके हृदय में सद्गृहस्थ की भावनायें भरी हुई हैं। शकुन्तला की बिदाई के समय उनके द्वारा (शकुन्तला को) दी गई शिक्षा में भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक आदर्श का रूप व्यक्त हुआ है।

रस-परिपाक—संस्कृत नाटक रस-प्रधान होते हैं और उनमें कवि का मुख्य अभि-प्रेत रस निष्पत्ति होता है। रस-व्यंजना की दृष्टि से 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का अधिक महत्त्व है। इसका अंगीरस शृङ्गार है जिसमें उसके दोनों रूपो-संयोग और वियोग—का सुन्दर परिपाक हुआ है। कवि ने संयोग की मादकता एवं वियोग की मर्मद्रावक विह्वलता दोनों की मधुरधारा प्रवाहित की है तथा कहीं-कहीं हास्य, अद्भुत, करुण, भयानक एवं वात्सल्य रस की भी मोहक ऊर्मियाँ सजा दी हैं। इस नाटक में साक्षात्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दर्शन के द्वारा प्रेमोदय होता है। इसके प्रथम अंक के प्रारम्भ में मृगया प्रेमी राजा दुष्यन्त के सामने अपने प्राण वचाने के लिए भागते हुए आश्रम मृगों तथा हाथी द्वारा किये गए विध्वंस में भयानक रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। 'ग्रीवाभङ्गाभिरामं' इस पद्य में आचार्य मम्मट ने भयानक रस माना है। द्वितीय अंक में माढव्य की चटुल एवं परिहासपूर्ण उक्तियों में हास्यरस की छटा छिटकती है। चतुर्थ अंक में शकुन्तला की चिन्ता, दुर्वासा के शाप एवं शकुन्तला की बिदाई में करुण रस की व्यंजना हुई है। पंचम अंक में अनेक रसों का मिश्रण है। इसके प्रारम्भ में कंचुकी द्वारा अपनी वृद्धावस्था पर खेद प्रकट करने में कंचुकी की राजविषयारति तथा राजा और विदूषक के संवाद में हास्यरस का आस्वाद होता है। हंसपादिका के गाने में राजा का दक्षिण नायकत्व व्यक्त होता है एवं राजा और शार्ङ्गरव की क्रोधपूर्ण वार्त्ता में वीररस की निष्पत्ति हुई है। दोनों ही धर्मवीर हैं और धर्म के लिए परस्पर झगड़ जाते हैं। किसी अदृश्य छाया द्वारा शकुन्तला को उड़ाकर ले जाने के समाचार में अद्भुत रस दिखाई पड़ता है। पंचम अंक के अंकावतार में हास्यरस है, जिसमें देश की तात्कालिक स्थिति का वर्णन है। षष्ठ अंक में विप्रलम्भ शृङ्गार का प्राधान्य है। इस अंक में राजा की विरह-वेदना एवं उसकी मनः स्थिति का मनोरम चित्रण है। वियोग शृङ्गार की विविध स्थितियों एवं उपादानों का अत्यन्त विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। मातलि तथा विदूषक के दृश्य में राजा के हृदय में क्रोध का भाव प्रकट होता है एवं राक्षसों से लड़ने के लिए जाने में वीररस की व्याप्ति हुई है। कवि ने राजा के हृदय में उत्साह को उद्बुद्ध किया है। सप्तम अंक में मातलि की राजविषयारति का वर्णन है तथा आकाशमार्ग से रथ के उतरने में अद्भुत रस है। मारीच ऋषि के आश्रम में विस्मय का भाव है तथा मुनिविषयारति का वर्णन है। सर्वदमन के दृश्य में वात्सल्यरस का परिपाक है और दुष्यन्त-शकुन्तला के पुनर्मिलन में संयोग शृङ्गार का वर्णन है।

भाषा-शैली—'अभिज्ञान शाकुन्तल' की भाषा प्रवाहमयी, प्रसादपूर्ण, परिष्कृत, परिमार्जित एवं सरल है। इसमें मुख्यतः वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है। शैली में दीर्घसमस्त पदों का आधिक्य नहीं है और कवि ने अल्पशब्दों में गम्भीर भावों को भरने का प्रयास किया है। शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में उदित होने वाली प्रेम-भावना को अत्यन्त नैपुण्य के साथ व्यक्त किया गया है। कवि ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर नाटक को अधिक व्यावहारिक बना दिया है। इसमें संस्कृत के अतिरिक्त सर्वत्र शौरसेनी प्राकृत प्रयुक्त हुई है। कालिदास मुख्यतः कोमल भावनाओं के कवि हैं, अतः उनके छन्द-विधान में भी शब्दावली की सुकुमारता एवं मृदुलता दिखाई पड़ती है। कवि ने प्रकृति की मनोरम रंगभूमि में शकुन्तला के कथानक का निर्माण किया है। कहीं तो प्रकृति मानव की सहचरो के रूप में चेतन और सजीव चित्रित की गयी है और कहीं वर्णन के पृष्ठाधार को सजाने के लिए उसका उपयोग किया गया है। चतुर्थ अंक में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकृति को शकुन्तला के जीवन में परिव्याप्त कर मानव एवं मानवेतर प्रकृति के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इसमें प्रकृति-वर्णन के द्वारा बिम्बग्रहण कराते हुए भावी घटनाओं का भी संकेत हुआ है। यह नाटक अपनी रोचकता, अभिनेयता, काव्यकौशल, रचना चातुर्य एवं सर्वप्रियता के कारण संस्कृत के सभी नाटकों में उत्तम माना जाता है।

शूद्रक और उनका मृच्छकटिक

संस्कृत-नाट्यकारों में शूद्रक विशिष्ट महत्त्व के अधिकारी हैं। उन्होंने मृच्छकटिक नामक महान् यथार्थवादी एवं रोमांटिक नाटक की रचना की है। यह संस्कृत का अपने ढंग का अकेला नाटक है। 'मृच्छकटिक' एवं उसके रचयिता के सम्बन्ध में प्राक्तन तथा अद्यतन विद्वानों ने अनेक प्रकार के मत व्यक्त किए हैं, जो परस्पर विरोधी हैं। इसकी रचना कब हुई; इसका रचयिता कौन था, आदि प्रश्न अभी भी विवाद के विषय बने हुए हैं। कुछ विद्वान् 'मृच्छकटिक' को ही संस्कृत का प्रथम नाटक मानते हैं और इसकी रचना कालिदास से भी पूर्व स्वीकार करते हैं। किन्तु यह मत 'मृच्छकटिक' की भाषा, प्राकृतिक-प्रयोग, शैली एवं नाटकीय संविधान की दृष्टि से खण्डित हो चुका है और इसका निर्माण-काल कालिदास के बाद माना गया है।

परम्परा से 'मृच्छकटिक' प्रकरण के प्रणेता शूद्रक माने जाते रहे हैं। इसकी प्रस्तावना में बताया गया है कि इसके रचयिता शूद्रक थे जो ऋग्वेद, सामवेद, हस्तविद्या आदि में पारंगत थे। उन्होंने सौ वर्ष दस दिन तक जीवित रहने के बाद अपने पुत्र को राज देकर चिता में प्रवेश कर अपना अन्त कर दिया था। [श्लोक ४] पुनः उसमें कहा गया है कि शूद्रक संग्राम में कुशल, जागरूक, वैदिकों में श्रेष्ठ, तपोनिष्ठ तथा शत्रुओं के हाथी से मल्लयुद्ध करनेवाले राजा थे। [श्लोक ५] शूद्रक राजा का उल्लेख अनेक संस्कृत-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। 'स्कन्दपुराण' में भी शूद्रक का वर्णन है। और 'वेतालपञ्चविंशति', 'कथासरित्सागर' एवं 'कादम्बरी' में शूद्रक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है। 'हर्षचरित' में शूद्रक को चकोर के राजा चन्द्रकेतु का शत्रु कहा गया है। 'स्कन्दपुराण' में विक्रमादित्य के सत्ताइस वर्ष पूर्व राज्य करने का शूद्रक का वर्णन है। इन सारे ग्रन्थों का विवरणों से ज्ञात होता है कि शूद्रक का नाम उदयन की भाँति लोक कथाओं के नायक का है। यदि शूद्रक को इस प्रकरण का रचयिता माना जाय तो कई प्रकार की आपत्तियाँ उठ खड़ी हो जाती हैं। प्रसिद्ध नाटककार अपने मरण की बात स्वयं कैसे लिख सकता है? अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तावना के पद्य शूद्रक रचित नहीं हैं। तब प्रश्न उठता है कि ये पद्य किसके द्वारा और क्यों जोड़े गए हैं। इस प्रश्न के समाधान में अनेक प्रकार के विवाद उठ खड़े हुए हैं और अनेक पाश्चात्य विद्वान् 'मृच्छकटिक' को शूद्रक-कर्तृक होने में सन्देह प्रकट करते हैं। डॉ० पिशेल के मतानुसार मृच्छकटिक का रचयिता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दण्डी है। उनका कहना है कि दण्डी के नाम पर तीन प्रबन्ध प्रचलित हैं। उनमें दो हैं—'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श' तथा तीसरी कृति 'मृच्छकटिक' ही है। श्रीनेरूरकर ने भास को ही इसका रचयिता माना है। पर, ये दोनों ही कल्पनाएँ ठीक नहीं हैं; क्योंकि 'मृच्छकटिक' के रचयिता के रूप में शूद्रक का नाम प्रचलित है, भास और दण्डी का नहीं। यदि ये दोनों इसके प्रणेता थे तो उनके नाम प्रचलित क्यों नहीं हुए? मृच्छकटिक' की प्रस्तावना में शूद्रक राजा बताए गए हैं और न तो दण्डी ही राजा है और न भास ही। अतः ये कल्पनाएँ निराधार हैं।

डॉ० सिलवाँलेवी का मत है कि किसी अज्ञातनामा कवि ने 'मृच्छकटिक' की रचनाकर उसे शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। श्री लेवी शूद्रक को इसका रचयिता मानने के पक्ष में नहीं हैं। इसके मूल लेखक ने इसे प्राचीन सिद्ध करने के लिए ही लेखक के रूप में शूद्रक का नाम दे दिया है। डॉ० लेवी ने अपने मत की पुष्टि में जो तर्क दिये हैं उनमें कोई बल नहीं है। डॉ० कीथ ने शूद्रक नाम को अजीब मान कर इसे काल्पनिक पुरुष कहा है। "इन उल्लेखों से प्रतीत होता है कि शूद्रक एक निजंधरी व्यक्ति मात्र थे। उनका विचित्र नाम, जो असामान्य प्रकार के राजा के लिए हास्यास्पद है, इस तथ्य का समर्थन ही करता है।"*

कीथ के अनुसार इसका रचयिता कोई दूसरा व्यक्ति है। पर, इनका प्रथम मत इस आधार पर खण्डित हो जाता है कि शूद्रक का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में है, और वे काल्पनिक व्यक्ति नहीं हैं। उनका उल्लेख एक जीवन्त व्यक्ति के रूप में किया गया है। शूद्रक के नाम पर शूद्रकचरित, शूद्रकवध एवं विक्रान्त शूद्रक आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं, किन्तु ये उपलब्ध नहीं होते। शूद्रक के विषय में अद्यतन मत इस प्रकार है।

शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, किंतु आगे चल कर उनका व्यक्तित्व लोक-कथाओं के घटा-टोप में आच्छान्न हो गया है। 'मृच्छकटिक' शूद्रक की रचना नहीं है, किसी दूसरे कवि ने रचकर इसे शूद्रक के नाम पर प्रचलित कर दिया है। भास रचित 'दरिद्रचारुदत्त' के आधार पर किसी कवि ने इसमें आवश्यक परिवर्त्तन एवं कुछ कल्पनाओं का समावेश कर इसका रूप निर्मित किया था। गोपालदारक आर्यक एवं पालक की कथा इसी कवि की देन है जिसका स्रोत उसे गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' में अथवा तत्कालीन प्रचलित अन्य कथाओं में प्राप्त हुआ होगा। किसी कारणवश उसने अपना नाम न देकर शूद्रक को इसके लेखक के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। प्रस्तावना में शूद्रक के परिचय वाले अंश में परोक्षभूते लिट् के द्वारा शूद्रक का वर्णन है तथा इन श्लोकों में ऐतिह्यसूचक 'किल' शब्द भी प्रयुक्त है। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि ऐसे कौन से कारण थे जिन्होंने लेखक को अपना नाम नहीं देने को वाध्य किया था। इस सम्बन्ध दो कारणों की कल्पना की

* संस्कृत नाटक, पृ० १२६

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गई है जो समीचीन भी हैं। प्रथम तो यह कि मूल नाटक के लेखक भास थे, अतः इसे अपने नाम पर प्रचलित कहने में लेखक हिचकिचा गया होगा, फलतः उसने शूद्रक का नाम देकर छुट्टी पा ली होगी। द्वितीय कारण यह है कि इस नाटक में जिन नवीन राजनीतिक, सामाजिक कल्पनाओं का समावेश किया गया उनसे तत्कालीन समाज एवं राजवर्ग पर कशाघात किया गया है और उनकी खिल्ली उड़ाई गई है। इसमें नाटककार ने क्रान्तिकारी विचारों को चरमसीमा पर पहुँचा दिया है। यहाँ ब्राह्मण चोर, जुआरी एवं चापलूस के रूप में चित्रित किये गए हैं और क्षत्रियों को क्रूर एवं दुराचारी दिखलाया गया है। राजा क्रूर और दुराचारी है तथा नीच जाति की रखेलियों को प्रश्रय देता है और नीच जाति के लोग ही राज्य के उच्चपदस्थ पदाधिकारी हैं। न्याय केवल राजा की इच्छा पर आश्रित रहता है। अतः इन्हीं क्रान्तिकारी विचारों के समावेश के कारण राजदण्ड के भय से कवि ने अपना नाम नहीं दिया। नवीनतम खोजों के आधार पर डॉ० रामशंकर तिवारी ने अपने तीन निष्कर्ष दिये हैं—

(क) 'मृच्छकटिक' के रचयिता शूद्रक ने दक्षिण भारत में राजसत्ता का उपभोग उस अवधि में किया होगा जो गुप्त-साम्राज्य के पतन (५०० ईस्वी) से आरम्भ होती है और थानेश्वर के महाराज हर्षवर्धन के उदयकाल (६०६ ई०) में समाप्त होती है। वह युग भारतीय इतिहास में विकेन्द्रीकरण का काल रहा है जब देश अनेक छोटे-छोटे स्वाधीन राज्यों में बँटा हुआ था जिनमें हुणों द्वारा संस्थापित राज्य भी था जो विदेशी आक्रान्त थे। शूद्रक ऐसे छोटे नरेशों में था जिसको या तो सत्ता-प्राप्ति के लिए स्वयं कोई छोटा-मोटा संघर्ष करना पड़ा था या फिर किसी सत्तापहरण वाले काण्ड में उसकी गहरी दिलचस्पी थी।

(ख) शूद्रक का व्यक्तित्व रोमांटिक था। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि वह कोई मौलिक प्रणयन करे। भास की रचना मिली और कुछ नवीन तत्त्वों को जोड़ कर उसने मिट्टी की गाड़ी रच दी क्योंकि वह साधारण मिट्टी का मनुष्य था 'मृच्छकटिक' का प्रणयन-काल ईसा की छठी शताब्दी का अन्तराल रहा होगा।* दण्डी का समय ७०० ई० माना गया है। उसने 'काव्यादर्श' में 'मृच्छकटिक' के पद्य 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' को उद्धृत किया है, इस दृष्टि से शूद्रक का समय ईसा की ६ठीं शताब्दी ही निश्चत होती है।

मृच्छकटिक—शूद्रक की एक मात्र यही रचना प्राप्त होती है। मृच्छकटिक में दस अंक हैं, अतः शास्त्रीय दृष्टि से इसे प्रकरण की संज्ञा दी गई है। इसमें कवि ने ब्राह्मण चारुदत्त एवं वेश्या वसन्तसेना के प्रणय-प्रसंग का वर्णन किया है। मृच्छकटिक कई दृष्टियों से संस्कृत का विशिष्ट नाटक सिद्ध होता है। इसमें रंगमंच का शास्त्रीय टेकनीक

---

* महाकवि शूद्रक, पृ० १३७–१३८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अत्यधिक गठित है और रूढ़ि एवं परम्परा को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग इसका हास्य है। कथानक की विभिन्नता एवं वस्तु का वैचित्र्य, चरित्र की बहुलता एवं उनकी स्वतन्त्र तथा स्पष्ट वैयक्तिकता घटना-चक्र का गतिमान संक्रमण, सामाजिक राजनीतिक क्रांति और उच्चकोटि का हास्य मृच्छकटिक को विश्व-नाटक के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। नाटककार एवं कवि दोनों ही रूपों में शूद्रक की प्रतिभा विलक्षण सिद्ध होती है। डॉ० कीथ का कहना है कि "इस रूपक के गुण इतने पर्याप्त हैं कि लेखक की अनुचित प्रशंसा अनावश्यक है। इसके रचयिता माने जाने वाले शूद्रक को सर्वदेशीय होने का गौरव प्रदान किया गया है। 'कविता कामिनी के विलास' कालिदास और वश्यवाक् भवभूति में चाहे चितना अन्तर हो किन्तु मृच्छकटिक के लेखक की तुलना में इन दोनों का परस्पर भावना-साम्य कहीं अधिक है; शकुन्तला और उत्तररामचरित की रचना भारत के अतिरिक्त किसी भी देश में संभव नहीं थी, शकुन्तला एक हिन्दू नायिका है, माधव एक हिन्दू नायक है जबकि संस्थानक, मैत्रेय और मदनिका विश्व नागरिक हैं। परन्तु, यह दावा स्वीकार नहीं है। मृच्छकटिक अपने पूर्ण रूप में एक ऐसा रूपक है जो भारतीय विचारधारा और जीवन से ओत-प्रोत है।*

वस्तुतः मृच्छकटिक के पात्र भारतीय मिट्टी के पात्र होते हुए भी सार्वभौम भी हैं, इसमें किसी प्रकार की द्विधा नहीं है।

शूद्रक की शैली अत्यन्त सरल आकर्षक तथा स्पष्टता एवं सादगी से पूर्ण है। उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो क्लिष्ट पदावली से रहित तथा लम्बे-लम्बे समासों से मुक्त है। मुख्यतः उन्होंने वैदर्भी रीति का ही प्रयोग किया है, किन्तु यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार गौडी रीति भी अपनायी गई है। भावानुसार भाषा में परिवर्तन करने के कारण हीः यह शैली-भेद दिखाई पड़ता है। उसकी अभिव्यक्ति सबल है। वे अल्प शब्दों द्वारा चित्र खींचने की कला में दक्ष हैं। उन्होंने लम्बे-लम्बे चित्रणों से यथा सम्भव अपने को बचाया है और इसी कारण उनकी रचना रंगमंचोपयोगी हो गई है। पर, कहीं-कहीं जैसे वसन्तसेना के घर का विस्तृत वर्णन और वर्षा का विशद चित्रण मन को उबानेवाले सिद्ध होते हैं। शृङ्गार और करुणरसों के चित्रण में शूद्रक सिद्धहस्त हैं। उन्होंने दोनों ही रसों के बड़े मोहक चित्र अंकित किये हैं।

धन्यानि तेषां खलुजीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषुपरिष्वजन्ति ॥ ५।४९

"उन्हीं मनुष्यों का जीवन धन्य है; जो स्वयं घर में आई हुई कामिनियों के वर्षाकाल

* संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १३८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से भींगे एवं शीतल अंगों को अपने अंगों से आलिंगन करते हैं।'' वसन्सेना के शृङ्गारोद्दीपक ललित गति का चित्र देखने योग्य है—

किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना रक्तांशुकंपवनलोलदलं बहन्ती।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती टङ्कैर्मनः शिलगुहेव विदार्यमाणा॥

—१।२०

''अस्त्र द्वारा विदारित मनः-शिला के समान लाल-लाल समूहों को (पद पद्मों) से अंकित कर रही हो, वायु के स्पर्श से अंचल-चंचल हो रहा है। इस प्रकार लालवस्त्र धारण कर नवीन केले के समान क्यों काँपती हुई जा रही हो।'' कवि ने प्रकृति-चित्रण उद्दीपन के रूप में किया है। पंचम अंक का वर्षा-वर्णन अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। प्राकृत-प्रयोग की दृष्टि से मृच्छकटिक एक अपूर्व प्रयोग के रूप में दिखाई पड़ता है। इसमें सात प्राकृतों का प्रयोग हुआ है—शौरसेनी, मागधी, प्राच्या, शंकारी, चाण्डाली, अवन्तिका एवं ढक्की। इस नाटक में कवि ने अनेक ऐसे विषयों के वर्णन में सौन्दर्य ढूंढ़ा है जिनकी ओर किसी किसी का ध्यान नहीं जाता। शर्विलक के मुख से यज्ञोपवीत की उपयोगिता का वर्णन सुनने योग्य है—

एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्गा—
नेतेन मोचयति भूषणसंप्रयोगान्।
उदघाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनश्च॥

—३।१६

''इससे सेंध फोड़ते भीत नापी जाती है। इससे अंगों में संलग्न आभूषण निकाले जाते हैं। यह किल्ली द्वारा दृढ़ता पूर्वक बन्द किवाड़ खोलने में सहायक होता है तथा विषैले जीवों एवं सर्पों के काटने पर उसे बाँधने में काम देता है।''

नामकरण—'मृच्छकटिक' का नामकरण विचित्रता का द्योतक है। नाटक अथवा काव्य का नामकरण कवि पात्र अथवा मुख्य घटना या वर्ण्य-विषय के आधार पर किया जाता है। यदि इस दृष्टि से विचार किया जाय तो वर्ण्य-विषय के आधार पर इसकी अभिधा 'चारुदत्त' या 'दरिद्रचारुदत्त' होनी चाहिए थी। पर रचयिता ने किस आधार पर इसका यह नामकरण किया, इसका संकेत ६ठें अंक में चारुदत्त के बालक की क्रीड़ा में दिखाई पड़ता है। चारुदत्त का पुत्र रोहसेन अपने पड़ोसी के बच्चे को सोने की गाड़ी को खेलते हुए देखता है, और मिट्टी की गाड़ी से न खेल कर सोने की गाड़ी लेना चाहता है। चारुदत्त की चेटी रदनिक उसे बहलाती और कहती है कि जब तुम्हारे पिता जी पुनः समृद्ध हो जाएँगे तो तुम सोने की गाड़ी से खेलना। बालक जब इतने पर भी नहीं मानता है तो रदनिका उसे वसन्तसेना के घर ले जाती है। बालक को देखकर वसन्तसेना प्रसन्न हो गई और उसने उसके रोने का कारण पूछा। वसन्तसेना ने कहा कि बेटा तुम सोने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की गाड़ी से खेलना। बसन्तसेना की ममतामयी दृष्टि देखकर बालक ने पूछा कि रदनिके यह कौन है? इस पर वसन्तसेना ने कहा कि मैं तुम्हारे पिता के गुणों पर जीवित उन्हीं की दासी हूँ। वह वसन्तसेना की यह बात न समझ कर रदनिका की ओर उत्सुक होकर देखने लगा। इस पर रदनिका ने कहा कि ये तुम्हारी जननी हैं। पर, बालक को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ और उसकी बातों में उसे संगति नहीं दिखाई पड़ी। उसकी मां के शरीर पर आभूषण नहीं थे, जबकि वसन्तसेना का शरीर गहनों से पूर्ण था। अतः वह रदनिका से कहता है कि तुम झूठ बोल रही हो, यह मेरी मां नहीं है। यदि मेरी मां होतीं तो उसे इतने गहने कैसे होते? बच्चे की बातें सुनकर वसन्तसेना का हृदय ममता से भर जाता है, और वह अपने सभी आभूषणों को उतार कर उसकी गाड़ी में भर देती है। वह बच्चे से कहती है कि अब तो मैं तेरी मां बन गई न, ले इन गहनों से सोने की गाड़ी बनवा ले।

उपर्युक्त घटना ही इस नाटक के नामकरण का आधार है। पर, यहाँ प्रश्न उठता है कि इस घटना का नामकरण से क्या सम्बन्ध है? इस नाटक का मृच्छकटिक नाम प्रतीकात्मक है तथा असन्तोष का प्रतीक है। 'मृच्छकटिक' के अधिकांश पात्र अपनी स्थिति से असन्तुष्ट है और उसके असन्तोष की झलक इस नाटक में मिलती है। वसन्तसेना सुलभ शकार को प्यार न कर सर्वगुण सम्पन्न चारुदत्त को चाहती हैं। चारुदत्त भी धूता से असन्तुष्ट है और वह वसन्तसेना की ओर आकृष्ट होता है। बालक रोहसेन भी मिट्टी की गाड़ी से सन्तुष्ट नहीं है और वह सोने की गाड़ी चाहता है। कवि ने यह दिखाया है कि जो लोग अपनी परिस्थितियों से असन्तुष्ट होकर एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, वे जीवन में अनेक कष्ट उठाते हैं। इस प्रकार अनेक पात्रों का असन्तोष सर्वव्यापी है, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति को कष्ट उठाना पड़ता है। अतः इसका नाम सार्थक और मुख्यवृत्त का अंग है। इस अभिधा का दूसरा कारण यह है कि रचयिता का ध्यान सुवर्ण की महिमा दिखाते हुए भी चारुदत्त की दरिद्रता एवं रोहसेन की मिट्टी की गाड़ी पर विशेष रूप से है। कवि ने वसन्तसेना की समृद्धि पर ध्यान न देकर उसके शील पर विचार किया है। इसी प्रकार चारुदत्त की दरिद्रता ही उसके शील का प्रतीक है, जिसकी छाया रोहसेन की गाड़ी पर दिखाई पड़ती है। वस्तुतः कवि वसन्तसेना के वैभव को महत्त्व न देकर चारुदत्त की महत्ता को स्वीकार करता है। अतः इसका नाम 'मृच्छकटिक' उपर्युक्त सिद्ध होता है, क्योंकि वह चारुदत्त की दरिद्रता का परिचायक है।

कथावस्तु की योजना—महाकवि शूद्रक ने भास-रचित 'चारुदत्त' नामक नाटक की कथावस्तु को आधार बनाकर इसकी रचना की है किन्तु दोनों के रचना-विधान एवं प्राकृत भाषा के प्रयोग में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। इसमें कवि ने अपनी प्रतिभा के प्रकाश में कतिपय नवीनताएँ प्रदर्शित की हैं। भास ने चारुदत्त में केवल वसन्तसेना एवं चारुदत्त की प्रणय-कथा का ही सन्निवेश किया था, किन्तु शूद्रक ने राजनैतिक कथा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नक को गुंफित कर नवीनता प्रदर्शित की है। इसमें प्रेमियों का भाग्य नगर के राजनैतिक भाग्य के साथ सम्बद्ध हो गया है। द्वितीय अंक में जुआड़ियों के दृश्य का नियोजन कवि की मौलिक कल्पना है, जिससे नाटक जीवन के अधिक निकट आ गया है और इसमें अपूर्व आकर्षण का समावेश हुआ है। कवि ने शकार के चरित्र के माध्यम से हास्य की योजना की है तथा अन्य पात्रों के माध्यम से हास्य की सृष्टि की है, अतः मृच्छकटिक' का हास्य शूद्रक की निजी कल्पना के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें कवि ने अनेक नवीन पात्रों की कल्पना कर अपनी मौलिकता प्रदर्शित्त की है। टीकाकार ने विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत का भी निर्देश किया है। (१) शौरसेनी—सूत्रधार, नटी, वसन्तसेना, मदनिका, धूता, कर्णपूरक, रदनिका, शोधनक, श्रेष्ठी। (२) अवन्तिका— वीरक, चन्दनक। (३) प्राच्या—विदूषक, (४) मागधी—संवाहक, स्थावरक, कुम्भीलक, वर्धमानक, रोहसेन, भिक्षु। (५) शकारी—शकार, (६) चाण्डाली—चाण्डाल, (७) ढक्की—सभिक (द्यूतकार) माथुर।

'मृच्छकटिक' का वस्तु-विधान संस्कृत नाट्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह संस्कृत का प्रथम यथार्थवादी नाटक है, जिसे दैवी कल्पनाओं एवं आभिजात्य वातावरण से मुक्त कर कवि यथार्थ के कठोर धरातल पर अधिष्ठित करता है। शास्त्रीय दृष्टि से जहाँ यह एक ओर प्रकरण का रूप उपस्थित करता है, वहाँ पाश्चात्य ढंग की कौमदी की भाँति भी मनोरंजकता से पूर्ण लगता है। प्रकरण में कविकल्पित कथावस्तु का विधान किया जाता है, और इसका नायक कोई इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति न होकर धीर प्रशान्त लक्षण से युक्त कोई ब्राह्मण, वणिक् अथवा अमात्य होता है। इसकी नायिका कुलजा अथवा वेश्या दोनों में से कोई एक या दोनों ही होती है। इसका कथानक मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों से सम्बद्ध होता है, अतः इसमें मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलताएँ प्रदर्शित की जाती हैं। इसके पात्रों में कितव (धूर्त), द्यूतकार, सभिक, विट, चेट आदि होते हैं। इस दृष्टि से मृच्छकटिक प्रकरण सिद्ध होता है, नाटक नहीं। प्रकरण में दस अंक होते हैं, जो इस प्रकरण में भी हैं। पाश्चात्य कथा-विकास की दृष्टि से इसकी पाँच अवस्थाएँ दिखाई पड़ती हैं—प्रारम्भ, विकास, चरम सीमा, निगति एवं अन्त। प्रथम अंक में वसन्त सेना का चारुदत्त के घर अपने आभूषणों को रखने से कथा का प्रारम्भ होता है। इसके बाद कथानक का आगे विकास होता है। वसन्तसेना के आभूषणों का चुराया जाना तथा उसके बदले में धूता का रत्नमाला देना एवं वसन्तसेना का अभिसार विकासावस्था के सूचक हैं। शकट-परिवर्त्तन और वसन्तसेना की शकार द्वारा हत्या चरम सीमा के अन्तर्गत हैं। अन्तिम अंक में चारुदत्त का प्राण दण्ड निगति और वसन्तसेना तथा चारुदत्त के विवाह की राजाज्ञा अन्त है। भारतीय कथा-विधान के विचार से 'मृच्छकटिक' में अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं एवं सन्धियों का नियोजन अत्यधिक सफलता पूर्वक किया गया है। इसके प्रथम अंक में वसन्तसेना का पीछा करते हुए

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शकार के इस कथन में नाटक का 'बीज' प्रदर्शित हुआ है—'भाव ! भाव ! एषा गर्भदासी कामदेवापतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता, न मां कामयते।' (मृच्छकटिक, पृ० ५२, चौखम्बा संस्करण)। द्वितीय अंक में कर्ण पूरक का वसन्तसेना को चारुदत्त का प्रवारक दिखाना एवं उसका (वसन्तसेना का) प्रसन्न होना 'बिन्दु' है।

तृतीय अंक में जुआड़ियों का प्रसंग मूल कथा को विच्छिन्न कर देता है और यह घटना प्रासंगिक कथा के रूप में प्रकट होती है। यहीं से शर्विलक का चरित्र प्रारम्भ होता है और मूल कथा के अन्त तक चलता है। अतः शर्विलक की कथा 'पताका' एवं परिव्राजक भिक्षु का प्रसंग 'प्रकरी' है। अन्त में चारुदत्त द्वारा वसन्तसेना को पत्नी के रूप में स्वीकार करना 'कार्य' है। कार्यावस्था का विधान इस प्रकार है—प्रथम अंक में वसन्तसेना का चारुदत्त के गृह में आना तथा चारुदत्त का उसकी ओर आकर्षण 'आरम्भावस्था' है। वसन्तसेना का चारुदत्त के गृह में अपने आभूषण रख कर जाने से लेकर पंचम अंक पर्यन्त तक की घटना 'यत्न' है। इसी बीच दो प्रयत्न दिखाई पड़ते हैं—वसन्तसेना का आभूषण छोड़कर जाना तथा धूता के आभूषण को वसन्तसेना के पास चारुदत्त द्वारा भिजवाया जाना। छठे अंक से लेकर दसवें अंक तक की घटनाएँ प्राप्त्याशा के रूप में उपस्थित होती हैं। इन घटनाओं में फल-प्राप्ति की आशा अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में दोलायमान रहती है। बौद्धभिक्षु के साथ वसन्तसेना का सहसा आगमन 'नियताप्ति' है और वसन्तसेना तथा चारुदत्त का विवाह 'फलागम'। इसमें पंच सन्धियों का विधान भी उपयुक्त है। प्रथम अंक के प्रारम्भ से वसन्तसेना के इस कथन में 'चतुरोमधुरश्चायमुपन्यासः' (स्वगत कथन) 'मुखसन्धि' दिखाई पड़ती है। 'प्रतिमुखसन्धि' प्रथम अंक में ही वसन्तसेना के इस कथन से प्रारम्भ होती है—'आर्यः यद्येव महमार्यस्य अनुग्राह्या' और पंचम अंक के अन्त तक दिखाई पड़ती है। छठे अंक के प्रारम्भ से लेकर दसवें अंक तक, चाण्डाल के हाथ से खड्ग छूट जाने एवं वसन्तसेना के इस कथन में—'आर्याः ! एष अहं मन्दभागिनी यस्याः कारणादेष व्यापद्यते'—'गर्भसन्धि' है। अन्तिम अंक में चाण्डाल की उक्ति—'त्वरितं का पुनरेषा' एवं शकार के इस कथन में—'आश्चर्यः प्रत्युज्जीवितोऽस्मि' तक 'अवमर्शसन्धि' चलती है। इसी अंक में 'नेपथ्ये कलकलः' से लेकर अन्त तक 'निर्वहण सन्धि' दिखाई पड़ती है। इस प्रकार 'मृच्छकटिक' का वस्तुविधान अत्यन्त सुन्दर तथा शास्त्रीय स्वरूप का निर्वाह करने वाला है। इसमें कथावस्तु के तीन सूत्र दिखाई पड़ते हैं जो परस्पर गुंफित हैं—वसन्तसेना एवं चारुदत्त का प्रणय-प्रसंग, शर्विलक तथा मदनिका की प्रेम-कथा एवं राजनैतिक क्रान्ति जिसके अनुसार अत्याचारी राजा पालक का विनाश एवं गोपालपुत्र आर्यक का राज्याभिषेक होता है। इनमें वसन्तसेना और चारुदत्त की प्रणय-कथा आधिकारिक कथा है और शेष दोनों कथाएँ प्रासंगिक हैं। इनमें नाटक को आधिकारिक या मुख्य कथा की अपनी विशिष्टताएँ हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसकी पहली विशेषता यह है कि यह प्रेम नायक की ओर से प्रारम्भ न होकर नायिका की ओर से होता है। वसन्तसेना चारुदत्त के प्रेम को प्राप्त करने के लिए अधिक क्रियाशील एवं सचेष्ट हैं, जब कि नायक निष्क्रिय दिखाई पड़ता है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि मध्य में आकर प्रेम पूर्णता को प्राप्त करता है तथा पुनः इसमें अप्रत्याशित रूप से नया मोड़ आता है और प्रेम में बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, किन्तु अन्त होते-होते नायिका का प्रेम पूर्ण हो जाता है। शर्विलक और मदनिका की प्रणय-कथा मुख्य कथा को गति देनेवाली है; क्योंकि शर्विलक ही राजनैतिक क्रान्ति का एक प्रधान अंग है। कथा को फल की ओर ले जाने में उसका महत्त्वपूर्ण योग दिखाई पड़ता है। राजनैतिक क्रान्ति की घटना के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों का मन्तव्य है कि यह एक स्वतन्त्र कथा है और इसको पुस्तक से निकाल दिया जाय तो आधिकारिक कथा को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचेगी। इसीलिए सम्भवतः भास ने अपने नाटक में इस कथा को स्थान नहीं दिया है। प्रो० राइडर का विचार है कि यह रूपक अत्यन्त विस्तृत है तथा इसमें दो नाटकों की सामग्री है। उसके अनुसार राजनैतिक क्रान्ति की कथा के कारण अंक दो से पाँच तक की मुख्य कथा दब गयी है और प्रेक्षकों को पता नहीं चलता कि वे वसन्तसेना और चारुदत्त की कथा का अवलोकन कर रहे हैं। पर, वस्तुतः यह बात नहीं है। इसकी प्रासंगिक कथा मुख्य घटना से पृथक् न होकर उसी में अनुस्यूत दिखाई पड़ती है और क्रान्ति की घटना मुख्य कथा को फल की ओर अग्रसर करने में महत्त्वपूर्ण योग दिखाती है। इसके सभी मुख्य पात्र मुख्य घटना से सम्बद्ध हैं और वे फलागम में सहायक होते हैं। आर्यक का राज्यारोहण चारुदत्त के अनुकूल पड़ता है और राजाज्ञा से ही वह वसन्तसेना को वधू के रूप में ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रासंगिक कथा मुख्य कथा पर शासन न कर उसके विकास में गति प्रदान करती है। कवि ने तीनों कथाओं को बड़ी कुशलता के साथ परस्पर संश्लिष्ट कर अपने प्रकरण को उत्तम बनाया है।

इन सारी विशिष्टताओं के बाद भी 'मृच्छकटिक' में अभिनय-सम्बन्धी अनेक दोष दिखलाई पड़ते हैं। चतुर्थ अंक में वसन्तसेना के भवन एवं सात आँगन का वर्णन अधिक विस्तृत एवं दर्शकों के धैर्य की परीक्षा लेने वाला है। पाँचवें अंक का वर्षा-वर्णन भी नाटकीय दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखता और वह इतना विस्तृत है कि दर्शक ऊबने लगते हैं। काव्य की दृष्टि से, अवश्य ही, इस वर्णन का महत्त्व है, रंगमंच के विचार से यह ऊब पैदा करने वाला है। किन्तु ये दोष बहुत अल्प हैं और 'मृच्छकटिक' का महत्त्व इससे कम नहीं होता।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण—'मृच्छकटिक' में अनेक प्रकार के पात्रों का शील-निरूपण किया गया है। कवि ने समाज के ऐसे चरित्रों का भी चित्रण किया है जो हेय एवं उपेक्षित हैं। चोर, द्यूतकार, चेट, विट आदि इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका उपस्थित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करते हैं। इन पात्रों के व्यक्तित्व की निजी विशिष्टताएँ हैं तथा ऐसे पात्र अन्यान्य संस्कृत नाटकों में नहीं दिखाई पड़ते। इन पात्रों के अतिरिक्त धनी, वेश्या, दरिद्र-प्रेमी, राज-पदाधिकारी, न्यायाधीश, अत्याचारी राजा, विद्वान् तथा राजा का बिगड़ा हुआ साला का भी इसमें वर्णन किया गया है।

चारुदत्त—चारुदत्त इस नाटक का नायक और जन्मना ब्राह्मण है; किन्तु वह व्यवहार से व्यापारी है। प्रस्तावना में सूत्रधार ने इसे—'अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहः' कहकर इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है। दशम अंक में चारुदत्त ने स्वयं अपने को ब्राह्मण कहा है और दाय के रूप में अपने पुत्र को यज्ञोपवीत दिया है—'अमौक्तिकमसौवर्णं-ब्राह्मणानां विभूषणम्'। उसके पूर्वज अत्यधिक सम्पत्तिवान् थे, किन्तु वह समय के फेर से दरिद्र हो गया है। उसकी दरिद्रता का एक बड़ा कारण उसकी दानशीलता भी है। इसके चरित्र में कतिपय ऐसे गुण हैं जिनके कारण वह उज्जयिनी के नागरिकों का श्रद्धा-भाजन बना हुआ है, वे हैं—दान, दया, उदारता तथा परोपकार आदि। उसकी प्रशंसा उसका प्रतिद्वन्द्वी शकार भी करता है—

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी,
आदर्शः शिक्षितानां सुचरित-निकषः शीलवेला समुद्रः।
सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो,
ह्येकः श्लाघ्य स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥

"जो दरिद्र मनुष्यों की वांछितपूर्त्ति के लिए कल्पतरु है। अपने ही दयादि गुणों से विनम्र, साधुओं के परिपोषक, विनीतो के आदर्श, सच्चरितों की कसौटी, सदाचार रूपी मर्यादा के सागर, लोकोपकारी, किसी का भी अपमान न करने वाले, मानवों के गुणों के स्थान तथा सरल एवं उदार चित्तवाले—अनेक गुणों से युक्त अकेले चारुदत्त का ही जीवन प्रशंसनीय है और लोगों का जीवन तो व्यर्थ ही है।" चारुदत्त के इन्ही गुणों के कारण वसन्तसेना उसकी ओर आकृष्ट होती है। जब मैत्रेय धूता का आभूषण लेकर उसके यहाँ पहुँचता है तो वह उसके गुणों की प्रशंसा करती हुई उसका समाचार पूछती है—"उदारता आदि गुण जिसके पल्लव हैं, नम्रता ही विनम्र शाखाएँ हैं, विश्वास ही जड़ है, गौरव पुष्प है, परोपकार आदि गुण ही से जो फलवान् हो रहा है उस चारुदत्त रूपी उत्तम वृक्ष पर मित्ररूपी पक्षी क्या अब भी सुखपूर्वक निवास करते हैं।" संवाहक चारुदत्त की प्रशंसा करते हुए कहता है कि इस पृथ्वी पर तो केवल आर्य चारुदत्त का ही जीवन है, अन्य तो व्यर्थ ही जीवित हैं। समय के फेर से चारुदत्त दरिद्र हो गया है और उसे इसके लिए दुःख होता है। वह अपने घर की सफाई भी नहीं करा सकता तथा उसके द्वार पर लम्बी-लम्बी घासें उग आयी हैं। वह दरिद्रता के कारण न तो अतिथि-सत्कार कर सकता है और न दूसरों की सेवा ही करने में समर्थ है। वह दारिद्रय से ऊब कर कष्टमय जीवन की अपेक्षा मृत्यु का वरण श्रेयष्कर मानता है। उसके मित्र

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा परिजन उसे छोड़ कर पृथक् हो गए हैं। उसे अपनी कीर्त्ति की चिन्ता सदा बनी रहती है। वह सत्यनिष्ठ है। शर्विलक द्वारा चुराये गए वसन्तसेना के गहनों को धोखा से छिपाना नहीं चाहता, बल्कि उसके बदले में अपनी स्त्री की रत्नमाला भिजवा देता है। वह मैत्रेय द्वारा उसके लिए आभूषण भेजकर झूठी बात कहला देता है कि वह उसका आभूषण जूए में हार गया है; किन्तु इससे उसको सत्यनिष्ठा पर आँच नहीं आती; क्योंकि वह कभी-कभी असत्य भाषण करता भी है तो अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए या दूसरों के कल्याण के लिए।

वह अपने घर में चोर द्वारा सेंध लगाये जाने पर प्रसन्न होता है कि चोर खाली हाथ नहीं गया; क्योंकि उसे इस बात की चिन्ता होती कि इतने बड़े सार्थवाट के घर सेंध मारने पर भी चोर को कुछ नहीं मिलता और वह सब जगह जाकर चारुदत्त की दरिद्रता की चर्चा करता है। वह इसलिए दुःखित रहता है कि दरिद्रता के कारण ही परिजन उसका साथ छोड़ चुके हैं और अतिथि नहीं आते। [१।१२] दीनावस्था में भी वह अपने वंश की कीर्त्ति को सुरक्षित रखता है। वह मतवाले हाथी से भिक्षुक का प्राण बचाने के लिए कर्णपूरक को अपना प्रावारक पुरस्कार में देता है। जब चेट द्वारा उसे वसन्तसेना के आगमन की सूचना प्राप्त होती है तो वह उसे वस्त्र देता है; किन्तु उसे पारितोषिक न दे सकने के कारण दुःखित हो जाता है।

उसमें आत्म-सम्मान का भाव पूर्ण रूप से भरा हुआ है। वह कलंकित होने से डरता है, किन्तु मृत्यु से नहीं डरता—

'न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि मे भृत्युः पुत्रजन्म समोभवेत्॥ —१०।२७

वह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है तथा नित्य पूजन एवं समाधि में निरत रहता है। विदूषक द्वारा देवपूजा में अश्रद्धा प्रकट करने पर वह उसे कहता है कि यह गृहस्थ का धर्म नहीं—'वयस्य ! मा मैवम्। गृहस्थस्य नित्योऽयं विधिः'। इस प्रकरण का नायक होते हुए भी चारुदत्त का प्रत्यक्ष रूप से इसकी घटनाओं पर नियंत्रण नहीं है। वह प्रेम के भी क्षेत्र में निष्क्रिय-सा बना रहता है। चारुदत्त गम्भीर एवं चिन्तनशील प्रवृत्ति का व्यक्ति है और दरिद्रता ने ही उसे दरिद्रता का दार्शनिक बना दिया है। उसने निर्धनता के जिस दर्शन का निरूपण किया है, उससे इस तथ्य की पुष्टि होती है। "निर्धनता से लज्जा होती है, लज्जित मनुष्य तेज़हींन हो जाता है, निस्तेज लोक से तिरस्कृत होता है, पुनः तिरस्कार के द्वारा विरक्त हो जाता है, फिर बुद्धिहीन होने पर सर्वनाश की अवस्था आ जाती है—अहो ! दरिद्रता सब विपत्तियों की जड़ है।"

वह धर्म-परायण होने के कारण भाग्यवादी भी है तथा शकुनों में विश्वास करता है; क्योंकि ये मनुष्य के भाग्य को रहस्यमय ढंग से नियन्त्रित करते हैं। वह अपनी निर्धनता का मुख्य कारण भाग्य को मानता है। न्यायालय में विदूषक की असावधानता के कारण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आभूषण के गिर जाने को भी वह भाग्य का ही खेल स्वीकार करता हैं—'अस्माकं भाग्यदोषात् पतितः पातिष्यति ।' प्रेमी के रूप में उसका व्यक्तित्व नियंत्रित है । वह प्रेम करता है; किन्तु प्रेमिल भावनाओं के आवेश में नहीं आता । वसन्तसेना से प्रेम करते हुए भी अपनी, पत्नी धूता से उदासीन नहीं रहता । उसमें चारित्रिक दृढ़ता भी पायी जाती हैं । अन्य स्त्री से अपने वस्त्र का स्पर्श होने से खेद प्रकट करता है—'अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वाससा ।' वसन्तसेना के प्रति उसका आकर्षण स्वाभाविक न होकर परिस्थिति-जन्य है । वास्तविकता यह है कि वसन्तसेना ही उसकी ओर आकृष्ट है और इसीलिए चारुदत्त उसकी ओर आकृष्ट होता है । वसन्तसेना के प्रति उसका अन्धप्रेम दिखाई नहीं पड़ता, अपितु कर्त्तव्य बुद्धि से परिचालित है । वह अपनी पत्नी की चारित्रिक उदारता से प्रभावित है, और इसके लिए उसे गर्व है । वह उसे विपत्ति की सहायिका मानता है और वसन्तसेना के आभूषण के बदले रत्नमाला प्राप्त कर हर्षित हो जाता है—'नाहं दरिद्रः यस्य मम विभावानुगता भार्या ।' वसन्तसेना के रहते हुए भी उसके प्राणदण्ड की सूचना प्राप्त कर चितारोहण करनेवाली धूता को बचाने के लिए दौड़ पड़ता हैं । इससे ज्ञात होता है कि वसन्तसेना का प्रेम उसके दाम्पत्य-जीवन की मधुरता को क्षीण नहीं करता । पुत्र के प्रति भी उसका स्नेह दिखाई पड़ता है और मृत्यु-दण्ड पाने पर पुत्र-दर्शन की ही अभिलाषा करता है ।

चारुदत्त कलाप्रिय व्यक्ति है वह रेभिल के संगीत की प्रशंसा करता है तथा सेंध लगाने की कला को देख चोरी की चिन्ता छोड़कर उसकी प्रशंसा करता है । इसप्रकार चारुदत्त दानी, उदार, गम्भीर, धार्मिक, सहृदय, प्रेमी, परोपकारी एवं शरणागतवत्सल व्यक्ति के रूप में उपस्थित होता है ।

वसन्तसेना—वसन्तसेना 'मृच्छकटिक' प्रकरण की नायिका एवं उज्जयिनी की प्रसिद्ध वेश्या है । वह ऐसी वेश्या युवती के रूप में चित्रित है जो अपने दृढ़ संकल्प एवं चारित्रिक शालीनता के कारण कुलवधू बन जाती है । प्रो० जागीरदार के अनुसार वह 'यौवन के आनन्द का प्रतीक है । उसका प्रेम अदमनीय एवं उत्तरदायित्व की भावना से युक्त है। यह तथ्य है कि वह गणिका से कुल-स्त्री बनने का अथक प्रयास करती रही है और अपने प्राणों को संकट में डाल कर भी उसने यह पद प्राप्त कर लिया है, इस बात का प्रमाण है कि वसन्तसेना केवल-मात्र जीवन का आनन्द नहीं है । वह, अपितु, आनन्द खोजी जीवन का संयम एवं साहस है ।·········वसन्तसेना में जीवन भोग की लालसा है, लेकिन वह करणीय पात्र की पात्रता की भावना से अनुप्राणित है, मर्यादित है ।* उसने अपने चरित्र की दृढ़ता, उदारता, त्याग एवं विशुद्ध प्रेम के कारण गणिकात्व के कालुष्य को प्रच्छालित कर भारतीय गृहिणी का पद प्राप्त कर लिया है । उसके पास अपार सम्पत्ति है, पर

* महाकवि शूद्रक, पृ० २८६

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वह दरिद्र चारुदत्त के प्रति आसक्त है। वह धन से प्रेम न कर गुण के प्रति आकृष्ट होती है। उसके अपार वैभव को देखकर विदूषक मैत्रेय आश्चर्य चकित हो जाता है, और उसकी अष्ट अट्टालिकाओं को देखकर कह उठता है कि 'यह गणिका का गृह है या कुबेर का भवन है।' वैभवशालिनी वसन्तसेना का दरिद्र एवं गुणशाली चारुदत्त के प्रति आकृष्ट होना उसके हृदय के सच्चे अनुराग एवं पवित्रता का द्योतक है। वह राजा के साले शकार के अपूर्व वैभव का त्याग कर चारुदत्त का वरण करती है और यहाँ तक कि अपनी माता द्वारा शकार के प्रति प्रेम करने के अनुरोध का तिरस्कार करती है। वह माता को स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि वह उसे जीवित रहने देना चाहती है तो इस प्रकार का अनुरोध न करे। जीर्णोद्यान में शकार द्वारा स्वयं प्रलोभन देने पर उसके आग्रह का तिरस्कार करती है तथा उसके हाथों मरना श्रेयस्कर समझकर उसका प्रणय-निवेदन स्वीकार नहीं करती। वह उसके द्वारा प्रेषित दस सहस्र के मूल्य के स्वर्णाभूषणों को ग्रहण नहीं करती। चारुदत्त के प्रति उसका प्रेम इतना सचा है कि शकार द्वारा गला घोंटे जाने पर उसी का स्मरण कर 'णमो अज्ज चारुदत्तस्स' कहती है। वह चारुदत्त के प्रति अपने आकर्षण को अपना गौरव मानती है और अपनी मां से कहती है कि दरिद्र व्यक्ति के प्रति आसक्त गणिका निन्दनीय नहीं मानी जाती। विट उसके प्रति अपना विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि यद्यपि वह वेश्या है, किन्तु उसका प्रेमिल व्यवहार वेश्याओं में दिखाई नहीं पड़ता। उसके हृदय में सचा मातृवात्सल्य भरा हुआ है। चारुदत्त के पुत्र रोहसेन के द्वारा यह कहने पर कि यह मेरी माता नहीं है, क्योंकि यह तो आभूषणों से लदी हुई है; वह फूट पड़ती है और उसकी बातों पर मुग्ध होकर अपने आभूषण उसकी गाड़ी में भर देती है।

उसके चरित्र की अन्य विशेषताएँ हैं—कोमलता, विनम्रता, उदारता, स्निग्धता, विनोदप्रियता एवं बुद्धि की सतर्कता। मदनिका को दासीत्व से मुक्त कर वह शर्विलक को सौंपते हुए अपूर्व उदारता का परिचय देती है। वह अपने सारे आभूषण मदनिका को ही समर्पित कर अपनी वाग्चातुरी का भी परिचय देती है। वह बुद्धिमत्तापूर्ण असत्य भाषण करती है—"आर्य चारुदत्त ने मुझसे कहा है कि—'जो कोई इस अलंकार को लौटावेगा उसके लिए मदनिका को समर्पित कर देना।' इसीलिए मदनिका आपको दी जा रही है। शर्विलक को मदनिका को समर्पित करने से वह मदनिका के लिए 'बन्दनीय' बन जाती है। चारुदत्त के प्रति अनुरक्त होते हुए भी उसे अपने गणिका होने का स्मरण होता है। वह कुलीन के घर में प्रवेश करने में संकोच करती है तथा चारुदत्त के यह कहने पर कि अन्दर चलो वह मन-ही-मन कहती है कि मैं आपके अन्तःपुर में प्रवेश करने के लिए अभागिनी हूँ। इससे पता चलता है कि वह मर्यादा का उल्लंघन करना नहीं जानती। राजमार्ग पर शकार उसका पीछा करता है और विट भी उसके साथ है। वह विट के अर्थगर्भित वचनों का अर्थ समझ कर चारुदत्त के घर पहुँच जाती है। इससे उसकी बुद्धिमत्ता का ज्ञान होता है। वह विदुषी है एवं यदाकदा संस्कृत भाषण भी करती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वह चित्र बनाने की कला में भी निपुण है तथा चारुदत्त का चित्र बनाकर मदनिका को दिखाती है। उसमें एक मात्र वेश्या का गुण दिखाई पड़ता है और वह है प्रणय-क्षेत्र में सक्रियता। सम्पूर्ण प्रणय-व्यापार में चारुदत्त निष्क्रिय रहता है और वसन्तसेना की ओर से ही सारे प्रयास होते हैं। इस प्रकार शूद्रक ने वसन्तसेना का चित्रांकन कर उसमें स्त्रीत्व के उत्तम गुणों को दर्शाया है तथा गणिका होते हुए भी, सद्गुणों के कारण उसे कुलवधू के पावन पद पर अधिष्ठित कराया है।

शकार— वह चारुदत्त का प्रतिद्वन्द्वी तथा राष्ट्रियश्यालक है और इस प्रकरण में खलनायक के रूप में चित्रित किया गया है। वह अपने ढंग का अद्भुत एवं विरल पात्र है जिसमें विदूषकत्व तथा खलनायकत्व का मिश्रण कराया गया है। उसकी हास्यास्पद एवं मूर्खतापूर्ण उक्तियों से नाटक में हास्य की सृष्टि कराई गई है और वह अपनी बेवकूफी भरी बातों से प्रेक्षकों को गुदगुदा देता है। वह दूषित प्रकृति का व्यक्ति है और प्रवंचना, धृष्टता, नीचता, अज्ञता, असत्यता, हठधर्मिता, मूर्खता, कायरता, क्रूरता एवं विलासिता आदि परस्पर अनमिल तत्त्वों के मेल से उसके विचित्र व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। वह बोलने में सदा 'स' के स्थान पर 'श' का प्रयोग करता है तथा पौराणिक घटनाओं एवं नामों को उलट कर अपनी मूर्खता प्रदर्शित करता है। वह राम से डरी हुई द्रौपदी की भाँति वसन्तसेना का पीछा कर रहा है और वह उसे इस प्रकार हरण कर लेगा जैसा विश्वावसु की बहिन सुभद्रा को हनुमान् ने हर लिया था। वह मूर्ख एवं हास्यास्पद होते हुए भी धूर्त तथा दुष्ट है। वह वसन्तसेना को आकृष्ट करने में असफल होकर उसकी हत्या कर देता है और उल्टे चारुदत्त पर हत्या का अभियोग लगाकर उसे प्राण-दण्ड की राजाज्ञा करा देता है। राजा का साला होने के कारण राजपदाधिकारियों, यहाँ तक कि न्याया-धीश पर भी उसका प्रभाव है। उसके स्वभाव में स्थिरता किंचित् मात्र भी नहीं दिखाई देती और यह भी ज्ञात नहीं होता कि वह कब क्या नहीं कर देगा। उसके इस अविवेकी तथा दुराग्रही स्वभाव के कारण उसके विट एवं चेट भी सदा उससे शंकित रहते हैं। वह विट को दीवार पर भी गाड़ी चढ़ा देने का मूर्खतापूर्ण आदेश देता है। वह गाड़ी में स्त्री को भी देखकर भयभीत हो जाता है और इसलिए दुःख प्रकट करता है कि एक स्त्री की हत्यारूपी वीरतापूर्ण कार्य को देखने के लिए उसकी माता विद्यमान नहीं है।

वह मूर्ख होते हुए भी धूर्त्त है और षड्यन्त्र में अपनी चतुरता प्रदर्शित करता है। वह चतुराई से विट को भगाकर वसन्तसेना की हत्या कर देता है और जब विट उसके इस क्रूर कर्म की भर्त्सना करता है तो वह उल्टे उस पर हत्या का झूठ आरोप लगाकर उसे भयभीत कर देता है। वह चेट को बाँध भी देता है और वह किसी प्रकार (मुक्त होकर) छूट कर उसके रहस्य का उद्घाटन करता है तो वह विट को आभूषण का प्रलो-भन देकर न्यायाधीश के समक्ष उसे आभूषण चुरा लेने का अभियोग लगा देता है। इस

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकार चारुदत्त के विपरीत अमानुषिक गुणों से समन्वित दिखाकर लेखक ने इसे खल-नायक का रूप दिया है।

इस प्रकरण के अन्य पात्रों में मैत्रेय विट, शर्विलक, रोहसेन, धूता आदि भी हैं, जिनका अपना निजी वैशिष्ट्य है। इसमें कवि ने समाज के विविध वर्गों के व्यक्तियों का चरित्रांकन कर संस्कृत में सर्वथा नवीन शैली की कृति प्रस्तुत की है। अधिकांशतः निम्न श्रेणी के पात्रों का चरित्र वर्णित करने के कारण यह प्रकरण यथार्थवादी हो गया है।

रस—मृच्छकटिक एक प्रकरण है जिसमें गणिका वसन्तसेना के प्रेम का वर्णन करने के कारण शृङ्गाररस अंगी (प्रधान) है। इसमें शृङ्गाररस के उभय पक्षों—संयोग एवं विप्रलम्भ—में से संयोग की ही प्रधानता है। शृङ्गाररस का स्थायी भाव रति वसन्त-सेना के ही हृदय में अंकुरित होता है और चारुदत्त इसका आलंबन बनता है। उद्दीपन के रूप में प्रेम की अनेक घटनाओं का चित्रण है तथा पंचम अंक का प्रकृति-चित्रण एवं वर्षा का सुन्दर वर्णन उद्दीपन के ही अन्तर्गत आते हैं। इसमें वसन्तसेना के विरह-वर्णन में वियोग का भी रूप प्रदर्शित किया गया है तथा हास्य एवं करुण रस की भी योजना की गई है। शूद्रक के हास्य-वर्णन की अपनी विशेषता है जो संस्कृत साहित्य में विरल है। इसमें हास्य गम्भीर, विचित्र तथा व्यंग्य के रूप में मिलता है। कवि ने हास्यास्पद चरित्र एवं हास्यास्पद परिस्थितियों के अतिरिक्त विचित्र वार्तालापों एवं श्लिष्ट वचनों से भी हास्य की सृष्टि की है। मैत्रेय (विदूषक) एवं शकार दो पात्रों द्वारा हास्य उत्पन्न होता है। जुआड़ी संवाहक के चरित्र में भी हास्य का पुट दिया गया है। चारुदत्त की दरिद्रता के चित्रण में करुण रस की व्यंजना हुई है। शकार द्वारा वसन्तसेना का गला घोंटने पर विट के विलाप में भी करुण रस की सृष्टि हुई है तथा धूता के चितारोहण एवं चारुदत्त के मृत्युदण्ड मिलने पर मैत्रेय तथा उसके पुत्र के रुदन में करुणरस दिखाई पड़ता है।

हर्षवर्धन

कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धन संस्कृत के प्रख्यात नाटककार थे। उन्होंने ६०६ ई० से ६४८ ई० तक शासन किया था। उन्होंने जहाँ बाणभट्ट, मयूर प्रभृति कवियों को अपने यहाँ आश्रय देकर संस्कृत-साहित्य की श्रीवृद्धि में योग दिया, वहीं स्वयं साहित्य-सर्जन कर भारती की सेवा की। उनके जीवन की जानकारी बाणभट्ट रचित 'हर्षचरित' एवं चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के यात्रा विवरण से प्राप्त होती है। इस सामग्री के अनुसार उनके पिता का नाम प्रभाकरवर्धन एवं माता का नाम यशोमती था। उनकी बहिन का नाम राज्यश्री था। जिसका विवाह मौखरिनरेश ग्रहवर्मा के साथ हुआ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

था। हर्ष की राजधानी थानेश्वर या स्थाण्वीश्वर में थी। वे धीर, वीर, चतुरशासक के अतिरिक्त ललित कलाओं के भी उपासक थे।

हर्षवर्धन रचित तीन कृतियों का पता चलता है—'रत्नावली', 'प्रियदर्शिका' एवं 'नागानन्द'। इनमें 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' नाटिकाएँ हैं और 'नागानन्द' नाटक है। 'रत्नावली' में वत्सराज उदयन एवं रत्नावली के प्रणय-प्रसंग का वर्णन है और 'प्रियदर्शिका' का सम्बन्ध भी उदयन के जीवन-चरित से है। 'नागानन्द' नाटक में राजकुमार जीमूतवाहन द्वारा गरुड़ से नागों के बचाने की कथा है।

काव्यकला—हर्ष की काव्य-प्रतिभा उच्चकोटि की है और वे नाटककार तथा कवि दोनों ही रूपों में प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता में माधुरी एवं प्रसाद दोनों गुणों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। कवि ने रसमय वर्णन द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है तथा स्थल-स्थल पर प्रकृति के अनेक मोहक चित्रों का मनोहर शब्दों में चित्र उपस्थित किया है। परम्परा प्रथित वर्णनों के प्रति उन्होंने अधिक रुचि दर्शायी है, फलतः सन्ध्या, मध्याह्न, उद्यान, तपोवन, फुलवारी, निर्झर, विवाहोत्सव, स्नान-काल, मलय पर्वत, वन, प्रासाद आदि इनके प्रिय विषय हो गये हैं। डॉ० कीथ के अनुसार "प्रतिभा और लालित्य में वे कालिदास से निश्चय ही घटकर हैं, परन्तु अभिव्यंजना और विचारों की सरलता का महान् गुण उनमें विद्यमान है। उनकी संस्कृत परिनिष्ठित और अर्थगर्भित है। शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का प्रयोग संयत तथा सुरुचिपूर्ण है।"* उनकी शैली सरल तथा प्रभावाभिव्यंजक है और पद्यों में दीर्घ समासों का अभाव तथा सरलता है। सरल शब्दों के नियोजन तथा अप्रतिहत प्रवाह के कारण कवि भाषा को आकर्षक बनाने की कला में निपुण है। उनका गद्य भी सरल तथा अर्थाभिव्यक्ति की क्षमता से आपूर्ण है और भाषा में रसानुकूल प्रभाव तथा अभिष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति करने की पूर्ण क्षमता है। उन्होंने अलंकारों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है। "अभिष्ट अर्थ की अभिव्यंजना में अलंकार सहायक हुए हैं। अलंकारों का प्रयोग कविता में माधुर्य के साथ-साथ हुआ है। ऐसे स्थलों पर भाषा सरल, सरस और माधुर्य-गुण-मण्डित है।"() उदाहरण-स्वरूप चाटुकार उदयन की उक्ति द्वारा वासवदत्ता के सौन्दर्य-वर्णन को रखा जा सकता है।

"देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम्।
श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनिता गीतानिभृङ्गाङ्गना,
लीयन्ते कुसुमान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव॥"

—रत्नावली, १।२५

---

* संस्कृत नाटक, पृ० १८० (हिन्दी अनुवाद)

() संस्कृत के महाकवि और काव्य, पृ० २७०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"देवि ! चन्द्रमा की शोभा को तिरस्कृत करनेवाले तुम्हारे मुख-रूप कमल ने जलस्थ कमलों को जीत लिया है। इसी कारण इनमें सहसा म्लानता आ रही है। तुम्हारे इन परिजनों तथा गणिकाओं का मधुर संगीत सुनने में भृङ्गांगनायें कलियों में छिपती जा रही हैं, मानो उन्हें अपनी हीनता पर लज्जा आ रही हो।"

उनके नाटकों में श्लेष तथा अनुप्रासादि अलंकार अधिक प्रयुक्त हुए हैं, पर वे भावों के उत्कर्षक एवं स्वाभाविक हैं। छन्दों के प्रयोग में भी हर्ष की निजी विशिष्टताएँ हैं। उन्होंने अधिकांशतः लम्बे एवं जटिल छन्दों के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित की है जो नाटकीय दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं माने जा सकते। उनका प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीड़ित है जो 'रत्नावली' में २३ बार, 'प्रियदर्शिका' में २० बार तथा 'नागानन्द' में ३० बार प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार स्रग्धरा, आर्या, इन्द्रवज्रा, वसंततिलका, मालिनी, शिखरिणी आदि छन्दों के प्रति भी कवि का विशेष आग्रह है। इतना अवश्य है कि उनके छन्द लंबे होते हुए भी सांगीतिका से पूर्ण है। प्राकृतों में विशेषतः शौरसेनी एवं महाराष्ट्री का प्रयोग हुआ है जो प्राकृत व्याकरणसम्मत है। नाटकीय दृष्टि से उनकी तीनों कृतियों में अभिनेयता का तत्त्व विपुल मात्रा में दिखाई पड़ता है। उनके संवाद छोटे एवं पात्रानुकूल हैं और नाटकों की लघुता उन्हें रंगमंचोपयोगी बनाने में सक्षम है। रोमांचक 'प्रणयनाटिका' के निर्माता की दृष्टि से हर्ष का स्थान संस्कृत नाटकों में गौरवास्पद है।

रत्नावली—'रत्नावली' संस्कृत-साहित्य की प्रसिद्ध नाटिकाओं में है, जिसे नाट्यशास्त्रियों ने अधिक महत्त्व देते हुए अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। इसमें नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से विनियोग किया गया है। इसमें राजा उदयन तथा रत्नावली की प्रेम-कथा का वर्णन है। नाटिकाकार ने प्रस्तावना के पश्चात् विष्कम्भक में नाटक की पूर्व कथा का आभास दिया है। उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण ज्योतिषियों की वाणी पर विश्वास कर लेता है कि राज्य की अभ्युन्नति के लिए सिंहलेश्वर की दुहिता रत्नावली के साथ राजा उदयन का परिणय आवश्यक है। ज्योतिषियों ने बतलाया कि जिससे रत्नावली परिणीत होगी उसका चक्रवर्त्तित्व निश्चित है। इस कार्य को सम्पन्न करने के निमित्त यौगन्धरायण सिंहलेश्वर के पास रत्नावली का विवाह उदयन के साथ करने के लिए सन्देश भेजता है, पर इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसने यह असत्य समाचार प्रचारित करा दिया कि लावाणक में वासवदत्ता आग लगने से जल मरी। इसी बीच सिंहलेश्वर ने अपनी दुहिता रत्नावली (सागरिका) को अपने मंत्री वसुमति तथा कंचुकी के साथ उदयन के पास भेजा, पर दैवात् रत्नावली को ले जाने वाले जलयान के टूट जाने से वह प्रवाहित हो गई तथा भाग्यवश कौशाम्बी के व्यापारियों के हाथ लगी। व्यापारियों ने उसे लाकर यौगन्धरायण के हाथ सौंप दिया। यौगन्धरायण ने उसका नाम सागरिका रख कर, उसे वासवदत्ता के निकट इस उद्देश्य से रख दिया कि राजा उसकी ओर आकृष्ट हो सके। यहीं से मूल कथा का प्रारम्भ होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रथम अंक का प्रारम्भ मदनोत्सव से होता है। जब उदयन अपने नागरिकों के साथ मदनोत्सव में आनन्दमग्न था, उसी समय उसे सूचना प्राप्त हुई कि रानी वासवदत्ता ने उन्हें कामपूजन में सम्मिलित होने की प्रार्थना की है कि वे शीघ्र ही मकरन्दोद्यान में रक्ताशोक पादप के नीचे आयें। पूजा की सामग्री को सागरिका द्वारा लाया देख कर वासवदत्ता उसको राजा की दृष्टि से बचाना चाहती है। अतः, वह पूजा की सामग्री कांचनमाला को दिला देती है एवं सारिका की देखभाल करने के लिए सागरिका को भेज देती है। सागरिका वहीं पर छिप कर कामपूजा का अवलोकन करती है तथा कन्दर्प सदृश सुन्दर राजा को देख कर उनके प्रति आकृष्ट हो जाती है। यहीं से उसके मन में प्रणय का अंकुर जम जाता है।

द्वितीय अंक में सागरिका, अपनी सखी सुसंगता से राजा उदयन के प्रति अपने प्रेमाकर्षण की बात कहती है। सागरिका ने चित्र-फलक पर राजा का चित्र बनाया था। सुसंगता ने उसके पार्श्व में सागरिका का चित्र बना दिया इसी बीच राजपालित एक बन्दर उपद्रव मचाता हुआ वहाँ आया और सागरिका सुसंगता के साथ चित्र-फलक छोड़ कर भयभीत होती हुई भाग गयी। तभी राजा उदयन विदूषक के साथ घूमते हुए आया और उसे चित्रफलक मिल गया। जब दोनों युवतियाँ चित्र लेने के लिए आती हैं, तभी वे छिप कर राजा और विदूषक का विश्रंभालाप सुनती हैं। सुसंगता राजा और सागरिका का मिलन करा देती है, पर रानी के आगमन के कारण उनका मिलन आगे चल नहीं पाता। रानी को विदूषक की असावधानी के कारण चित्रफलक मिल जाता है और वह अंकित चित्र को देख कर अपने प्रबल क्रोध को प्रकट किये बिना चली जाती है। उसको शान्त करने के लिए राजा निष्फल प्रयत्न करता है, पर वासवदत्ता को सारी परिस्थिति का परिज्ञान हो जाता है।

तृतीय अंक में विदूषक द्वारा दोनों प्रेमियों को मिलाने की योजना सफल हो जाती है। सागरिका वासवदत्ता तथा सागरिका का वेश बना कर सुसंगता राजा से मिलने के लिए तैयार होती है, पर इस षड्यन्त्र का पता वासवदत्ता को लग जाता है और महाराज की इस कुत्सित भावना पर उसे अत्यधिक क्रोध होता है, जब सागरिका उसी वेश में उदयन से मिलती है, उसी समय वासवदत्ता भी वहाँ पहुँच जाती है और उसे बड़ा क्रोध आता है। वह उदयन का प्रणय-निवेदन भी सुन लेती है। वासवदत्ता दोनों प्रेमियों को संयुक्त देखकर प्रचंड क्रोध में भर कर विदूषक और सागरिका को बन्दी बनाकर चल देती है।

चतुर्थ अंक में प्रवेशक से पता चलता है कि सागरिका रानी वासवदत्ता द्वारा बन्दी बनाकर उज्जयिनी भेज दी जाती है। पर यह घटना प्रचारित की गयी है, वास्तविक नहीं है। इसी बीच एक ऐन्द्रजालिक राजा को जादू दिखाने के लिए प्रवेश करता है। खेल दिखाते समय ही अन्तःपुर में आग लग जाती है और उसकी लपटें चारों ओर फैलने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लगती हैं। वासवदत्ता ने सागरिका को बन्दी बना रखा था, अतः उसे उसके जल जाने की चिन्ता होने लगी। इसलिए उसने उसकी रक्षा के निमित्त राजा से याचना की। राजा उसकी सहायता के लिए आग में कूद पड़ता है और निगड़बद्ध सागरिका को सुरक्षित स्थिति में लाकर बाहर आ जाता है। पर, यह आग भी ऐन्द्रजालिक खेल था। तत्क्षण यौगन्धरायण प्रकट होकर समस्त घटना का रहस्योद्घाटन करता है। वसुभूति और बाभ्रव्य का आगमन होता है और दोनों ही पोतभंग की बात कहते हैं। वसुभूति राजकुमारी रत्नावली को पहचान लेता है और उसका वास्तविक परिचय देता है। वासवदत्ता रत्नावली को गले लगाती है और राजा से व्याह करने की सहर्ष अनुमति दे देती है। वासवदत्ता की प्रार्थना पर राजा रत्नावली को पत्नी-रूप में स्वीकार करता है और भरतवाक्य के साथ नाटिका की समाप्ति हो जाती है।

कथा विधान—नाटिका की कथा कविकल्पित होती है। इसमें अधिकांश स्त्रियाँ होती हैं तथा चार अंक होते हैं। नायक प्रसिद्ध धीरललित नायक होता है। रनवास से सम्बन्ध रखने वाली या गाना गाने वाली राजवंश की कोई नवानुरागवती कन्या इसमें नायिका होती है। नायक का प्रेम देवी (महारानी) के भय से शंका-युक्त होता है, और देवी राजवंशोत्पन्न प्रगल्भा नायिका होती है जो पद-पद पर मान करती है। नायिका और नायक का समागम इसी के अधीन होता है। यहाँ वृत्ति कैशिकी होती है और अल्प विमर्शयुक्त अथवा विमर्श-शून्य सन्धियाँ होती हैं।

उपर्युक्त सभी नियमों की पूर्णव्याप्ति 'रत्नावली' में होती है। इसमें चार अंक हैं तथा स्त्री पात्रों की संख्या अधिक है। इसका नायक राजा उदयन धीरललित या संगीत एवं कलाप्रेमी व्यक्ति है। इसकी नायिका रत्नावलो अनुरागवती एवं राजकन्या है, जिसका सम्बन्ध रनवास से है। राजा और रत्नावली का प्रेम रानी वासवदत्ता के भय के कारण सम्पन्न नहीं हो पाता, और दोनों को वासवदत्ता की शंका लगी रहती है। वासवदत्ता राजवंशोद्भव प्रगल्भा नायिका है इसके ही अधीन नायक एवं नायिका का समागम है तथा यह पद-पद पर मान करने वाली है। इसमें सर्वत्र कैशिकी वृत्ति अपनायी गयी है। इसमें अंगीरस शृङ्गार है और धीरललित नायक की प्रणय लीलाओं के चित्रण के लिए सर्वथा उपयुक्त है। विदूषक की योजना कर हास्यरस की भी सृष्टि की गयी है। शृङ्गार और हास्य के अतिरिक्त वीर तथा भयानक रस का भी संचार किया गया है। कवि ने रुमण्यवान के युद्ध का वर्णन कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। जहाँ तक नाटकीय कथानक के विकास का प्रश्न है, इस घटना का महत्त्व अर्थात् रुमण्यवान द्वारा कोशल-विजय की घटना अल्प है। इस घटना को नाटिका से निकाल देने पर रचना-सौष्ठव एवं कथानक के गठन में अधिक चारुता आ जायगी। अतः, कथानक के विकास का प्रश्न है, इस घटना का महत्त्व अर्थात् रुमण्यवान द्वारा कोशल-विजय की घटना अल्प है। इस घटना को नाटिका में निकाल देने पर रचना-सौष्ठव एवं कथानक के गठन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में अधिक चारुता आ जायगी। अतः, कथानक के विकास की दृष्टि से यह घटना अनुपयुक्त है। ऐसा लगता है कि कवि ने वीररस की सृष्टि के लिए ही इसका समावेश किया है। सहसा राजकीय बन्दर के छूटने एवं अन्तःपुर में आग लगने की घटना से भयानक रस की सृष्टि हुई है। इस दृश्य का कवि ने बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है। ऐन्द्रजालिक के चमत्कारों से अद्भुत रस की तथा वसुमति द्वारा रत्नावली के डूबने का समाचार सुनकर वासवदत्ता के रो पड़ने पर करुणरस की व्यंजना हुई है। कवि ने शृङ्गार के उभय रूपों—संयोग तथा वियोग—का सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है। सागरिका और उदयन के प्रेम को पूर्वानुराग के रूप में चित्रित किया गया है, जो वियोग शृङ्गार के ही अन्तर्गत आयेगा।

'रत्नावली' में नाट्य-रचना-कौशल का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसमें कवि ने शृङ्गाररस की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इस नाटिका में रंगमंच पर अभिनीत होने वाली सभी विशेषताएँ हैं। इसमें कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा ऐसी घटनाओं का नियोजन किया है जो न केवल चमत्कारिणी है, अपितु स्वाभाविक भी है तथा कथावस्तु के विकास में तीव्रता लाने वाली हैं। सारी घटनाओं के नाटकीय ढंग से घटित होने के कारण इसका कथानक कौतूहलपूर्ण है। द्वितीय अंक में सागरिका द्वारा सागरिका एवं सुसंगता के वार्त्तालाप की पुनरावृत्ति राजा के हृदय में सागरिका के प्रति प्रेमोद्रेक में सहायक बनती है। कवि की यह कल्पना अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं कथा को गति देनेवाली है। वेश-विपर्यय वाला दृश्य अत्यन्त हृदयग्राही है। सागरिका द्वारा वासवदत्ता का वस्त्र धारण कर अभिसरण करने तथा उस घटना का रहस्य वासवदत्ता को प्राप्त हो जाने के वर्णन में हर्ष की कल्पना-शक्ति के उच्चतम रूप का परिचय प्राप्त होता है। इसी प्रकार ऐन्द्रजालिक की घटना तथा राजकीय बन्दर के भागने की कल्पना में हर्ष की प्रतिभा ने नाटिका में अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि की है। काव्यत्व-चारुता तो इस नाटक की अपनी विशेषता है। कवि ने सरस, मृदुल तथा कोमल शब्दों के द्वारा समस्त कृति को आकर्षक बनाया है। स्थान-स्थान पर तो काव्य की मधुरिमा अवलोकनीय है, जहाँ कवि ने रमणीय पदावली का निदर्शन कर चित्र को अधिक सघन एवं मोहक बनाया है। इसमें कहीं भी दुरूह शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है और न कठिन समासबन्ध ही है इसके सभी पात्र प्राणवन्त एवं आकर्षक हैं। कवि ने विषय के अनुरूप इसकी नायिका रत्नावली को मुग्धा के रूप में चित्रित किया है। शृङ्गाररस की पुष्टि के निमित्त वसन्त, सन्ध्या आदि के मधुर चित्र उपस्थित किये गए हैं। वैदर्भी रीति का सर्वत्र प्रयोग करने के कारण नाटिका में माधुर्य गुण ओत-प्रोत है।

चरित्र-चित्रण—'रत्नावली' के प्रधान पात्र तीन हैं—राजा उदयन, रत्नावली एवं वासवदत्ता। गौण पात्रों में यौगन्धरायण, विदूषक आदि आते हैं।

राजा उदयन—इस नाटिका का नायक राजा उदयन धीर ललित नायक के रूप

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में प्रस्तुत किया गया है। राजा राजनयिक तथा प्रशासनिक कार्यों को योग्य मन्त्रियों पर छोड़कर वह विश्वस्त चित्त से पूरी निश्चिंतता के साथ अपने मित्र विदूषक की सहायता लेकर वासवदत्ता के प्रणय में लीन हो जाता है। "राज्य के सभी शत्रु परास्त कर दिये गए, योग्य मन्त्री पर सम्पूर्ण कार्य भार सौंप दिया गया। प्रजायें अच्छी रीति से पालित होने के कारण निरुपद्रव हैं तथा प्रद्योतसुता वासवदत्ता है, तुम हो, सब तरह से यह महोत्सव मेरे लिए है, कन्दर्प का तो इसके साथ नाम-मात्र को सरोकार है।" [१।९] राजा के इस कथन से उसके चरित्र का दुर्बल पक्ष व्यंजित होता है और वह अपने उत्तर-दायित्व के प्रति जागरूक नहीं दिखाई पड़ता। पर, यहाँ कवि ने राजा के अन्य रूप का चित्रण न कर केवल उसके प्रेमिल व्यक्तित्व को ही प्रस्तुत किया है। यहाँ उदयन का व्यक्तित्व प्रेमी, कलाप्रिय तथा विलासी का है। जहाँ तक प्रेम का सम्बन्ध है, वह दक्षिण नायक के रूप में चित्रित हुआ है। सागरिका के प्रति उदयन का प्रेम प्रकट तथा पाद-पतन के बाद भी राजा पर प्रसन्न न होने एवं उदयन की चिन्ता बढ़ जाने के वर्णन में इस तथ्य की पुष्टि होती है।

राजा अपनी विवर्धित चिन्ता का वर्णन विदूषक से करता है—"निश्चय ही मेरी प्रिया प्राणत्याग देगी; क्योंकि गाढ़े स्नेह की त्रुटि भयानक होती है।" [३।१५] प्रथमतः सागरिका के प्रति उसका प्रेम वासनामय लगता है। वह आन्तरिक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि सागरिका के विरह में व्यथित होने पर भी वासवदत्ता के आगमन के कारण उसके प्रेम का भय में परिणत हो जाना राजा के प्रेम की मांसल सिद्ध करता है। वह वासवदत्ता से ऐसी बातें करता है कि सागरिका के प्रति उसका आकर्षण शिष्टाचार मात्र तथा बाहरी है। उसके इस असत्याचरण से उसका चरित्र दूषित हो जाता है, और वह कामलिप्सु व्यक्ति के ही रूप में प्रदर्शित होता है। पर, सागरिका के विरह में उसकी वासना जल जाती है और उसका प्रेम उस समय उज्ज्वल हो जाता है, जब सागरिका को जलने से बचाने के लिए वह विदूषक के रोकने पर भी अपने प्राणों की बाजी लगा कर भयंकर अग्नि की लपट में कूद पड़ता है।

राजा व्यवहारपटु, कोमल तथा शिष्ट है। वह परिजनों तथा सामान्य दासी के प्रति भी सहृदयता प्रदर्शित करते हुए कोमल भाषा का प्रयोग करता है। उसके कथोपकथन में कहीं भी उसका अधिकार-मद प्रकट नहीं होता और वह सबके साथ प्रेम-पूर्ण व्यवहार करता है। अन्तःपुर की दासी सुसंगता के प्रति उसका कथन कितना शिष्ट है—'सुसङ्गते ! स्वागतम्, इहोपविश्यताम्।' यद्यपि 'रत्नावली' में उदयन प्रधानरूप से विलासी एवं प्रेमी के ही रूप में चित्रित है तथापि अनेक अवसर पर उसकी राजनैतिक पटुता एवं वीरता के भी दर्शन होते हैं। वह अपने वैरी कोशलपति की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी वीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता—'साधु कोशलपते साधु ! मृत्युरपि ते श्लाघ्यो यस्य शत्रवोऽप्येवं पुरुषकारं वर्णयन्ति।' "धन्य हो, कोशलपति तुम धन्य हो, तुम्हारी मृत्यु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भी प्रशंसनीय है, शत्रु भी इसी प्रकार तुम्हारी वीरता की सराहना करते हैं।" प्रणय-लीला के मधुर-क्षणों तथा विरह-वेदना के पीड़ामय दिवसों में भी वह राज्य की समस्याओं से विरत नहीं रहता। विजयवर्मा से कोशल का समाचार सोत्साह सुनना तथा अपने सेनापति रुमण्यवान् की रणचातुरी एवं शत्रु-विजय के लिए उसे साधुवाद देने में उसकी राजनीतिक पटुता झलकती है। राजा की आज्ञा के बिना सागरिका के लाने के प्रयत्न में यौगन्धरायण भयभीत होता है, पर राजा के स्वागत-कथन से ज्ञात होता है कि वह राजनीति से उदासीन नहीं रहता। इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष ने अत्यन्त पटुता के साथ उदयन के प्रेमी एवं राजनीतिज्ञ उभय रूपों का चित्रण किया है।

रत्नावली—सिंहलेश्वरसुता रत्नावली इस नाटिका की नायिका है। उसके नाम पर ही नाटिका का नामकरण किया गया है। सागर में निमज्जित होकर बच जाने के कारण उसका नाम सागरिका रखा गया है। वह यौगन्धरायण द्वारा लाई जाकर अन्तःपुर में रानी वासवदत्ता की दासी के रूप में रखी जाती है। नाटिका के अन्तिम अंश को छोड़कर वह सर्वत्र सागरिका के नाम से अभिहित हुई है। वह असाधारण सुन्दरी थी इसीलिए रानी सदा राजा की दृष्टि से बचाती रही कि कहीं राजा इस पर आकृष्ट न हो जाय। वह मुग्धानायिका के रूप में चित्रित हुई है।

उदयन के प्रथम दर्शन से ही उसकी जो स्थिति होती है उससे उसके मुग्धत्व की व्यंजना होती है। वह अपने मन में कहती है कि 'इन्हें देखकर लज्जा के कारण मैं एक पग भी नहीं चल सकती।' सुसंगता द्वारा चित्रित उसके चित्र को देखकर राजा ने जो उद्गार व्यक्त किये हैं, उनसे उसके अप्रतिभ सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। "इस त्रिलोक सुन्दरी रमणी को बना चुकने पर ब्रह्मा भी आँखें फाड़ कर देखने लगे होंगे और उनके चारों मुखों से एक साथ साधुवाद निकला होगा, और विस्मय से निश्चय ही उनके सिर हिलने लगे होंगे।"

रत्नावली अत्यन्त भावुक नारी ज्ञात होती है। राजा को देखते ही, प्रथम दर्शन में ही वह उन पर अनुरक्त हो जाती है। यह जानकर भी कि रानी की दासी होते हुए उसका राजा से प्रेम कितना खतरनाक है, उसके ऊपर नियंत्रण नहीं करती, यह उसकी भावुकता नहीं तो क्या है? उसकी भाव प्रवणता का दूसरा उदाहरण प्राण त्यागने के लिए उतारू हो जाना भी है। राजा को देखते ही उसकी काम-व्यथा इस प्रकार बढ़ जाती है कि वह यह कहने को उतारू हो गयी—'सर्वथा मम मन्दभागिन्यामरणमेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम्।' राजा के हाथ चित्र फलक पड़ने पर जब विदूषक राजा से पूछता है कि यह उन्हें कैसी लग रही है, तब रत्नावली अपने सम्बन्ध में राजा की प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक होती है। वह लताकुञ्ज में छिप कर उनका वार्तालाप सुनती है। यदि राजा ने हां कह दिया तो अच्छा, अन्यथा कहने पर वह अपना प्राणत्याग देगी। वह दुर्बल हृदय की नारी है। संकेत स्थान पर आकर जब वह राजा को नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पाती, तब जान जाती है कि उसकी अभिसारचेष्टा का परिज्ञान रानी को हो गया है, अतः वह मृत्यु का भी वरण करना श्रेष्ठ समझती है ।

रत्नावली कला-प्रेमिका है और उसे चित्र-कला की विशेष पटुता प्राप्त है । वह उदयन के प्रति आसक्त होकर चित्र द्वारा ही अपना मनोरंजन करती है । उसकी चित्रकला की प्रशंसा सुसंगता भी करती है । उसमें वंशाभिमान एवं आत्मसम्मान की भावना भी कूट-कूटकर भरी हुई है । दासी के रूप में जीवन-यापन करते हुए अपनी अभिन्न हृदया सखी सुसंगता से अपना वंशपरिचय नहीं देती । इसमें वह अपने सद्वंश की अप्रतिष्ठा मानती है । परिस्थितिवश राजकुमारी होकर भी उसे दासी का घृणित काम करना पड़ता है, जिससे उसके मन में आत्मग्लानि का भाव आता है और वह जीवित रहना भी नहीं चाहती, पर राजा के प्रेम को प्राप्त कर उसे जीने की लालसा हो जाती है । उसमें आत्म-सम्मान का भाव इस प्रकार भरा हुआ है कि उसका वंशाभिमान समय-समय पर जागरूक हो जाता है और किसी प्रकार अपना अपमान होने पर वह निर्लज्ज जीवन व्यतीत करने से मरण को उपयुक्त मान लेती है ।

उदयन के प्रति उसका प्रेम वासनाजन्य न होकर वास्तविक है तथा उसमें अन्वत्व का अभाव एवं मर्यादा की भी भावना है । वह उदयन के रूप की प्रसंशक है, पर सहसा उनकी ओर आकृष्ट नहीं होती । जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि यह वही उदयन है जिसके लिए उसके पिता ने उसको भेजा था तो राजा के सौन्दर्य का आकर्षण प्रेम में परिणत हो जाता है । वह औचित्यपूर्ण प्रेम का समर्थन करती है । "उसके हृदय में उदयन के प्रति प्रेम, वासवदत्ता से भय, सुसंगता के प्रति भगिनीवत् स्नेह और अपने जीवन के प्रति ग्लानि और मोह एक साथ हैं ।"

वासवदत्ता—वासवदत्ता उदयन की प्रधान महिषी है । वह अत्यन्त प्रीतिप्रवण एवं स्वभाव से मृदु है । राजा के प्रति उसके मन में सम्मान एवं प्रेम का भाव है । वह प्रेमिल प्रतिमा के रूप में चित्रित हुई है । वह राजा के प्रति इस प्रकार अनुरक्त है कि उसे अपनी जान की भी सुधि नहीं रहती । राजा के मन में भी उसके प्रति दृढ़ विश्वास है । इसी कारण वह मान करती है तो राजा उसके चरणों पर गिर पड़ता है । राजा को बिना उसे मनाये चैन नहीं पड़ता, क्योंकि उसका विश्वास है उनके प्रेम में किंचित् अन्तर आने पर भी वह जीवित नहीं रह सकती । वासवदत्ता राजा की रूपलिप्सा से परिचित है, अतः वह सागरिका को राजा के नेत्रों के सम्मुख नहीं होने देती, और असावधानी से वह राजा के सामने आने लगती है तो वह अपनी दासियों पर बिगड़ने लगती है । राजा के प्रति प्रगाढ़ स्नेह होने के कारण वह उनके ऊपर एकाधिकार चाहती है । वह उदयन को सागरिका से प्रेम करते देखना नहीं चाहती । उदयन के साथ सागरिका का चित्र चित्रित देख कर वह सिर-पीड़ा का बहाना बना कर मान करती है तथा सागरिका के अभिसार के रहस्य को जान कर उदयन के पाद-पतन पर भी नहीं मानती । उसमें सपत्नी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

की ईर्ष्या की भावना भरी हुई है। राजा के प्रति अनुराग होने के कारण वह अधिक देर तक रुष्ट नहीं रह पाती। राजा की दीनता और कठोरता के प्रति उसे पश्चात्ताप होता है और वह प्रसन्न करने के लिए कहती है—"मैंने राजा को उस स्थिति में छोड़ कर अच्छा नहीं किया, चलूँ, उनके पीछे जाकर उनके गले से लिपट कर उनको मना लूँ।"

वह सरल एवं दयालु हृदय की नारी है, पर उसमें कठोरता का भाव परिस्थिति-जन्य है। वह सागरिका के अविनय के कारण उसे कारागार में बन्द कर अन्तःपुर के किसी निभृत स्थान पर रख देती है, पर अग्निकाण्ड के कारण उसके जीवन में अनर्थ की आशंका से उसको बचाने के लिए राजा से प्रार्थना करती है। सागरिका का रहस्योद्घाटन होने पर अपने प्राचीन भावों को भुला कर उसे गले से लगा लेती है। सागरिका के प्रति अपने व्यवहार से उसे पाश्चात्ताप होता है, पर वह उसे अपने वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर राजा के पत्नी के रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई समस्त वातावरण को मधुर बना देती है।

भवभूति

भवभूति संस्कृत नाट्य साहित्य में युगप्रवर्त्तन करने वाले प्रतिभाशाली कवि हैं, जो कई दृष्टियों से महाकवि कालिदास को भी पीछे छोड़ देते हैं।

नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ॥

वे अपने युग के सशक्त नाटककार थे, किन्तु उस युग के आलोचक उनकी प्रतिभा का वास्तविक मूल्यांकन उपस्थित करने में असमर्थ रहे, फलतः कवि के मन में अन्तःक्षोभ की अग्नि धधकती दिखाई पड़ती है। वे प्रतिभाशाली कवि ही नहीं थे, अपितु सांख्य, योग, उपनिषद् और मीमांसा आदि विद्याओं में भी निष्णात थे। उनके आलोचकों ने उनके सम्बन्ध में कटूक्तियों का प्रयोग किया था, जिससे मर्माहत होकर कवि ने उन्हें चुनौती दी थी कि निश्चय ही एक युग ऐसा आयेगा जब मेरे समानधर्मा कवि उत्पन्न होकर मेरी कला का आदर करेंगे; क्योंकि काल निरवधि या अन्तहीन है और पृथ्वी भी विपुल है—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

भवभूति ने अपना पर्याप्त परिचय अपने नाटकों की प्रस्तावना में दिया है, फलतः उनका जीवनवृत्त अन्य साहित्यकारों की भाँति अन्धकाराच्छन्न नहीं है। उनका जन्म

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कश्यपवंशीय उडुम्बुर नामक ब्राह्मण परिवार के घर में हुआ था। वे विदर्भ के अन्तर्गत पद्मपुर के निवासी थे। उनका कुल 'कृष्णयजुर्वेद' की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी था। भवभूति के पितामह का नाम भट्ट गोपाल था जो स्वयं महाकवि भी थे। उनके पिता का नाम नीलकण्ठ एवं माता का नाम जतुकर्णी था। उन्होंने अपना सर्वाधिक विस्तृत परिचय 'महावीरचरित' की प्रस्तावना में दिया है। कहा जाता है कि उनका वास्तविक नाम नीलकण्ठ था और भवभूति उपाधि थी।

भवभूति ने नाटकों की प्रस्तावना में अपना समय निर्दिष्ट नहीं किया है, अतः उनका काल-निर्णय विवादास्पद बना हुआ है। उनके सम्बन्ध में प्रथम उल्लेख वाक्पतिराज कृत 'गउडबहो' में मिलता है। इसमें कवि ने भवभूति रूपी सागर से निकलते हुए काव्यामृत की प्रशंसा की है। वाक्पतिराज कान्यकुब्ज नरेश यशोवर्मा के सभा कवि थे जिनका समय ७५० ई० है। भवभूति जीवन के अन्तिम दिनों में यशोवर्मा के आश्रित हो गए थे। 'राजतरंगिणी' में लिखा है कि यशोवर्मा की सभा में भवभूति आदि कई कवि थे।

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥ —४।१४४

वामन के 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में भवभूति के पद्य उद्धृत हैं—(१।२।१२)। वामन का समय आठवीं शती का उत्तरार्ध या नवम शती का चतुर्थांश है। अतः भवभूति का समय आठवीं शताब्दी का प्रथम चरण हो सकता है।

रचनाएँ—भवभूति की तीन ही रचनाएँ प्राप्त होती हैं—'मालतीमाधव', महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित'। इनमें 'मालतीमाधव' प्रकरण है और शेष नाटक है। 'मालती माधव' में दस अंक हैं और कथा कल्पित है। इसमें कवि ने मालती और माधव की प्रणय-कथा का वर्णन किया है। 'महावीर चरित' में सात अंक हैं और रामायण की कथा को नाटक का रूप दिया गया है। 'उत्तररामचरित' भवभूति का श्रेष्ठ नाटक है। यह उनकी अन्तिम रचना है। इसमें सीता-निर्वासन की करुण गाथा वर्णित है।

काव्य-वैभव—भवभूति नाटककारों में कवि कहे जाते हैं। उन्हें कालिदास के बाद संस्कृत का सर्वोच्च नाटककार माना जाता है। उन्हें विशुद्ध नाटककार नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उनकी अधिकांश रचनाएँ गीतिनाट्य हैं। अतः उनके नाटकों के अध्येताओं को इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही उनके नाटकों की समीक्षा करनी चाहिए। भवभूति की भाव-प्रवणता उनकी कला का प्राण है। उन्होंने भावमय कवित्व के समक्ष कलापक्ष के आकर्षण को भी छोड़ दिया है। भवभूति के भावपक्ष में वैविध्य एवं विस्तार दिखाई पड़ता है। वे कालिदास की भाँति केवल कोमल भावों के ही कवि नहीं हैं, प्रत्युत उन्होंने कोमल के साथ-ही-साथ गम्भीर एवं कठोर भावों का भी चित्रण किया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। विप्रलम्भ एवं करुण के अतिरिक्त उनकी दृष्टि वीर, रौद्र तथा बीभत्स रसों की ओर भी समान भाव से जाती है। भवभूति की शैली उनके कथन के अनुरूप है जिसके शब्दों में प्रौढ़ि, उदारता एवं अर्थ का गौरव रहता है। भावानुसार भावों को मोड़ देना भवभूति की निजी विलेषता है। पर्वत-कुहरों में गद्‌गद्‌ नाद से प्रवाहित होती नदी का चित्र उन्होंने भाषा के माध्यम से खींचा है --

''एतेषु कुहरेषु गद्‌गदनदगोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः॥''

उत्तररामचरित, २।३०

''गुफाओं में कलकल शब्द कर के चलने वाले गोदावरी के जलयुक्त और मेघों से अवलम्बित शिखर के अग्रभाग वाले, अत एव नील वर्ण की चोटियों से युक्त ये दक्षिण दिशा के पर्वत हैं। परस्पर में आधात से अत्यधिक चंचल महातरंगों के कोलाहलों से वेगवाले ये गहरे जल से युक्त पवित्र नदियों के संगम हैं।'' उनके वर्णनों में कालिदास की भाँति सादगी नहीं दिखाई पड़ती, यहाँ तो विस्तार एवं क्लिष्टता के दर्शन होते हैं।

भवभूति की शैली में गौडी रीति का प्राबल्य है। उन्होंने गद्य की भाषा सानुप्रास एवं समास-बहुल पद-विन्यास से युक्त रखी है। उनकी शैली का प्रमुख वैशिष्ट्य इसकी उदात्तता है। उन्होंने प्रकृति का चित्रण सच्चे प्रकृति पुजारी की भाँति अत्यन्त अभिनिवेश के साथ किया है, जिसमें कोमल, उग्र, सुहावने एवं भयंकर सभी प्रकार के चित्र उभरे हुए हैं। उनके संवादों में लम्बे-लम्बे समास-बहुल वाक्य प्रयुक्त होते हैं जिसे विद्वानों ने उनका दोष भी माना है। भाषा पर उनका अधिकार है और वे समर्थ कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। भवभूति की भाषा भावव्यंजना की अपूर्व शक्ति से सम्पन्न है। उसके द्वारा कवि ने मूर्त्त पदार्थों एवं अमूर्त्त पदार्थों के वर्णन में समान रूप से दक्षता प्रकट की है और विषय का सांगोपांग रूप प्रस्तुत कर दिया है। भवभूति पदवाक्य-प्रमाणज्ञ तथा वाणी के साक्षात् विग्रह हैं। उन्होंने रूप-सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म एवं हृदयग्राही किया है। किसी चित्र का अंकन करते समय उनका कवि रस की उद्‌बुद्धि किये बिना नहीं रहता। विरहिणी सीता के करुण चित्र के अंकन में कारुण्य भावना का रूप देखने योग्य है। भवभूति के छन्द-प्रयोग में भी वैविध्य प्रदर्शित होता है। उन्होंने छोटे-बड़े सभी छन्दों का प्रयोग किया है। अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, प्रहर्षिणी, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, शालिनी, आर्या, वंशस्थ, रथोद्धता, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा आदि उनके प्रिय छन्द हैं। क्षेमेन्द्र ने शिखरिणी छन्द के प्रयोग में उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। 'महावीर चरित' में १७, 'मालती माधव' में २४ तथा 'उत्तररामचरित' में २४ प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। उन्होंने अलंकार के प्रयोग में नवीनता प्रदर्शित की है। उनके प्रिय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलंकार हैं—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, दृष्टान्त, विरोधाभास, प्रतिवस्तूतमा, अतिशयोक्ति, आक्षेप, काव्यलिंग, सन्देह एवं स्वभावोक्ति। सूक्ष्म मनोभावों की तुलना स्थूल पदार्थों से करने में उन्होंने अधिक रुचि प्रदर्शित की है। नाटककार के रूप में आलोचकों ने उन्हें उच्चकोटि का नहीं माना है और उनके अनेक दोषों का निर्देश किया है। उनमें अन्वितित्रय का अभाव, वस्तु का अबाधगत्या दूर तक विस्तृत वर्णन, हास्य की कमी, भाषा की दुरूहता एवं दीर्घविस्तारी वाक्यों का प्रयोग आदि नाट्यकला की दृष्टि से दोष बतलाये गए हैं। इन दोषों के होते हुए भी भवभूति संस्कृत भाषा के गौरव हैं।

उत्तररामचरित—यह महाकवि भवभूति विरचित उनका सर्वोत्तम नाटक है। इसमें कवि की नाट्यकला का प्रौढ़ रूप प्राप्त होता है तथा इसकी गणना संस्कृत के महान् ग्रन्थों में होती है। इस नाटक में कवि ने श्री रामचन्द्र के जीवन के उत्तरभाग का वर्णन किया है। राज्याभिषेक के पश्चात् इसमें रामचन्द्र का अवशिष्ट जीवन-वृतान्त वर्णित है। इसमें मुख्यतः सीता-निर्वासन की घटना की प्रमुखता है। इस नाटक की रचना सात अंकों में हुई है। इसके कथानक का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है, पर कवि ने नाट्य-रचना-कौशल प्रदर्शित करने के निमित्त मूल कथा में अनेक परिवर्त्तन किये हैं। रामायण में यह कथा दुःखान्त है और सीता अपना अपमान समझकर पृथ्वी में प्रवेश कर जाती हैं, पर यहाँ कवि ने राम-सीता का पुनर्मिलन दिखाकर नाटक को सुखान्त बना दिया है। प्रथम अंक में चित्रशाला की योजना कवि की मौलिक कल्पना है जिसके द्वारा उसकी सहृदयता, भावुकता तथा कलात्मक नैपुण्य का परिचय प्राप्त होता है। इस दृश्य के द्वारा सीता-विरह को तीव्र बनाने के लिए सुन्दर पीठिका प्रस्तुत की गई है तथा इसमें भावी घटनाओं के बीजांकुरों का आभास भी दिखाया गया है। चित्र-दर्शन के पश्चात् परिश्रान्ता सीता के शयन करने पर राम में इस कथन में भावी वियोग की सूचना है—

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः। —१।३८

द्वितीय अंक में शम्बूक की घटना द्वारा दण्डकारण्य का मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है। तृतीय अंक में बाह्य घटनाओं एवं व्यापारों का अभाव है। छाया सीता की उपस्थिति इस नाटक की महत्त्वपूर्ण कल्पना है। राम के विरह का वर्णन कर कवि ने अपने हृदय को विगलित करुण-धारा को प्रवाहित किया है। राम की करुण-दशा को देखकर सीता का अनुताप मिट जाता है और राम के प्रति उनका प्रेम और भी दृढ़ हो जाता है। सप्तम अंक के गर्भांक के अन्तर्गत एक अन्य नाटक की योजना कवि की सर्वथा मौलिक देन है। इसके द्वारा रामायण की दुःखान्त कथा को सुखान्त बनाया गया है तथा लव-कुश को उनकी वास्तविक स्थिति का परिज्ञान कराया गया है। इस नाटक की योजना का दूसरा महत्त्व है नाटकीय वातावरण के माध्यम से जनता के समक्ष सीता के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चरित्र को पवित्र करना। "इस प्रकार कवि आरम्भ से ही कथानक को चामत्कारिक किन्तु स्वाभाविक मोड़ देता हुआ, उसकी गति में काव्यजनित शैथिल्य और नाट्यजनित क्षिप्पतता लाता हुआ आनन्द के वातावरण में समाप्त करके सुखान्त बना देता है तथा नाटक की शास्त्रीय मर्यादा की रक्षा करता है।"*

चरित्र-चित्रण—'उत्तररामचरित' नाटक में पात्रों के शील-निरूपण में अत्यन्त कौशल प्रदर्शित हुआ है।

राम—इस नाटक के नायक श्री रामचन्द्र हैं। वे सूर्यवंश के रत्न तथा धीरोदात्त नायक के सभी गुणों से विभूषित हैं। सद्यः राज्याभिषिक्त राजा होते हुए भी उन्हें प्रजा पालन एवं लोकानुरंजन का अधिक ध्यान है। वे राजा के कर्त्तव्य के प्रति पूर्ण सचेष्ट हैं। अष्टावक्र द्वारा वसिष्ठ का सन्देश प्राप्त कर वे कहते हैं—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥ —१।११

लोकानुरंजन के लिए वे प्रेम, दया, सुख और यहाँ तक कि जानकी को भी त्याग सकते हैं। सीताविषयक लोकापवाद के श्रवणमात्र से ही उन्होंने उनका निर्वासन कर दिया। यह कार्य उनके दृढ़ निश्चय एवं लोकानुरंजन का परिचायक है। प्रकृति-रंजन को वे राजा का प्रधान कर्त्तव्य मानते हैं—राजा प्रकृतिरञ्जनात्। पत्नी के प्रति स्वाभाविक स्नेह होने तथा उनके गर्भवती होने पर भी वे सीता का परित्याग कर देते हैं। राम एक आदर्श पति के रूप में प्रदर्शित किये गए हैं। उनके जीवन का लक्ष्य एक पत्नीव्रत है। सीता के प्रति उनकी धारणा स्थिर एवं उदात्त है। उनका परित्याग करने से राम अपने को क्रूरकर्मी समझने लगते हैं। कर्त्तव्य के आवेश में सीता का निष्कासन कर राम अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए अपने को 'अपूर्वकर्म-चाण्डाल' समझते हैं। सीता के प्रति उनके मन में अनन्य स्नेह है। वे उनकी गृहलक्ष्मी तथा आँखों में अमृतांजन हैं, उनका स्पर्श चन्दन की भाँति शीतल एवं उनकी बाहें मुक्ता की माला हैं। उन्होंने कर्त्तव्य की वेदी पर अपने प्रेम की बलि देकर भीषण वज्राघात सहा है।

सीता-निष्कासन की उन्होंने जिन शब्दों में आज्ञा दी है उनके द्वारा उनके हृदय की व्यथा तथा राज्याधिकार के प्रति क्षोभ एवं आत्मग्लानि के भाव की मिश्रित अभिव्यक्ति होती है—'एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति'। दण्डकारण्य में पूर्वानुभूत स्थलों एवं दृश्यों को देख कर वे सीता के विरह जन्य क्लेश से मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होने के कारण ही रामचन्द्र अश्वमेध में सीता की स्वर्णप्रतिमा स्थापित

* संस्कृत नाटक-समीक्षा, पृ० २२६।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करते हैं। सीता के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री के प्रति वे आकर्षित नहीं होते। परिश्रान्ता सीता से सोने का अनुरोध करते हुए राम का वचन ध्यातव्य है—

आविवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनुयौवने पुनः।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया रामबाहुरुपधानमेषते ।। १।३७

"विवाह के समय से लेकर शैशव में घर में उसके अनन्तर फिर यौवन में वन में सोने का कारण, अन्य स्त्रीं से असेवित यह राम की भुजा तुम्हारा तकिया है।"

सीता के त्याग की वेदना राम के लिए असह्य है। शम्बूक वध के समय भी उन्हें अपनी कठोरता का ध्यान बना रहता है और वे इस कठोरता के कारण उत्पन्न शोक की व्यंजना करते दिखाई पड़ते हैं—

रामस्य बाहुरसिनिर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपदोः करुणाकुतस्ते।

कर्त्तव्य-पालन के प्रति दृढ़ निष्ठा रखने वाले राम के हृदय में कोमलता एवं दयालुता भी विद्यमान है। वे कोमल, नम्र एवं मृदु भी हैं। चित्र दर्शन के प्रसंग में परशुराम के दृश्य को देख कर जब लक्ष्मण उनकी प्रशंसा करना चाहते हैं तो वे उन्हें ऐसा कहने से रोक देते हैं। अपना उत्कर्ष एवं परशुराम का अपकर्ष सुनना उन्हें अच्छा नहीं लगता। यह उनकी महत्ता का द्योतक है। कैकेयी के कोप तथा वर-याचना के दृश्य को वे इसलिए छोड़ देते हैं कि इससे माता के प्रति दुर्भावना का उदय होगा। हनुमान् जी का चित्र देख कर वे कृतज्ञता से भर कर उनके उपकारों को स्वीकार करते हुए उनकी प्रशंसा करते हैं। अपने परिजनों के प्रति यह उदारभाव राम के महनीय चरित्र का परिचायक है। उनमें विनय भावना का आधिक्य है और वे आत्म-प्रशंसा के भाव से रहित हैं।

राम गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति हैं। सीता के विरह से यद्यपि उनका हृदय दग्ध हो रहा है, पर वे अपनी इस पीड़ा को कभी प्रकट नहीं करते। उनके गम्भीर स्वभाव के कारण ही यह व्यथा प्रकाशित नहीं होती। उनका यह दुःख प्राणघाती है फिर भी वे प्रजा के कल्याण के लिए जीवित हैं।

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय सः।
लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति ।। ७।७

उनके हृदय में वात्सल्य प्रेम की धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती है। वे लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु को आत्मज की भाँति प्रेम करते दिखाई पड़ते हैं। राम के रूप का प्रभाव भी अद्भुत है। लव उनको देखते ही अपना सारा क्रोध भूल जाता है।

इस प्रकार राम एक आदर्श व्यक्ति के रूप में चित्रित किये गए हैं। उनके व्यक्तित्व में आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श स्वामी आदि का मिश्रण है। वे क्षमा, दया, औदार्य, गम्भीरता, स्नेह, विनयशीलता आदि के साक्षात् विग्रह हैं। कवि ने यथा सम्भव राम के चरित्र को आदर्श मानव के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है, पर वह उनके पूर्व-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गृहीत दैवी रूप से अप्रभावित नहीं रह सका। शम्बूक द्वारा वे भगवान् के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं।

सीता—सीता 'उत्तररामचरित' की नायिका एवं राम की सहधर्मिणी हैं। प्रारम्भ में ऋषि अष्टावक्र उनके महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए उन्हें पृथ्वीतनया प्रजापतितुल्य राजा जनक की दुहिता एवं श्रीराम की पत्नी के रूप में सम्बोधित करते हैं। [१।६] सीता जन्म से ही गंगा की भाँति पावन हैं तथा पावनता के निष्कर्ष पर पूर्णतया खरी उतरती हैं। वियोग की अग्नि में तप्त होकर उनकी पावनता भव्य एवं प्रोज्ज्वल हो उठती है। राम स्वयं उनकी पवित्रता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि 'जन्म से ही पवित्र के लिए अन्य पावनों से क्या? तीर्थ का जल और अग्नि दूसरी वस्तुएँ से पवित्र नहीं किये जाते'।

उत्पत्तिपरिपूताया: किमस्या: पावनान्तरै: ।
तीर्थोदकं च बह्निश्च नान्यत: शुद्धिमर्हत: ।। —२।१३

सीता, सती, साध्वी आदर्श पत्नी हैं एवं राम के प्रति उनके मन में असीम अनुराग है। राजा जनक भी उनके चरित्र की उच्चता का बखान करते हुए अघाते नहीं। सीता की पवित्रता को गंगा एवं पृथ्वी ने भी स्वीकार किया है। वे सीता के सम्पर्क से भी अपने को पावन मानती हैं—आवयोरपि यत्सङ्गात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते। निर्वासन की स्थिति में भी राम के प्रति सीता का अनन्य प्रेम विद्यमान रहता है। यद्यपि वे रामचन्द्र को आर्यपुत्र के स्थान पर 'राजा' शब्द से ही सम्बोधित कर अपने हृदय का क्षोभ व्यक्त करती हैं तथापि दण्डकारण्य में उनके मूर्च्छित होने पर अपने शीतल उपचार से उन्हें स्वस्थ कर देती हैं। राम को क्षीणकाय देख कर उनका मूर्च्छित हो जाना राम के अखण्ड स्नेह का परिचायक है। राम की विरहावस्था को देख कर तथा अपने वियोग में आँसू बहाते हुए पाकर उनका सारा क्षोभ तिरोहित हो जाता है। अश्वमेध में अपनी स्वर्ण-प्रतिमा के स्थापन की बात सुन कर उनकी सारी वेदना नष्ट हो जाती है और वे सन्तोषपूर्वक कहती हैं—अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममैष—मैं भी उनके हृदय की बात जानती हूँ और वे भी मेरे मन की बात जानते हैं। 'उत्खाततमिदानीं मे परित्यागशल्य-मार्यपुत्रेण'। आर्यपुत्र ने निर्वासनरूपी शल्य को उखाड़ दिया। राम के वियोग में उनके शरीर की जो अवस्था हो जाती है उससे उनके प्रेम की प्रतीति होती है।

सीता-त्याग के कारण वासन्ती जब राम को उपालम्भ देती है तो सीता उसे अच्छा नहीं मानतीं। उनके अनुसार वह प्रदीप्त आर्यपुत्र को और भी अधिक प्रदीप्त कर रही हैं—

'त्वयमेव सखि वासन्ति, दारुणा कठोरा च यैवमार्यपुत्रं प्रदीपयसि'।

सीता विशाल हृदया नारी हैं तथा उदार भी। पशु-पक्षी आदि के लिए भी उनके हृदय में स्नेह भरा हुआ है राम के वन गमन के समय पालित कदम्ब वृक्ष, गजशावक एवं मयूरों को देख कर उनके हृदय में वात्सल्य की धारा उमड़ पड़ती है। पशु-पक्षियों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एवं प्रकृति के प्रति भी वे अनुराग प्रदर्शित करती हैं। पूर्व पालित-वन-वृक्षों को देख कर उन्हें अपने पुत्र लव-कुश की भी याद हरी हो जाती है और फलस्वरूप उनके पयोधरों में दूध चूने लगता है।

सीता में गम्भीरता के साथ विनोदप्रियता भी है। प्रथम अंक में चित्र-दर्शन के समय जब लक्ष्मण माण्डवी एवं श्रुति कीर्ति का परिचय देकर उर्मिला को छोड़ देते हैं तो सीता उर्मिला की ओर संकेत करती हुई मधुर परिहास करती हैं—वत्स, इयमप्यपरा का ? इस प्रकार 'उत्तररामचरित' में सीता आदर्श पत्नी, विरह की प्रतिमा, सहनशीलता की मूर्त्ति एवं निश्छल, दृढ़ तथा पवित्र प्रेम से परिपूरित चित्रित की गई हैं।

अन्य पात्र—'उत्तररामचरित' में दो दर्जन के लगभग पात्रों का चित्रण किया गया है; किन्तु उनमें महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व सीता और राम का ही है। अन्य चरित्रों में लव, चन्द्रकेतु, जनक, कौसल्या, वासन्ती एवं महर्षि वाल्मीकि भी कथावस्तु के विकास में महत्त्वपूर्ण शृङ्खला उपस्थित करते हैं। इसमें कवि ने तमसा, मुरला, भागीरथी, पृथ्वी एवं वनदेवता आदि प्रतीकात्मक पात्रों का भी चरित्रांकन किया है तथा ये विशिष्ट भावों से पूर्ण भी हैं। विद्याधर एवं विद्याधरी भी कथानक में गति देने में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। सबों के हृदय में सीता के प्रति करुणा का भाव एवं राम के प्रति श्रद्धा है।

रस-योजना—'उत्तररामचरित' का अंगी (प्रधान) रस करुण है। कवि ने करुण को प्रधान रस मानते हुए इसे निमित्त भेद से अन्य रसों में परिवर्तित होते हुए दिखाया है। प्रधान रस करुण के शृङ्गार, वीर, हास्य एवं अद्भुत रस सहायक के रूप में उपस्थित किये गए हैं। इस नाटक में भवभूति की भारती करुण रस से इस प्रकार आपूर्ण है कि चट्टान भी पिघल जाती है और वज्रहृदय भी मार्मिक पीड़ा का अनुभव कर अश्रु प्रवाहित करने लगता है। नाटक के प्रथम अंक में करुण-मिश्रित शृङ्गार का चित्रण किया गया है तथा चित्र-दर्शन, हास-विनोद एवं सीता का राम के वक्ष पर शयन करुण रस को अधिक गम्भीर बनाने के लिए पृष्ठाधार प्रस्तुत करते हैं। राम अपवाद की बात के श्रवण करने से ही मूर्च्छित हो जाते हैं तथा संज्ञा आने पर भी उनकी मूर्च्छा अनुण्ण रहती है। द्वितीय एवं तृतीय अंक में पूर्वानुभूत पदार्थों को देख कर विरही राम की सुप्त व्यथा मूर्त्तिमन्त हो जाती है। चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में कवि ने हास्यरस की योजना की है किन्तु इसमें वह सफल नहीं हो सका है। वस्तुतः भवभूति की गम्भीर प्रकृति हास्यरस के अनुकूल नहीं पड़ती। पंचम तथा षष्ठ अंक के विष्कम्भक में वीररस का प्राधान्य है और वहाँ करुणरस गौण पड़ जाता है। सप्तम अंक के प्रारम्भ में (गर्भांक में) करुणरस की प्रधानता है, पर सीता के जल से प्रकट होने से दर्शक चकित हो उठते हैं और वहाँ अद्भुतरस की छटा छिटक जाती है। अन्त में राम और सीता का पुनर्मिलन दिखा कर शृङ्गाररस की योजना कर दी गई है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आलोचना—'उत्तररामचरित' में भवभूति की कला पूर्ण प्रौढ़ि को प्राप्त कर कालिदस के समक्ष पहुँच गई है। कवि ने इसमें जितना गार्हस्थ जीवन एवं प्रेम का परिपाक प्रदर्शित किया है, सम्भवतः उतना किसी भी संस्कृत नाटक में नहीं हो सका है। इसमें जीवन की नाना परिस्थितियों, भावदशाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का अत्यन्त कुशलता तथा पूर्ण तन्मयता के साथ चित्रण किया गया है। प्रकृति के कोमल, भयंकर एवं मोहक और रूक्ष दृश्यों के प्रति कवि ने समान रूप से रुचि प्रदर्शित कर दोनों का चित्र उपस्थित किया है। राम और सीता के प्रणय का इतना उदात्त एवं पवित्र चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। परिस्थितियों के कठोर नियन्त्रण में प्रस्फुटित राम की कर्त्तव्यनिष्ठा तथा सीता का अनन्य प्रेम इस नाटक की महनीय देन है। इसमें नाटकीय कला का चरम विकास तो होता ही है साथ ही काव्यात्मक महनीयता का भी अपना महत्त्व है। प्रेमिल भावनाओं का सजीव चित्रण तथा वियोग की यातनाओं का करुण दृश्य इस नाटक में चरमोत्कर्ष पर अधिष्ठित हैं। भवभूति ने इस नाटक में राम के बहुचर्चित दैवी एवं आदर्श रूप को मानवीय धरातल पर अधिष्ठित कर उन्हें प्राणवन्त बना दिया है। राम और सीता विष्णु एवं लक्ष्मी के अवतार होते हुए भी साधारण विरही के रूप में उपस्थित किये गए हैं और इसमें कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। 'उत्तररामचरित' में आद्यन्त गम्भीरता का वातावरण बना रहता है। भवभूति के गम्भीर व्यक्तित्व में विनोदप्रियता का सर्वथा अभाव है और यही कारण है कि इसमें विदूषक का समावेश नहीं है। संस्कृत नाटकों की प्रवृत्ति के विरुद्ध कवि ने इसमें प्रकृति के रौद्र रूप का भी पूर्ण तन्मयता के साथ चित्रण किया है। वाल्मीकि रामायण की करुण कथा को संयोग पर्यवसायी बनाकर भवभूति ने न केवल मौलिक सूझ का परिचय दिया है अपितु नाट्यशास्त्रीय मर्यादा की रक्षा करते हुए नैतिक दृष्टि से भी यह सिद्ध कर दिया है कि साधु पुरुषों का अन्त सुखमय होता है—धर्मोरक्षति रक्षितः। कवि ने राम और सीता का पुनर्मिलन अप्रत्याशित रूप से दिखा कर दर्शकों के मन में नवीन कौतूहल भर दिया है। सप्तम अंक में वियोग में ही संयोग करा कर बहुत बड़ा कौशल प्रदर्शित किया गया है। राम और सीता का पुनर्मिलन सदाचार नैतिकता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा की विजय है जिससे दर्शकों के मन में तनाव नहीं रह पाता और वे अपूर्व सन्तोष का भाव लेकर लौटते हैं। द्वितीय और तृतीय अंकों में भी कवि की चित्रण-निर्माण की पटुता दिखाई पड़ती है। इन अंकों में कथा की गति मन्द पड़ गई है और इनमें घटनात्मक त्वरा का अभाव है। पर, दोनों ही अंक सीता-राम के चारित्रिक प्रस्फुटन एवं काव्यात्मक भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन अंकों में सीता-निर्वासन के बाद की अनेक घटनाओं; जैसे सीता के पुत्रों की उत्पत्ति की सूचना, सीता-त्याग के बारह वर्ष व्यतीत होने की सूचना एवं राम द्वारा अश्वमेध में सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनाने की घटना की सूचना प्राप्त होती है। सभी दृष्टियों से महनीय होते हुए भी 'उत्तररामचरित' में नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कतिपय दोष

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिखाई पड़ते हैं। पण्डितों ने इसका दोषान्वेषण करते हुए जो विचार व्यक्त किया है उसका सार इस प्रकार है—

'उत्तररामचरित' में नाटक की तीन अन्वितियों की अत्यन्त उपेक्षा की गई है; वे हैं—समय की अन्विति, स्थान की अन्विति एवं कार्य की अन्विति। नाटककार के लिए संकलनत्रय पर अत्यधिक ध्यान देना आवश्यक होता है, अन्यथा उसके नाटक में बिखराव आ जायगा। इसमें काल की अन्विति पर ध्यान नहीं दिया गया है। प्रथम तथा द्वितीय अंक की घटनाएँ अत्यन्त त्वरा के साथ घटती हैं। स्थान की अन्विति का भी इस नाटक में उचित निर्वाह नहीं किया गया है। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अंक की घटनायें क्रमशः अयोध्या, पंचवटी एवं जनस्थान में घटित होती हैं तथा चतुर्थ अंक की घटनाएँ वाल्मीकि आश्रम में घटती हैं। द्वितीय से चतुर्थ अंक तक के वार्त्तालाप नाटकीय दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं; भले ही उनकी गरिमा कलात्मक समृद्धि की दृष्टि से हो। अतः फल की ओर उन्मुख होने एवं उसकी प्राप्ति की तीव्रता में इन स्थलों का औचित्य एवं उपयोगिता नगण्य है। अतः कार्यान्विति के भी विचार से इस नाटक को शिथिल माना गया है। समीक्षकों ने यहाँ तक विचार व्यक्त किया है कि यदि उपर्युक्त अंशों को नाटक से निकाल भी दिया जाय तो भी कथावस्तु के विकास एवं फल में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता।

इस नाटक में एक ही प्रकार की प्रकृति के पात्रों का चित्रण किया गया है तथा इसमें पात्र बाहुल्य का अभाव है। राम, सीता, लक्ष्मण, शम्बूक, जनक, वाल्मीकि प्रभृति सभी पात्र गम्भीर प्रकृति के हैं। पात्रों में प्रकृतिगत एकरूपता के कारण दर्शकों का कौतूहल रह नहीं पाता। कवि ने द्वन्द्वमय पात्रों के चित्रण में अभिरुचि नहीं दिखलाई है। इसके अन्य दोषों में विदूषक का अभाव, भाषा का काठिन्य एवं विलाप-प्रलापों का आधिक्य है। इसके अधिकांश पात्र फूट-फूट कर रोते हैं और प्रधान पात्रों में भी यह दोष दिखाई पड़ता है जो चरित्रगत उदात्तता का बहुत बड़ा दोष है। इन प्रलापों से धीरोदात्त चरित्र के विकास एवं परिपुष्टि में सहायता नहीं प्राप्त होती। कतिपय आचार्यों ने पंचम अंक के अन्तर्गत राम के चरित्र पर लव द्वारा किये गए आक्षेप को अनौचित्य-पूर्ण माना है। नायक के चरित्रगत दोषों का वर्णन करने के कारण क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'औचित्यविचारचर्चा' में इसे अनौचित्यपूर्ण कहा है।

पर, इन दोषों के होते हुए भी भवभूति के नाटकों की प्रभा धूमिल नहीं होने पाती। वे वाग्वश्य कवि हैं और उनकी कला अपने में प्रौढ़ है।

भट्ट नारायण

कविवर भट्टनारायण 'वेणीसंहार' नामक नाटक के रचयिता हैं। इनके जीवन का पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता। इनकी एकमात्र रचना 'वेणीसंहार' उपलब्ध है। 'वेणी-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संहार' के अध्ययन से पता चलता है कि ये वैष्णव सम्प्रदाय के कवि थे। उसके भरत-वाक्य से ज्ञात होता है कि ये किसी सहृदय राजा के आश्रित रहे होंगे। स्टेनकोनो के कथनानुसार आदिशूर आदित्यसेन था जिसका समय ७७१ ई० है। रमेशचन्द्र मजूमदार भी माधव गुप्त के पुत्र आदित्यसेन का समय ६७५ ई० के लगभग मानते हैं जो शक्तिशाली होकर स्वतन्त्र हो गया था। आदिशूर के साथ सम्बद्ध होने के कारण भट्ट नारायण का समय ७वीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है।

'वेणीसंहार' में महाभारत के युद्ध को वर्ण्यविषय बनाकर उसे नाटक का रूप दिया गया है। इसमें कवि ने मुख्यतः द्रौपदी की प्रतिज्ञा का वर्णन किया है, जिसके अनुसार उसने दुर्योधन के शोणित से अपना केश बाँधने का निश्चय किया था। अन्त में गदायुद्ध में भीमसेन ने दुर्योधन को मार कर उसके रक्त से रंजित अपने हाथों द्वारा द्रौपदी की वेणी का संहार (गूँथना) करता है। इसी कथानक की प्रधानता के कारण इसका नाम 'वेणीसंहार' है।

इस नाटक में छह अंक हैं—प्रथम अंक में नान्दी के अनन्तर प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा श्लिष्ट वचनों में पाण्डवों तथा कौरवों के बीच सन्धि कराने के लिए श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना दी गई है। सन्धि के प्रस्ताव को सुनकर भीम तथा द्रौपदी को अत्यधिक क्रोध होता है। वे अपने अपमान का प्रतिकार युद्ध द्वारा करना चाहते हैं, सन्धि से नहीं। भीम स्पष्टतः यह कह देते हैं कि बिना प्रतिशोध लिए मैं रह नहीं सकता और सन्धि का प्रस्ताव करने पर युधिष्ठिर से भी सम्बन्ध-विच्छेद कर दूँगा। भीम को शान्त करने का सहदेव का प्रयत्न भी निष्फल सिद्ध होता है और द्रौपदी अपने केशों को दिखाकर भीम के क्रोध को द्विगुणित कर देती है। भीम द्रौपदी को सान्त्वना देते हैं कि वे अपनी भुजाओं से गदा को घुमाते हुए दुर्योधन की जाँघ तोड़ डालेंगे तथा उसके रक्तरंजित हाथों से ही उसकी वेणी बाँधेंगे। इसी समय नेपथ्य से श्रीकृष्ण के असफल प्रयत्न की सूचना होती है और क्रुद्ध युधिष्ठिर रणघोषणा करते हैं। रणघोषणा सुनते ही भीम एवं द्रौपदी उल्लसित होते हैं तथा भीम और सहदेव उमंग भरे चित्त से द्रौपदी से विदा लेकर रणक्षेत्र की यात्रा करते हैं।

द्वितीय अंक का प्रारम्भ दुर्योधन की पत्नी भानुमती के अशुभ स्वप्न से होता है। वह रात्रि में देखे गए अमंगलजनक स्वप्न को अपनी सखियों से कह कर व्यथित हो जाती है और भावी आशंका की चिन्ता से उसके निवारण का उपाय जानना चाहती है। उसने देखा कि एक नकुल, सौ सर्पों का वध कर, उसके स्तनांशुक हरने के लिए प्रयत्न कर रहा है। दुर्योधन छिप कर इस घटना को सुनता है तथा माद्रीपुत्र नकुल एवं अपनी पत्नी के गुप्त प्रेम के प्रति सन्देह होने से क्रोधित हो उठता है। पर, सम्पूर्ण स्वप्न की घटना सुन कर उसके सन्देह का निराकरण हो जाता है। सखियाँ अमंगल के दोष को हटाने के लिए पूजा का विधान करती हैं। भानुमती सूर्य की पूजा में रत होकर अपनी दासी से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्घ्यपात्र मांगती है, पर वह अन्यत्र व्यस्त होने के कारण नहीं आती, उसी समय स्वयं दुर्योधन अर्घ्यपात्र लेकर प्रवेश करता है। वह व्रत में संलग्न भानुमती के सौन्दर्य की प्रशंसा करता है और उसके मना करने पर भी उसे आलिंगन-पाश में जकड़ लेता है। इसी समय तीव्र झंझावात के शान्त होने पर जयद्रथ की माता एवं पत्नी (दुर्योधन की बहिन) आकर उसे सूचित करती हैं कि अभिमन्यु की मृत्यु से दुःखित होकर अर्जुन ने सूर्यास्त होने तक जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है, अतः आप उसकी रक्षा की व्यवस्था करें। दुर्योधन उन्हें सान्त्वना देकर; रथारूढ़ हो, संग्राम स्थल की ओर प्रस्थान करता है।

तृतीय अंक के प्रवेशक में एक राक्षस एवं एक राक्षसी के वार्तालाप से भीषण युद्ध की सूचना प्राप्त होती है तथा यह भी ज्ञात होता है कि द्रोणाचार्य का वध हो चुका है। तत्पश्चात् पिता की मृत्यु से क्रुद्ध अश्वत्थामा का रंगमंच पर प्रवेश होता है। कृपाचार्य उसे सान्त्वना देकर तथा द्रोणाचार्य के वध का प्रतिकार करने के लिए उसे दुर्योधन के पास सेनाध्यक्ष बनाने के लिए अनुरोध करते हैं। पर, दुर्योधन ने इसके पूर्व ही कर्ण को सेनापति बनाने का वचन दे दिया है। इस पर कर्ण एवं अश्वत्थामा के बीच भीषण वाग्युद्ध होता है और अश्वत्थामा प्रतिज्ञा करता है कि जबतक कर्ण जीवित रहेगा तब तक वह अस्त्र नहीं ग्रहण करेगा। इसी बीच नेपथ्य में भीमसेन की ललकार सुनाई पड़ती है और वे दुःशासन को पकड़ कर उसे बचाने के लिए कौरवों को चुनौती देते हैं। दुर्योधन, कर्ण एवं अश्वत्थामा उसकी रक्षा के लिए आते हैं तब तक भीमसेन दुःशासन का वध कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेता है।

चतुर्थ अंक में युद्ध में आहत दुर्योधन घर आता है और उसे दुःशासन के वध की सूचना प्राप्त होती है। जब वह शोकग्रस्त होकर रुदन करता है, उसी समय सुन्दरक नामक दूत उसे युद्ध की स्थिति का पता बताता है। दूत कर्ण का एक पत्र भी देता है, जो दुःखातिरेक से पूर्ण है। दुर्योधन उसे पढ़कर पुनः युद्धस्थल में जाने को उद्यत होता है, किन्तु उसी समय गान्धारी, धृतराष्ट्र तथा संजय के आगमन से रुक जाता है।

पंचम अंक में धृतराष्ट्र एवं गान्धारी द्वारा दुर्योधन को समझाने एवं सन्धि कर युद्ध की विभीषिका को बन्द करने का प्रस्ताव वर्णित है, पर दुर्योधन उनसे सहमति नहीं प्रकट करता। उसी समय कर्ण के मारे जाने की सूचना प्राप्त होती है और दुर्योधन युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। दुर्योधन को खोजते हुए भीम एवं अर्जुन आते हैं और गान्धारी तथा धृतराष्ट्र को प्रणाम करते हैं। भीम प्रणाम करते हुए भी कटूक्तियों का प्रयोग करता है। दुर्योधन भीम को फटकारता है तथा दोनों में वाग्युद्ध होता है। इसी बीच भीम और अर्जुन को युधिष्ठिर का आदेश प्राप्त होता है कि सन्ध्या हो गई है और युद्ध-समाप्ति का समय हो गया है। तभी अश्वत्थामा आकर दुर्योधन से कर्ण की निन्दा कर स्वयं अपने बाहुबल से पाण्डवों का संहार करने की बात कहता है। पर, दुर्योधन उसे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपालम्भ देते हुए कहता है कि जिस प्रकार उसने कर्ण के वध की प्रतीक्षा की है उसी प्रकार अब दुर्योधन की मृत्यु की भी प्रतीक्षा करे। अश्वत्थामा अपमानित होकर चला जाता है, पर धृतराष्ट्र संजय को भेज कर उसके क्रोध को शान्त करने का प्रयास करते हैं।

छठें अंक में नाटककार ने अत्यन्त रोचकता के साथ कथानक में नया मोड़ दिया है। युधिष्ठिर चिन्तित मुद्रा में दिखाई पड़ते हैं। उनकी चिन्ता का कारण है भीम की यह प्रतिज्ञा जिसके अनुसार यदि वे सन्ध्या समय तक दुर्योधन का बध न करें तो स्वयं प्राण दे देंगे। यह बात सुनते ही दुर्योधन छिप जाता है और बहुत खोज करने पर भी उसका पता नहीं चलता। उसी समय श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर एक दूत आता है और यह सूचना देता है कि भीम और दुर्योधन में गदा-युद्ध हो रहा है जिसमें भीम की विजय निश्चित है, अतः वे शीघ्र ही राज्याभिषेक की तैयारी करें। युधिष्ठिर हर्षित हैं और द्रौपदी 'वेणीसंहार' का उत्सव मनाने के लिए तत्पर है। उसी समय दुर्योधन के दल का चार्वाक नामक एक राक्षस संन्यासी का वेश धरकर आता है और कहता है कि उसने भीम एवं दुर्योधन का गदा-युद्ध तो देख लिया है पर प्रचण्ड धूप के कारण, तृषार्त्त होने से, अर्जुन और दुर्योधन का युद्ध न देख सका। उसने बताया कि भीम की मृत्यु हो चुकी है। कृष्ण को लेकर बलराम मथुरा चले गये हैं, अतः गदा-युद्ध में अर्जुन की मृत्यु निश्चित है। इस हृदय-विदारक समाचार को सुनकर युधिष्ठिर और द्रौपदी शोकाभिभूत होकर मरने को तत्पर होते हैं और चार्वाक की सहायता से चिता तैयार की जाती है। चार्वाक उन्हें और भी अधिक उकसाता है और चिता तैयार होने पर वहाँ से खिसक जाता है। वह छिप कर दोनों के चिता-रोहण की प्रतीक्षा करने लगता है। उसी समय नेपथ्य में कोलाहल सुनाई पड़ता है और युधिष्ठिर दुर्योधन का आगमन जानकर शस्त्र धारण करते हैं और द्रौपदी छिपने का प्रयत्न करती है। तत्क्षण दुर्योधन के शोणित से रंजित भीमसेन आकर द्रौपदी को पकड़ कर उसकी वेणी का संहार करना चाहते हैं और युधिष्ठिर उन्हें दुर्योधन समझकर भुजा में कस कर मारना चाहते हैं। भीमसेन उन्हें अपना परिचय देता है और कृष्ण तथा अर्जुन भी आ जाते हैं। भरतवाक्य के पश्चात् नाटक की समाप्ति हो जाती है।

नायकत्व-निर्णय—'वेणीसंहार' का उपर्युक्त कथानक 'महाभारत' पर आधृत होते हुए भी कवि द्वारा अनेक परिवर्त्तन कर लोकप्रिय बनाया गया है। इसमें भट्टनारायण की काव्यचातुरी तथा नाट्यकला दोनों परिलक्षित होती है। यह संस्कृत का अद्भुत नाटक है तथा इसका नायकत्व भी विवाद का प्रश्न बना हुआ है। विद्वानों ने युधिष्ठिर, भीम एवं दुर्योधन तीनों को ही इसका नायक मानकर अपने मत की पुष्टि के लिए विभिन्न प्रकार के तर्क दिये हैं। इसमें कोई भी पात्र ऐसा नहीं है जो नायक की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। पर, साथ ही कई पात्र ऐसे हैं जो नायक के पद पर अधिष्ठित किये जा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सकते हैं। अब हमें यहाँ विचार करना है कि इस पद के लिए कौन-सा पात्र अधिक उपयुक्त है। पहले दुर्योधन को लिया जाय—इस नाटक की अधिकांश घटनाएँ दुर्योधन से सम्बद्ध हैं तथा वह वीरता एवं आत्मसम्मान की मूर्ति है। वह स्नेही भ्राता, विश्वस्त मित्र तथा कट्टर शत्रु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के मंच पर वह अधिक-से-अधिक प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम अंक में तो वह प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित रहता है तथा प्रथम अंक में कृष्ण को बन्दी बनाने में उसका उल्लेख किया गया है। अन्तिम अंक में भी भीमसेन के साथ गदा-युद्ध करने में उसका कई बार उल्लेख हुआ है। कौरवों का राजा होने के कारण वह नायक-पद के लिए सर्वथा उपयुक्त है। कतिपय विद्वान् 'वेणीसंहार' को दुःखान्त रचना मान कर उसका नायक दुर्योधन को ही स्वीकार करते हैं। पर, इस मत में भी दोष दिखाई पड़ता है, क्योंकि भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार नायक का वध वर्जित है—नाधिकारिवधं क्वापि।

अन्य कई कारण ऐसे हैं जिनसे दुर्योधन इस नाटक का नायक नहीं हो सकता। नाट्यशास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार नायक का धीरोदात्त होना आवश्यक है, जो महासत्त्व, अतिगम्भीर, क्षमावान्, अविकत्थन, निगूढ़ाहंकार और दृढ़व्रत होता है। दुर्योधन में उपर्युक्त गुण नहीं पाये जाते, अतः भारतीय परम्परा के अनुसार वह नायक नहीं हो सकता। भीमसेन की वीरता संग्राम स्थल में दिखाई पड़ती है, किन्तु दर्योधन का वीरत्व वचनों में ही अभिव्यक्त होता है। द्वितीय अंक में अपनी पत्नी के साथ उसकी शृङ्गारिक भंगिमाओं का निदर्शन हुआ है। जब युद्ध की तैयारी हो रही है वह भानुमती को आलिंगन-पाश में बाँधे हुए है। इस नाटक में कवि का लक्ष्य दुर्योधन का विनाश दिखाना ही है। इसलिए उसे इस नाटक का नायक नहीं माना जा सकता।

'वेणीसंहार' के नायकत्व का दूसरा प्रत्याशी भीमसेन है। इस नाटक की प्रमुख घटना एवं शीर्षक का सम्बन्ध भीमसेन ही है। इसकी प्रमुख घटना है द्रौपदी की वेणी का संहार (सँवारना), जिसे भीम ही दुर्योधन की जाँघों को तोड़ कर, उसके रक्त से ही, सम्पन्न करता है। अपने रक्तरंजित हाथों से, द्रौपदी की वेणी गूंथ कर, वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करता है। यदि इसे नाटक का फल मान लिया जाय तो नाटक के फल का भोक्ता भीमसेन सिद्ध होता है। अपने लक्ष्य की पूर्ति में वह सतत प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है और आरम्भ से अन्त तक उसी की दर्पोक्तियाँ सुनाई पड़ती हैं। द्वितीय अंक में कंचुकी दुर्योधन की जंघा के प्रसंग में 'भग्नं भीमेन' कह कर सबका ध्यान आकृष्ट कर देता है। दुर्योधन की भाँति भीम का भी प्रभाव सम्पूर्ण नाटक पर छाया रहता है। अतः उपर्युक्त कारणों से कतिपय आलोचक भीमसेन को ही 'वेणीसंहार' का नायक स्वीकार करते हैं। आरम्भ से अन्त तक भीमसेन अपनी वीरता प्रदर्शित करता है और छठें अंक में यह भी सूचना प्राप्त होती है कि दुर्योधन बांधवों और सहायकों के मारे जाने के पश्चात् प्राणों के भय से किसी सरोवर में छिपा हुआ है। क्षत्रियोचित कर्म की दृष्टि से दुर्योधन का यह कार्य श्लाघ-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नीय नहीं है। यद्यपि भीमसेन का चरित्र प्रारम्भ से अन्त तक उज्ज्वल तथा वीरता से पूर्ण है, तथापि भारतीय परम्परा उसे नायकत्व प्रदान करने को प्रस्तुन नहीं है। भीम धीरोदात्त नायक न होकर प्रतिपक्षी नायक धीरोद्धत का प्रतिनिधित्व करता है। वह क्रोधी आत्मप्रशंसी तथा अहंकारी होने से नायक-पद के लिए उपयुक्त नहीं बैठता तथा धृतराष्ट्र एवं गांधारी को कटूक्तियों से मर्माहत करने में भी नहीं हिचकता। वह अपनी वाणी पर संयम नहीं रखता, अतः नायक-पद के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होता है।

नायकत्व के तृतीय प्रत्याशी युधिष्ठिर हैं। ये भारतीय परम्परा के अनुसार धीरोदात्त नायक हैं, अतः इनमें नायकत्व की पूरी क्षमता है। ये धीर, शान्त तथा अविकत्थन हैं। युधिष्ठिर के पक्ष में अन्य अनेक तथ्य भी हैं जिनसे इनका नायकत्व खण्डित नहीं होता। इस नाटक का नामकरण प्रमुख घटना पर हुआ है, किन्तु वही इसका 'फल' नहीं है। इसका फल द्रौपदी का 'वेणीसंहार' न होकर 'शत्रुसंहार' एवं राज्य की प्राप्ति है और इन दोनों के भोक्ता महाराज युधिष्ठिर हैं। भरतवाक्य का कथन करनेवाला व्यक्ति ही नायक होता है और इस नाटक में यह कार्य युधिष्ठिर द्वारा ही सम्पन्न कराया गया है। विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में युधिष्ठिर को ही 'वेणीसंहार' का नायक माना है। परम्परा के विचार से युधिष्ठिर ही इसके नायक सिद्ध होते हैं, पर कवि ने इनके चरित्र को पूर्ण रूप से उभरने नहीं दिया है और नायक के चरित्र की पूर्ण उपेक्षा की है। युधिष्ठिर नाटक के अन्तिम अंक में ही सामने आते हैं, शेष अंकों में इनका व्यक्तित्व ओझल रहता है तथा प्रथम एवं पंचम अंक में इनका उल्लेख नेपथ्य से होता है। निष्कर्ष यह कि परम्परा के विचार से भले ही इसके नायक युधिष्ठिर हों, किन्तु कवि ने इनके नायकोचित विकास पर ध्यान नहीं दिया है।

वस्तुयोजना—'वेणीसंहार' संस्कृत के उन नाटकों में है, जिसमें शास्त्रीयता का पूर्ण निर्वाह है तथा नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इसे उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया। सन्धियों, अर्थप्रकृतियों एवं अवस्थाओं का इसमें सफल नियोजन किया गया है। पर, सन्ध्यङ्गों की योजना के सम्बन्ध में विद्वानों को कई त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं। उदाहरण स्वरूप नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में मुख सन्धि के अंगों के पूर्व ही 'विलोभन' का उल्लेख किया जाता है, तत्पश्चात् प्राप्ति का, पर 'वेणीसंहार' में पहले प्राप्ति का उदाहरण मिलता है तदुपरान्त विलोभन का। इसी प्रकार का व्यतिक्रम अन्य सन्धियों में भी दिखाई पड़ता है। इस नाटक का प्रधान कार्य है द्रौपदी का वेणी बाँधना और इसका बीज है युधिष्ठिर का क्रोध। क्योंकि जब तक वे क्रोधित नहीं होते युद्ध की घोषणा संभव नहीं थी। 'वेणीसंहार' के प्रथम अंक के अन्तर्गत 'स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।' भीम के इस कथन से लेकर 'क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते' (१।२४) तक युधिष्ठिर का क्रोधस्वरूप बीज सूचित होता है, अतः प्रथम अंक में मुख सन्धि का विधान है। द्वितीय अंक में प्रतिमुख सन्धि दिखाई गयी है, जहाँ युधिष्ठिर का क्रोधरूपी बीज बिन्दु के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रूप में प्रसरित होता है, अतः प्रथम अंक में मुख सन्धि का विधान है। तृतीय अंक में गर्भ सन्धि है और यह पंचम अंक तक चलती है। छठे अंक में अवमर्श तथा निर्वहण सन्धियाँ चलती हैं। प्रारम्भ में युधिष्ठिर की सन्देहात्मक अवस्था दिखाई पड़ती है और वह स्थिति भीम के पहचाने जाने तक चलती है, किन्तु कंचुकी द्वारा भीमसेन के पहचाने जाने पर निर्वहरण सन्धि आती है और उसका विधान अन्त तक होता है। इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से इस नाटक की कथावस्तु की योजना उपयुक्त प्रतीत होती है। पर, नाटकीय दृष्टि से इसमें कतिपय दोष दिखाई पड़ते हैं। इस नाटक की प्रमुख घटना है दुर्योधन की जाँघ तोड़कर भीमसेन द्वारा द्रौपदी की वेणी को सजाना, पर इसमें महाभारत की सम्पूर्ण कथा का नियोजन कर नाटककार ने कथानक को विशृङ्खल कर दिया है। इसमें अनेक असम्बद्ध घटनाओं का नियोजन कर दिया गया है, जिससे मूल कार्य तथा कथा की गति में व्यवधान उपस्थित हो जाता है। कार्य-व्यापार के आधिक्य के कारण नाटक में कार्यान्विति का अभाव है तथा सभी अंकों के दृश्य असम्बद्ध एवं बिखरे से प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार सभी अंकों के दृश्य परस्पर अनुस्यूत नहीं दिखाई पड़ते और न एक अंक की कथा का दूसरे में विकास होता है। द्वितीय अंक में वर्णित भानुमतो के साथ दुर्योधन का प्रणय-प्रसंग नितान्त अनुपयुक्त एवं असम्बद्ध है तथा नाटक की मुख्य कथा के साथ इसका तुक भी नहीं बैठता और वीर रस प्रधान नाटक के लिए यह नितान्त अनुचित प्रतीत होता है। अतः आचार्य मम्मट ने इसे 'अकाण्डे प्रथनम्' नामक दोष में परिगणित किया है। 'वेणीसंहार' में घटनाओं का आधिक्य है, पर उनमें व्यापारान्विति (यूनिटी ऑफ एक्शन) का अभाव है। तृतीय अंक का कर्ण-अश्वत्थामा-विवाद मार्मिक भले ही हो, पर नाटकीय कथावस्तु के विकास की दृष्टि से अनावश्यक है तथा दोनों योद्धाओं की प्रतिस्पर्धा में नाटकीय सम्भावनाओं का विकास नहीं हो सका है। चतुर्थ अंक में सुन्दरक द्वारा प्रस्तुत किया गया युद्ध का विस्तृत विवरण नाटक के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता; क्योंकि यहाँ नाटकीय गति अवरुद्ध हो गयी है। युद्ध के सारे व्यापार को मंच पर उपस्थित न करा कर सुन्दरक के मुँह से सूचित कराया गया है। इतना विस्तृत विवरण सामाजिकों के लिए ऊब पैदा कर उनके कौतूहल को नष्ट कर देता है। अन्तिम अंक में चार्वाक मुनि की उपकथा का समावेश भी अनावश्यक प्रतीत होता है तथा युधिष्ठिर का भीम को दुर्योधन समझ लेना अस्वाभाविक ज्ञात होता है। इस प्रकार कथावस्तु व्यापारान्विति के अभाव के कारण शिथिल एवं विस्तृत संवादों के समावेश से गतिहीन हो गई है। इसके युद्धों के विस्तृत वर्णन श्रव्य काव्य की दृष्टि से अवश्य ही महत्त्वपूर्ण हैं, पर रंगमंच पर उनका दिखाना सम्भव नहीं है। इन सारी त्रुटियों के होते हुए भी, यह नाटक शास्त्रीय विधान की दृष्टि से, शुद्ध एवं लोकप्रिय है। अधिकांश आचार्यों ने शास्त्रीय विवेचन में इसे स्थान देकर इसकी वैज्ञानिक शुद्धता की पुष्टि की है।

नाटककार ने इसमें कार्यावस्था एवं अर्थप्रकृति की सुन्दर रूप से योजना की है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पाँच अर्थप्रकृतियाँ हैं। इस नाटक का 'कार्य' या फल है द्रौपदी की वेणी का संहार (सँवारना)। 'वेणीसंहार' में भीम द्वारा उत्साहित युधिष्ठिर का क्रोध ही 'बीज' हैं और वही द्रौपदी के केशसंयमन रूप कार्य का हेतु है। इसके द्वितीय अंक में दुर्योधन की प्रणय-चेष्टा 'बिन्दु' है क्योंकि यह प्रसंग मुख्य इति वृत्त को विच्छिन्न कर देता है। पर जयद्रथ की माता के आ जाने से पुनः उसका ध्यान युद्ध की ओर लग जाता है। तृतीय अंक में अश्वत्थामा का पितृशोक तथा विलाप एवं कर्ण के साथ वाग्युद्ध ,पताका' है तथा सुन्दरक द्वारा किया गया युद्ध-वर्णन भी पताका की श्रेणी में आता है। पंचम अंक में धृतराष्ट्र का सन्धि-प्रस्ताव एवं उसके लिए दुर्योधन को समझाना और चार्वाक राक्षस का प्रसंग 'प्रकरी' के अन्तर्गत आते हैं। दुर्योधन-वध के पश्चात् द्रौपदी का केश-संयमन 'कार्य' हो जाता है।

इसमें पाँचों अवस्थाओं—प्रारम्भ,यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम—की सुन्दर ढंग से योजना की गई है। प्रथम अंक में द्रौपदी के केश-संयमन के लिए भीमसेन का दुर्योधन के रक्त से उस क्रिया को सम्पन्न करने की इच्छा व्यक्त करना 'आरम्भ' नामक अवस्था है। द्वितीय अंक में जयद्रथ की माता द्वारा अर्जुन के पराक्रम का वर्णन करना 'यत्न' है। तृतीय एवं चतुर्थ अंकों में 'प्राप्त्याशा' का रूप दिखाई पड़ता है। भीमसेन के इस कथन में 'सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः' तथा चतुर्थ अंक में दुर्योधन की मृत्यु की संभावना के सूचक श्लोक (२, ३, ४, ६) इसी अवस्था के द्योतक हैं। ६ठें अंक में दुर्योधन का पता लग जाना तथा पांचालक का कृष्ण का सन्देश लेकर युधिष्ठिर के पास आना 'नियताप्ति' है। अन्तिम अवस्था 'फलागम' का रूप भीमसेन के द्वारा द्रौपदी के केश-संयमन में दिखाई पड़ता है।

पात्र तथा चरित्र-चित्रण—भट्टनारायण ने पात्रों के शील-निरूपण में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। यद्यपि महाभारत से कथावस्तु लेने के कारण भट्टनारायण पात्रों के चरित्र-चित्रण में पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं थे, फिर भी उन्होंने यथासंभव उन्हें प्राणवन्त एवं वैविध्यपूर्ण चित्रित किया है। इसके प्रमुख पात्र है—भीम, दुर्योधन, युधिष्ठिर, कृष्ण, अश्वत्थामा, कर्ण एवं धृतराष्ट्र तथा नारी चरित्रों में द्रौपदी, भानुमती एवं गान्धारी हैं।

भीमसेन—वेणीसंहार नाटक में आद्यन्त भीमसेन का प्रभाव परिदर्शित होता है तथा प्रत्येक अंक में उसकी रोष-पूर्ण गर्जना तथा प्रतिज्ञा सुनाई पड़ती है। वह रोष, स्फूर्ति एवं उत्साह का प्रतीक एवं दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति के रूप में चित्रित है। युधिष्ठिर उसे 'प्रिय-साहस' के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस नाटक का प्रारम्भ भीमसेन के प्रवेश से होता है तथा पूरे नाटक पर उसके व्यक्तित्व की अखण्ड छाया दिखाई पड़ती है। वह प्रारम्भ से ही प्रतिशोध की ज्वाला में संतप्त है एवं कौरवों के साथ श्रीकृष्ण की सन्धि-वार्ता उसके लिए असह्य है। उसका प्रतिशोध भयंकर है और इसके लिए यदि उसके बड़े भाई युधिष्ठिर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अवरोध उपस्थित करें तो वह उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने को प्रस्तुत है। तृतीय अंक में सारी कौरव सेना के समक्ष वह दु:शासन को पकड़ कर, कौरवों को उसकी रक्षा की चुनौती देता हुआ, उसे मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है। पंचम अंक में वह दुर्योधन के समक्ष वृद्ध एवं विकल धृतराष्ट्र को कटूक्तियों के प्रहार से व्यथित कर देता है, जिसमें उसका जंगलीपन एवं उद्धत स्वभाव प्रकट होता है। वह ऐसा दर्पोन्मत्त उद्धत नायक है जिसके व्यक्तित्व की एक मात्र विशेषता है— प्रतिशोध एवं प्रतिज्ञा-पूर्त्ति। उसकी गर्वोक्तियों के द्वारा नाटककार ने रौद्ररस की सृष्टि में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। वह अपमान का बदला लेने के आवेश में उचितानुचित को भी भूल जाता है और यही उसके चरित्र का दुर्बल पक्ष है।

दुर्योधन—इस नाटक में दुर्योधन के चरित्र में विविधता दिखाई पड़ती है। बहुत अंशों में इसका चरित्र भीमसेन से साम्य रखता है। वह भीम की भाँति उद्धत स्वभाव का है तथा कभी भी, किसी परिस्थिति में भी, हाथ-पर-हाथ धर कर नहीं बैठता। दृढ़ निश्चय उसके चरित्र की बहुत बड़ी विशेषता है। वह आत्मविश्वासी है, अत: उसे अपनी विजय पर दृढ़ विश्वास है। इस नाटक में वह सर्व प्रथम द्वितीय अंक में दिखाई पड़ता है, जहाँ वह एक शृङ्गारी एवं विलासी व्यक्ति के रूप में चित्रित है। वह युद्ध की विभीषिका को भूल कर अपनी पत्नी के प्रति प्रणय-क्रिया में व्यस्त हो जाता है तथा प्रेमावेश में प्रिया के व्रत को भंग कर उसे दृढ़ालिंगन में आबद्ध कर लेता है। द्वितीय अंक में ही वह वीरत्व से पूर्ण भी दिखाई पड़ता है तथा अपनी पत्नी की आशंकाओं का निराकरण करते हुए कहता है कि तुम सिंहराज की पत्नी होकर भयभीत क्यों होती हो? वह लुक-छिप कर युद्ध न कर शत्रु से प्रत्यक्ष रूप से लड़ना चाहता है। इस प्रकार वीरता में वह निश्चित रूप से सिंहराज ही प्रतीत होता है। वह दयावान् भी है तथा अपने आश्रितों पर सदैव दया दिखाता है। वह वीरता का प्रतीक है तथा अचेतावस्था में भी सारथी को रणक्षेत्र में अपने को हटा देने में कायरता समझता है। वह सहृदय भ्राता के रूप में चित्रित है तथा दु:शासन के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिए भी प्रस्तुत रहता है। वह सच्चा मित्र भी है और कर्ण के प्रति अपूर्व प्रेम प्रदर्शित करता है। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर वह शोक विह्वल हो उठता है। माता-पिता के प्रति उसके मन में सम्मान का भाव है। उसका गर्वशील व्यक्तित्व कभी झुकना नहीं चाहता और वह जो कुछ भी करता है उसके लिए खेद नहीं करता। षष्ठ अंक में जब यह प्रस्ताव आता है कि पांचों पाण्डवों में से वह किसी के साथ गदा-युद्ध करे तो वह दुर्बलों को न चुनकर भीमसेन से ही लड़ने को प्रस्तुत होता है। दुर्योधन का न झुकनेवाला व्यक्तित्व ही इस नाटक में आकर्षण का केन्द्र है।

युधिष्ठिर—'वेणीसंहार' में युधिष्ठिर का चरित्र थोड़ी देर के लिए उपस्थित किया गया है। नाटक के अन्तिम अंक में वे रंगमंच पर आते हैं। वे स्वभाव से न्यायप्रिय एवं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सहन-शील व्यक्ति हैं। वे क्रोध को यथासंभव शमित करना चाहते हैं, पर अत्याचार के समक्ष झुकना नहीं चाहते और अन्ततः युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। प्रथम अंक में कृष्ण द्वारा शान्ति प्रस्ताव ले जाना युधिष्ठिर की शान्तिप्रियता का द्योतक है, पर कृष्ण के प्रयास के असफल होने पर वे युद्ध की घोषणा कर देते हैं। उनके चरित्र में वीरता के साथ न्यायप्रियता एवं शान्ति उनके व्यक्तित्व का असाधारण गुण है। इनका व्यक्तित्व करुणा तथा भावुकता का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है। भीम की मृत्यु का समाचार सुनते ही वे अग्नि में जल जाने को तैयार हो जाते हैं और इस पर शान्तचित्त से विचार नहीं करते। नाटक की सारी कथा के केन्द्र रूप में इनका चित्रण किया गया है।

द्रौपदी—यह वीर पत्नी के रूप में चित्रित की गई है। इसमें आत्म-सम्मान का भाव भरा हुआ है। वीरता के प्रति इसका इस प्रकार आकर्षण है कि इसे युधिष्ठिर की न्याय परायणता भी दुर्बलता सिद्ध होती है। सच्ची क्षत्राणी के अनुरूप उसका क्रोध दिखाई पड़ता है। सहदेव एवं भीम के रण क्षेत्र में जाते समय उनकी मंगल-कामना करती है, इसमें इसकी नारी सुलभ कोमलता प्रदर्शित होती है। वह पत्नी के रूप में भीम को को अपने शरीर से असावधानी नहीं रखने पर जोर देती है और भीम तथा अर्जुन की मृत्यु का समाचार सुनकर जल मरने को प्रस्तुत हो जाती है।

शैली—आलोचकों ने नाट्यकला की दृष्टि से 'वेणीसंहार' को दोषपूर्ण माना है, पर इसका कलापक्ष या काव्यत्व अधिक सशक्त है। भट्टनारायण इस नाटक में एक उच्चकोटि के कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इनकी शैली भी नाटक के अनुरूप न होकर काव्य के अनुकूल है। इनकी शैली पर कालिदास, माघ एवं बाण का प्रभाव है। 'वेणीसंहार' में वीर रस का प्राधान्य होने के कारण कवि ने तदनुरूप गौड़ी रीति का आश्रय लिया है और लम्बे-लम्बे समास गम्भीर ध्वनि वाले शब्द प्रयुक्त किये हैं। भट्टनारायण समास-बहुला गौड़ी शैली का प्रयोग गद्य में भी करते हैं। न केवल संस्कृत में अपितु प्राकृत में भी यही शैली अपनाई गयी है। नाटक की दृष्टि से यह शैली उपयुक्त नहीं मानी जाती है। कहीं-कहीं इन्होंने पांचाली एवं वैदर्भी शैली का भी प्रयोग किया है; किन्तु ऐसे श्लोकों की संख्या अल्प है। गौड़ी शैली का प्रयोग कर कवि ने वीर रस पूर्ण उक्तियों का समावेश किया है और इस कार्य में पूर्ण सफल हुआ है। भीम के इस कथन में वीररस टपकता है—

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानापविद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तवदेवि भीमः॥

—१।२१

हे देवि! तुम निश्चित रहो। यह भीम इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि शीघ्र ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपने दोनों हाथों से घुमाई हुई कठोर गदा की चोट से दुर्योधन की दोनों जाँघों को तोड़कर उसके गाढे चिकने खून से रंगे हाथों से तुम्हारे केशों को सँवारेगा। अलंकारों के प्रयोग में भट्टनारायण काफी सचेत दिखलाई पड़ते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक तथा अर्थालंकारों में रूपक, उपमा, परिकर आदि के प्रति कवि का अधिक आकर्षण दिखाई पड़ता है। उपमा का सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य संभृतम्।
तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति ॥ १।१४

आर्य भीमसेन के क्रुद्ध होने पर विद्युत्प्रकाश के सदृश जो ज्योति बढ़ी, अब उसे वर्षा ऋतु की भाँति कृष्णा अवश्य ही बढ़ायेगी। भट्टनारायण ने विविध छन्दों का प्रयोग कर अपनी विदग्धता प्रदर्शित की हैं। 'वेणीसंहार' में अठारह प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें मुख्य है—वसन्ततिलका (३९), शिखरिणी (३५), शार्दूलविक्रीडित (३२) तथा स्रग्धरा (२०)। कवि ने शौरसेनी एवं मागधी दो प्रकार की प्राकृतों का प्रयोग किया है। मागधी का प्रयोग राक्षस-राक्षसियों के वार्त्तालाप में हुआ है।

रस—'वेणीसंहार' वीररस प्रधान नाटक है। इसके प्रथम अंक में ही वीररस की जो अजस्रधारा प्रवाहित होती है, वह अप्रतिहत गति से अन्त तक चलती है। बीच-बीच में शृङ्गार, करुण एवं अन्य रसों का भी समावेश किया गया है, किन्तु इनकी प्रधानता नहीं है। वीरों के दर्पपूर्ण वार्त्तालाप एवं कटूक्तियों में रौद्ररस का भी रूप दिखाई पड़ता है। द्वितीय अंक में दुर्योधन की प्रेमिल भंगिमाओं में शृङ्गाररस का वर्णन है। वीररस के साथ-ही-साथ करुणरस की भी सर्वत्र छाया दिखाई पड़ती है। वृषसेन एवं कर्ण की मृत्यु से दुर्योधन के शोकमग्न होने में करुणरस की व्यंजना हुई है। षष्ठ अंक में चार्वाक द्वारा भीम और अर्जुन की मृत्यु का समाचार पाकर युधिष्ठिर और द्रौपदी के शोकग्रस्त होने में भी करुणरस की अभिव्यक्ति हुई है। कतिपय विद्वान् इस नाटक को दुःखान्त मानते हुए करुणरस की प्रधानता मानते हैं। तृतीय अंक के प्रवेशक में राक्षस-राक्षसी ने वार्तालाप में बीभत्सरस दिखाई पड़ता है। सम्पूर्ण नाटक में वीररस की ही प्रधानता है और अन्य रस उसके सहायक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। भीम की गर्वोक्ति में वीररस की व्यंजना हुई है। योगिराज श्रीकृष्ण के दुर्योधन की सभा में असफल लौटने में भीमसेन की उक्ति में शान्तरस की छटा दिखाई गई है।

विशाखदत्त

इनकी एक मात्र प्रसिद्ध रचना 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक उपलब्ध है तथा अन्य कृतियों की सूचनायें प्राप्त होती हैं जिनमें 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक नाटक प्रमुख है। इस नाटक के उद्धरण 'नाट्यदर्पण' तथा 'शृङ्गारप्रकाश' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। इसमें कवि ने ध्रुवस्वामिनी एवं चन्द्रगुप्त के प्रणय-प्रसंग का वर्णन किया है तथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चन्द्रगुप्त के बड़े भाई रामगुप्त की कायरता की कहानी कही है। 'मुद्राराक्षस' में संघर्षमय राजनीतिक जीवन की कथा कही गयी है और चन्द्रगुप्त चाणक्य एवं मलयकेतु के मन्त्री राक्षस के चरित्र को इसका वर्ण्यविषय बनाया गया है। अन्य संस्कृत लेखकों की भाँति विशाखदत्त के जीवन का पूर्ण विवरण प्राप्त नही होता। इसके दो नाम मिलते हैं—विशाखदत्त एवं विशाखदेव। इन्होंने 'मुद्राराक्षस' की प्रस्तावना में अपने विषय में थोड़ा बहुत जो कुछ भी कहा है वही इनके विवरण का प्रामाणिक आधार है।

इससे पता चलता है कि विशाखदत्त सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र थे और इनके पिता का नाम पृथु था। पृथु को महाराज की उपाधि प्राप्त थी और उनके पितामह सामन्त थे। [प्रस्तावना, पृ० ७] इनके समय-निरूपण के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में चन्द्रगुप्त का उल्लेख है, पर कई प्रतियों में चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्तिवर्मा, दन्तिवर्मा एवं रतिवर्मा का नाम मिलता है। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि संभवतः अवन्तिवर्मा मौखरी नरेश हों जिसके पुत्र ने हर्ष की पुत्री से विवाह किया था। इसे काश्मीर का भी राजा माना गया है, जिसका समय ८५५–८८३ ई० तक है। याकोबी नाटक में उल्लिखित ग्रहण का समय ज्योतिष-गणना के अनुसार २ दिसम्बर ८६० ई० मानते हैं तथा उनका यह भी विचार है कि राजा के मन्त्री शूर द्वारा इस नाटक का अभिनय कराया गया था। पर, इसके सम्बन्ध में कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल, स्टेन कोनो तथा एस० नीलकण्ठशास्त्री ने इसे द्वितीय चन्द्रगुप्त का समकालीन माना है जिसका समय ३७५ से ४१३ ई० है। चार्येन्टियर इसे अन्तिम गुप्तवंशियों में से समुद्रगुप्त का समकालीन मानते हैं पर कीथ के अनुसार विशाखदत्त का समय नवीं शताब्दी है। कोनो चन्द्रगुप्त को गुप्तवंशी राजा समझते हैं और विशाखदत्त को कालिदास का कनिष्ठ समसामयिक मानते हैं। परन्तु यह उनकी हवाई कल्पना है। विशाखदत्त द्वारा रत्नाकर के अनुकरण का कुछ साक्ष्य अवश्य मिलता है, किन्तु यह उनके समय के विषय में कदाचित् निर्णायक नहीं है। 'दशरूपक' और 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'मुद्राराक्षस' के उद्धरण प्राप्त होने के कारण इसका स्थितिकाल नवमशती से पूर्व निश्चित होता है; क्योंकि दोनों ग्रन्थों का रचनाकाल दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी है। सम्प्रति विद्वानों का बहुसंख्यक समुदाय विशाखदत्त का समय ६ठीं शती का उत्तरार्ध स्वीकार करने के पक्ष में है। मुद्राराक्षस की रचना बौद्ध-युग के ह्रास के पूर्व हो चुकी थी। प्रो० ध्रुव के अनुसार 'मुद्राराक्षस' की रचना विशाखदत्त ने ६ठी शताब्दी के अन्तिम चरण में एवं कन्नौज के मौखरी नरेश अवन्तिवर्मा की हूणों के ऊपर की गयी विजय के उपलक्ष्य में की थी।

मुद्राराक्षस—'मुद्राराक्षस' राजनीतिक नाटक है, पर इसमें कवि की कवित्वशक्ति का अपूर्व विकास दिखाई पड़ता है। राजनीतिक दाव-पेंच को कथानक का आधार बनाने के कारण इसमें श्रृङ्गाररस की मधुरिमा को अवकाश नहीं मिला है। इसमें कवि ने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्कृष्ट कवित्वकला एवं रचनाचातुरी का परिचय दिया है। इसकी काव्यशैली सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है तथा परवर्त्ती कवियों की यत्नसाध्य कृत्रिम शैली के दर्शन यहाँ नहीं होते। कवि ने वैदर्भी का प्रयोग कर भाषा में प्रवाह लाने का प्रयास किया है और भावों की अभिव्यक्ति में यथासाध्य सरलता उत्पन्न करने की चेष्टा की है। इस नाटक में कुल सात अंक हैं और इसका प्रतिपाद्य है चाणक्य द्वारा नन्द सम्राट् के विश्वस्त एवं भक्त अमात्य राक्षस को परास्त कर चन्द्रगुप्त का विश्वास-भाजन बनाना। इसके कथानक का मूलाधार है नन्दवंश का विनाश कर मौर्य-साम्राज्य की स्थापना करना तथा चाणक्य के विरोधियों को नष्ट कर चन्द्रगुप्त के मार्ग को प्रशस्त करना। नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा चन्द्रग्रहण का कथन किया गया है और पर्दे के पीछे से चाणक्य की गर्जना सुनाई पड़ती है कि उसके रहते कौन चन्द्रगुप्त को पराजित कर सकेगा। प्रथम अंक में चाणक्य मंच पर उपस्थित होता है एवं उसके कथन से कथानक की पूर्वपीठिका का आभास होता है तथा भावी कार्यक्रम की भी रूपरेखा स्पष्ट होती है। चाणक्य के स्वगत-कथन से ज्ञात होता है कि उसने अपनी कूटनीति से नन्दवंश को समूल नष्ट कर चन्द्र-गुप्त को सिंहासनाधिष्ठित किया है, पर चन्द्रगुप्त का शासन तब तक कंटकाकीर्ण बना रहेगा, जब तक कि राक्षस को वश में न किया जाय। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया गया है, उनका भी वह वर्णन करता है। उसने स्वयं पर्वतक का नाश कराकर यह समाचार प्रसारित करा दिया कि राक्षस के षड्यन्त्र से ही पर्वतेश्वर की हत्या हुई है। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए विषकन्या भेजी थी किन्तु चाणक्य की चतुरता से उससे (विषकन्या से) पर्वतेश्वर की ही मृत्यु हुई। वह अपने भावी कार्यक्रम का वर्णन करते हुए कहता है कि उसने अपने अनेक विश्वासपात्र पात्रों को, छद्मवेश में, अपने सहयोगियों तथा विरोधियों के कार्यों पर दृष्टि रखते हुए उनके रहस्य को जानने के लिए नियुक्त किया है एतदर्थ उसने क्षपणक एवं भागुरायण तथा अन्य व्यक्तियों को इसलिए नियुक्त किया है कि वे मलयकेतु एवं राक्षस के विश्वास-भाजन बन कर उनके विनाश में सहायक हो सकें। यद्यपि चाणक्य का स्वगत-कथन अत्यन्त विस्तृत है, तथापि कथावस्तु के बीज को उपस्थित करने एवं उसकी कूटनीति के उद्घाटन में इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है और नाटकीय पृष्ठाधार को उपस्थित करने के कारण सामाजिकों के लिए अरुचिकर प्रतीत नहीं होता। चाणक्य की स्वगत उक्ति के समाप्त होते ही एक दूत का प्रवेश होता है और वह उसे सूचित करता है कि कायस्थ शंकरदास, क्षपणक जीवसिद्धि तथा श्रेष्ठी चन्दनदास ये तीनों ही राक्षस के परम हित-कारी हैं। चाणक्य की उक्ति से ज्ञात होता है कि इन तीनों में से जीवसिद्धि तो उसका गुप्तचर है, अतः इसे अन्य दो व्यक्तियों की चिन्ता नहीं है। दूत यह भी कहता है कि श्रेष्ठी चन्दनदास राक्षस का परम मित्र है और राक्षस अपना सारा परिवार उसके यहाँ रखकर नगर के बाहर चला गया है। दूत ने श्रेष्ठी चन्दनदास के घर में प्राप्त राक्षस की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नामांकित मुद्रा चाणक्य को दी। चाणक्य राक्षस को वश में लाने के लिए नन्द के लेखाध्यक्ष शकटदास से एक कूटलेख लिखवा कर उस पर राक्षस की नामांकित मुद्रा लगवा देता है। चाणक्य शकटदास को फाँसी देने की घोषणा करता है, क्योंकि उसने राक्षस का पक्ष लिया है और सिद्धार्थक को शकटदास की रक्षा करने एवं राक्षस का विश्वास-पात्र बनने की गुप्त योजना बनाता है। चाणक्य चन्दनदास को बुलाकर राक्षस के परिवार को सौंपने के लिए कहता है, पर चन्दनदास उसकी बात नहीं मानता, इस पर क्रुद्ध होकर चाणक्य उसको सपरिवार कारागार में डाल देता है।

द्वितीय अंक में राक्षस की प्रतियोजनाओं का उपस्थापन किया गया है। यद्यपि राक्षस की कूटनीति असफल हो जाती है, फिर भी इससे उसकी राजनीतिज्ञ विज्ञता का प्रमाण प्राप्त होता है। राक्षस का विराध गुप्त नामक गुप्तचर सँपेरा के वेश में रंगमंच पर प्रकट होता है। वह राक्षस के पास जाकर कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का वृत्तान्त कहता है। विराध गुप्त के कथन से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के विनाश की जो योजनाएँ बनी थीं, उन्हें चाणक्य ने अन्यथा कर दिया है और चन्द्रगुप्त के वध की कौन कहे, षड्यन्त्र-कारियों का भी नाश हो गया। किस प्रकार शकटदास, चन्दनदास एवं जीवसिद्धि के ऊपर आपत्तियों का पहाड़ लाद दिया गया है, इसकी चर्चा भी दूत करता है। इसी बीच सिद्धार्थक शकटदास के साथ प्रवेश करता है और शकटदास को सुरक्षित पाकर राक्षस उल्लसित हो जाता है। अपने मित्र को बचाने के लिए वह शकटदास को पारितोषिक प्रदान करता है (अपने आभूषण देता है)। सिद्धार्थक राक्षस की मुद्रा भी देता है। दोनों चले जाते हैं और विराधगुप्त उसे सूचना देता है कि सम्प्रति चाणक्य-चन्द्रगुप्त में विरोध चल रहा है। राक्षस भेद-नीति का आश्रय लेते हुए अपने एक वैतालिक को यह शिक्षा देकर नियुक्त करता है कि जब-जब चन्द्रगुप्त की आज्ञा की चाणक्य अवहेलना करे तब-तब वह चन्द्रगुप्त की प्रशस्ति का गान कर उसे उत्तेजित करे।

तृतीय अंक में चाणक्य की कूटनीति का योग्यतम रूप प्रदर्शित किया गया है। इस अंक के प्रारम्भ में कंचुकी के कथन से ज्ञात होता है कि राजा के कौमुदी महोत्सव मनाने की आज्ञा का चाणक्य ने निषेध कर दिया है। चन्द्रगुप्त को जब इसका पता चलता है तो वह चाणक्य को बुलाता है और उसका तिरस्कार करता है। वह चाणक्य पर धृष्टता एवं कृतघ्नता का आक्षेप करता है और चाणक्य कपट कलह का स्वांग रच कर उसके मंत्रि-पद को त्याग कर, क्रुद्ध होकर चला जाता है। प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त सभी किसी को ज्ञात नहीं होता कि यह चाणक्य की चाल मात्र है।

चतुर्थ अंक में चाणक्य की पूर्व नियोजित योजनाएँ फलवती होती हैं। इस अंक में मलय केतु का कपटी मित्र भागुरायण मलयकेतु के मन में यह विश्वास जमाना चाहता है कि राक्षस की शत्रुता चाणक्य के साथ है, चन्द्रगुप्त के साथ नहीं। चाणक्य के चन्द्रगुप्त के साथ से हट जाने पर बहुत सम्भव है कि राक्षस चन्द्रगुप्त के साथ मिल जाय। इसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकार की बातें करते हुए दोनों राक्षस के पास जाते हैं। इसी समय करभक नामक व्यक्ति पाटलिपुत्र से आकर राक्षस को चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के मतभेद की सूचना देता है, जिससे हर्षित होकर राक्षस कहता है—"सखे शकटदास हस्ततलगतो मे चन्द्रगुप्तो भविष्यति।" इसका अभिप्राय भागुरायण मलयकेतु को यह समझाता है कि अब राक्षस का अभीष्ट सिद्ध हो गया है और वह चन्द्रगुप्त का मंत्री बन जायगा। मलयकेतु के मन में भी विरोध का भाव घर कर जाता है। तदनन्तर राक्षस तथा मलयकेतु पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने की योजना बनाते हैं और एतदर्थ जीव-सिद्धिक्षपणक से राक्षस प्रस्थान का मुहुर्त पूछता है।

पंचम अंक की घटनाएँ चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती हैं। राक्षस का कपट मित्र सिद्धार्थक मंच पर प्रवेश करता है। सिद्धार्थक कहता है कि वह चाणक्य द्वारा शकटदास से लिखाये गये कूटलेख को पाटलितुत्र जाने को प्रस्तुत है। क्षपणक उसे भागुरायण से मुद्रा प्राप्त करने की राय देता है, पर वह उसे नहीं मानता। तत्पश्चात् क्षपणक भागुरायण के पास मुद्रा लेने के लिए जाता है और उससे कहता है कि राक्षस के कहने पर उसने ही विषकन्या के द्वारा पर्वतेश्वर को मरवाया है। इस समय वह दूसरा नीच कर्म भी कराना चाहता है, जिससे वह अत्यधिक भयभीत है। क्षपणक के वार्तालाप को सुनकर मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति आशंकाएँ उत्पन्न होने लगती हैं और वह राक्षस से विरोध करने लग जाता है। अभीतक मलयकेतु यही समझता था कि उसके पिता को चाणक्य ने मरवाया है, पर क्षपणक की बातों से उसे विश्वास हो गया कि राक्षस के ही द्वारा उसके पिता का वध कराया गया है। भागुरायण बड़ी कठिनता से उसे समझाने का प्रयास करता है कि सम्भव है राक्षस का कार्य न्यायोचित हो और चाहे जो भी हो, प्रतिशोध लेने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। इसी समय बिना मुद्रा (पारपत्र) के भागने की चेष्टा में सिद्धार्थक पकड़ लिया जाता है और उससे कूटलेख छीन लिया जाता है। जब उससे उस रहस्यपूर्ण लेख के सम्बन्ध में पूछा जाता है तो वह पीटे जाने के भय से बतलाता है कि इसे राक्षस ने चन्द्रगुप्त को देने के लिए भेजा है। पीटे जाते समय राक्षस की नामांकित मुद्रा की आभूषणों की पेटी भी गिर जाती है तथा लेख में अंकित मौखिक सन्देश उससे पूछा जाता है। वह मलयकेतु के मन की बात कहता है, जिसके अनुसार चाणक्य को हटा कर राक्षस को मंत्री बनाने की बात है। मलयकेतु राक्षस के समक्ष सभी प्रमाण प्रस्तुत कर देता है तथा राक्षस के समीप भागुरायण के परामर्श से शकटदास के अन्य लेख से उसका मिलान करता है। इस प्रकार की समानता देखकर राक्षस भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। राक्षस पर्वतेश्वर का आभूषण पहने हुए दिखाई पड़ता है, पर उन्हें उसने आभूषण विक्रेताओं से क्रय किया था। राक्षस और चन्द्रगुप्त की गुप्त मन्त्रणा प्रमाणित हो जाती है और मलयकेतु राक्षस को मंत्रि-पद से हटा देता है। वह अन्य पाँच राजाओं को भी मार डालने का आदेश देता है। चाणक्य के कौशल की सफ-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लता चरम-सीमा पर पहुँच जाती है और मलयकेतु तथा राक्षस दोनों में फूट पड़ जाती है।

षष्ठ अंक के प्रवेशक से विदित होता है कि पाँच राजाओं के मारे जाने से अन्य नरेशों ने मलयकेतु का साथ छोड़ दिया है। इसी बीच भागुरायण आदि के द्वारा मलयकेतु वन्दी बना लिया जाता है और चाणक्य उसकी सेना पर भी अधिकार कर लेता है। अमात्य राक्षस मलयकेतु के सैन्य शिविर से हटकर कहीं पाटलिपुत्र में ही छिपे हुए हैं; जहाँ चाणक्य का गुप्तचर उनके पीछे लगा हुआ है। चाणक्य सिद्धार्थक एवं सुसिद्धार्थक को आदेश देता है कि वे श्रेष्ठी चन्दनदास को वध्यभूमि में लाकर मार डालें। अमात्य राक्षस अपनी स्थिति पर खिन्न हैं तथा अपने मित्र चन्दनदास को नहीं बचा सकने के कारण चिन्तित हैं। अमात्य राक्षस पाटलिपुत्र के जीर्णोद्यान में चिंतित दिखाई पड़ते हैं, उसी समय एक व्यक्ति, जो चाणक्य का गुप्तचर है, गले में रस्सी बाँधकर आत्महत्या करना चाहता है। राक्षस के पूछने पर वह बताता है कि उसका मित्र जिष्णुदास अपने मित्र चन्दनदास की मृत्यु का समाचार सुनने के पूर्व ही अग्नि में प्रवेश करने के लिए चला गया है, अतः वह मित्र के मरने के पूर्व ही आत्महत्या करना चाहता है। यह सुनकर अमात्य राक्षस अपने मित्र चन्दनदास की रक्षा करने के लिए चल पड़ते हैं।

सप्तम अंक में चाणक्य की कूटनीति सफलता के सोपान पर पहुँच जाती है और उसे अभीष्ट की सिद्धि होती है। चन्दनदास सपरिवार वध्यभूमि की ओर लाया जाता है और उसे चाणक्य के दो गुप्तचर, जो चाण्डाल बने हुए हैं, ले जाते हैं। चन्दनदास को शूली पर चढ़ाने को ले जाया जाता है और उसकी पत्नी और बच्चे विलाप करने लगते हैं। राक्षस इस दृश्य को देखकर दुःखित होकर अपने को प्रकट करता है और चाण्डालों को भगा कर चन्दनदास को बचा लेता है। चाणक्य वहाँ उपस्थित होता है और राक्षस के समक्ष अपना सारा कूटनीतिक रहस्य खोल देता है जिससे राक्षस के समक्ष सारी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। चाणक्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार करने का आग्रह करता है, पर राक्षस इसे स्वीकार नहीं करता। इस पर चाणक्य कहता है कि इसी शर्त पर चन्दनदास के प्राणों की रक्षा हो सकती है जब कि आप मन्त्रि-पद को ग्रहण करें। राक्षस विवश होकर अमात्य-पद को ग्रहण करता है और मलयकेतु को उसके पिता का राज्य लौटा दिया जाता है। चन्दनदास नगर सेठ बना दिया जाता है और सभी बन्दी कारामुक्त कर दिये जाते हैं। चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी हो जाती है और वह अपनी शिखा बाँधता है तथा भरतवाक्य के बाद नाटक की समाप्ति होती है।

नाट्यकला-विवेचन—'मुद्राराक्षस' विशाखदत्त की नाट्यकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी वस्तुयोजना एवं उसके संगठन में प्राचीन नाट्यशास्त्रीय नियमों की अवहेलना करते हुए स्वच्छन्दवृत्ति का परिचय दिया गया है। विशुद्ध राजनीतिक नाटक होने के कारण इसमें माधुर्य एवं सौन्दर्य का अभाव है और करुण तथा शृङ्गार रस नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिखाई पड़ते। आद्यन्त इस नाटक का वातावरण गम्भीर बना रहता है। इसमें न तो किसी स्त्रीपात्र का महत्त्वपूर्ण योग है और न विदूषक को ही स्थान दिया गया है। एकमात्र स्त्रीपात्र चन्दनदास की पत्नी है, किन्तु कथा के विकास में इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है। संस्कृत में एकमात्र यही नाटक है जिसमें नाटककार ने रस-परिपाक की अपेक्षा घटना-वैचित्र्य पर बल दिया है। यह घटना प्रधान नाटक है। इसमें नाटककार की दृष्टि अभिनय पर अधिक रही है और उसने सर्वत्र इसके अभिनेयगुण की रक्षा की है।

कथावस्तु के विचार से 'मुद्राराक्षस' संस्कृत के अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक मौलिक है। इसमें घटनाओं का संघटन इस प्रकार किया गया है कि प्रेक्षक की उत्सुकता कभी नष्ट नहीं होती। नाटक में वीररस का प्राधान्य है, पर कहीं भी युद्ध के दृश्य नहीं हैं। वस्तुतः यहाँ शस्त्रों का द्वन्द्व न होकर दो कूटनीतिज्ञों की बुद्धि का संघर्ष दिखाया गया है। प्रेक्षक की दृष्टि सदा चाणक्य द्वारा फैलाये गये नीति-जाल में उलझती रहती है। इसके कथानक में गत्यात्मकता, क्रमबद्धता, प्रवाहमयता, गठन की सुव्यवस्था, घटना-गुंफन की चारुता तथा नाटकीय औचित्य का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है। अंकों के विभाजन में भी विशाखदत्त ने नवीनता प्रदर्शित की है। अन्य नाटककारों ने अंकों में ही नाटक का विभाजन किया है, जब कि 'मुद्राराक्षस' में अंकों के बीच दृश्यों का भी नियोजन किया गया है। उदाहरण के लिए द्वितीय एवं तृतीय अंकों में कई दृश्यों का विधान है। इसमें अनेक छोटी-छोटी घटनाएँ विभिन्न स्थानों पर घटित होती हैं, पर वे निरर्थक न होकर मूलकथा से अनुस्यूत दिखाई पड़ती हैं। इस नाटक में भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए 'पताकास्थानक' का विधान है। 'मुद्राराक्षस' में नाटककार का उद्देश्य है चन्द्रगुप्त के शासन एवं शक्ति को स्थायी बनाना और यह तभी संभव है, जब कि उसका प्रसिद्ध प्रतिद्वन्द्वी राक्षस चन्द्रगुप्त का परम मित्र बन जाय। नाटककार ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए घटनाओं का विकास किया है और समस्त घटनाएँ त्वरित गति से इसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होती हुई प्रदर्शित की गई हैं। 'मुद्राराक्षस' में कथानक से सम्बद्ध घटनाओं का बाहुल्य है, पर नाटककार ने अपने कौशल द्वारा विभिन्न साधनों का प्रयोग कर उनकी सूचना दी है। जैसे; प्रथम अंक के प्रारम्भ में चाणक्य के स्वागत-कथन में अनेक कथाओं की सूचना प्राप्त होती है, जिससे दर्शक शेष कथा को सुगमता से समझ लेता है। अनेक अनावश्यक घटनाओं की सूचना दूत के सन्देशों, पात्रों के स्वगत-कथनों एवं पात्रों की उक्तियों द्वारा देकर नाटककार ने अपनी कृति को अधिक आकर्षक तथा सुन्दर बनाया है।

संकलनत्रय के विचार से 'मुद्राराक्षस' एक सफल कृति है। इसमें ऐसी कोई भी घटना नहीं है, जिसमें एक दिन से अधिक समय लग सके। अल्प समय में अधिकाधिक घटनाओं को दर्शाया गया है। मुद्राराक्षस का समस्त कथानक एक वर्ष से कुछ ही अधिक समय का रखा गया है। इसमें मंचीय आवश्यकता को दृष्टि में रख कर विभिन्न स्थानों के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दृश्य नहीं प्रस्तुत किये गये हैं। घटनाओं के मुख्य रूप से तीन ही स्थल दिखाये गये हैं— पाटलिपुत्र नगर, मलयकेतु की राजधानी, सैन्यशिविर एवं अन्य निकटवर्ती स्थान। ये सारी दृश्य योजनाएँ नाटक के कार्य-व्यापार के ही अनुकूल हैं। विभिन्न प्रासंगिक क्रियाओं द्वारा एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के कारण इसमें प्रभान्विति का तत्त्व दर्शाया गया है।

यह वीररस प्रधान नाटक है और इसी की योजना में घटनाएँ गुम्फित की गई है। प्रथम अंक के प्रारम्भ में चाणक्य द्वारा राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने की अभिलाषा ही इसके कथानक का 'बीज' है। राक्षस की मुद्रा प्राप्त होना तथा शकटदास की ओर से लिखित पत्र को मुद्रांकित करना एवं मलयकेतु का छला जाना आदि घटनाएँ 'बिन्दु' हैं। इसी 'विन्दु' के आधार पर इसका नामकरण 'मुद्राराक्षस' किया गया है। विराधगुप्त का राक्षस को उसके समस्त कार्यों की विफलता बताना 'पताका' है तथा चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य के पारस्परिक मतभेद का सन्देश राक्षस को देना 'प्रकरी' है। अन्त में राक्षस का चन्द्रगुप्त का अमात्य-पद ग्रहण करना 'कार्य' है। नाटककार ने कार्यावस्थाओं के नियोजन में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। नाटकीय कथावस्तु के विकास में कार्यावस्थाएँ पाँच अवस्थाओं को द्योतित करती हैं। प्रथम अंक में चाणक्य के मन में चन्द्रगुप्त के राज्य को निर्विघ्न चलाने एवं उसमें स्थायित्व लाने का भाव ही 'प्रारम्भ' है। चाणक्य का अपने दूत द्वारा राक्षस की नामांकित मुद्रा पाना तथा कूटपत्र लिखकर भद्रभट आदि को विभिन्न कार्यों में नियुक्त करना 'यत्न' है। चतुर्थ एवं पंचम अंक में राक्षस एवं मलयकेतु के अमात्य-पद से निष्कासित किया जाना 'प्राप्त्याशा' है। इस स्थिति में फल-प्राप्ति की सारी बाधाओं का निराकरण हो जाता है। षष्ठ अंक में राक्षस का चन्दनदास को बचाने के लिए वध-भूमि की ओर जाना नियताप्ति है, क्योंकि अब यहाँ राक्षस का चाणक्य के समक्ष आत्म-समर्पण कर देना निश्चित हो जाता है। सप्तम अंक में राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व ग्रहण करना 'फलागम' है। उपर्युक्त पांच अवस्था के अतिरिक्त 'मुद्राराक्षस' में पंच सन्धियों का पूर्ण निर्वाह किया गया है।

इसमें कथानक के अनुरूप ही चरित्र की योजना की गई है। इसके प्रमुख पात्र चाणक्य और राक्षस दोनों ही राजनैतिक दाव-घातों एवं कूटनीतिक चाल से सम्पन्न दिखाये गये हैं। इस नाटक का नामकरण मुद्राराक्षस सार्थक है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—मुद्रयागृहीतं राक्षसमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्। इस नाटक में 'मुद्रा' (मुहर) के द्वारा राक्षस के निग्रह की घटना को आधार बनाकर इसका नामकरण किया गया है। इसका नामकरण वर्ण्य-वस्तु के आधार पर किया गया है। राक्षस की नामांकित मुद्रा पर ही चाक्णय की समस्त कूटनीति केन्द्रित हुई है, जिससे राक्षस के सारे साधन व्यर्थ सिद्ध हुए।

नायकत्व—'मुद्राराक्षस' के नायकत्व का प्रश्न विवादास्वद है। नाट्यशास्त्रीय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विधि के अनुसार इसका नायक चन्द्रगुप्त ज्ञात होता है; क्योंकि उसे ही फल की प्राप्ति होती है अर्थात् निष्कंटक राज्य एवं राक्षस ऐसे अमात्य को प्राप्त करने का वही अधिकारी होता है। पर कतिपय विद्वान् चाणक्य को ही इसका नायक स्वीकार करते हैं। इस मत के पोषक विद्वान् विशाखदत्त को परम्परागत रूढ़ियों का उल्लंघन करने वाला भी कह देते हैं। "वास्तव में संस्कृत नाट्यसाहित्य में केवल विशाखदत्त एक ऐसा नाटककार है, जिसने परम्परागत रूढ़ियों का सम्मान नहीं किया। उसने समस्त सैद्धान्तिक परम्परागत रूढ़ियों का उल्लंघन किया है। वह चरित नायक की एक अभिनव कोटि की प्रतिष्ठा करके अपनी मौलिकता का परिचय देता है।"* संस्कृत लक्षणग्रन्थों के अनुसार नाटक का नायक उच्चकुलोद्भव, प्रतापी, गुणवान्, धीरोदात्त चरितवाला कोई अलौकिक एवं निरभिमानी व्यक्ति होना चाहिए।

इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त तो इस नाटक का नायक हो सकता है, पर नाटककार ने वस्तुतः चाणक्य को ही इसका नायक बनाया है। चाणक्य का ही इस नाटक पर पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है और इसकी सभी घटनाओं का सूत्र-संचालन वही करता है। चाणक्य का चरित्र-चित्रण करते समय नाटककार का विशेष ध्यान रहा है; क्योंकि उसे चाणक्य को ही इसका नायक बनाना अभीष्ट है। अन्त तक इस नाटक में चाणक्य की ही योजनाएँ फलवती सिद्ध होती हैं। पर, चाणक्य को इसका नायक मानने में शास्त्रीय दृष्टि से बाधा उपस्थित हो जाती है क्योंकि इसकी वास्तविक फलोपलब्धि चन्द्रगुप्त को ही होती है। नाटक के अन्त में चाणक्य राजनीति से ही नहीं, अपितु समग्र भौतिक कार्यों से पृथक् होते हुए दिखाई पड़ता है। नाटक की समग्र घटना का फलोपभोग चन्द्रगुप्त ही करता है और चाणक्य उसके राज्य को स्थिर एवं उसके शत्रुओं को परास्त कर उसकी समृद्धि को सुदृढ़ कर देता है। इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त ही इसका नायक सिद्ध होता है। चन्द्रगुप्त के नायकत्व के विरुद्ध अनेक प्रकार के तर्क दिए गए हैं। नाटककार ने जान-बूझकर चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व को उभरने नहीं दिया है और वह चाणक्य के ही इंगित पर चला करता है। चाणक्य के कृत्रिम कोप को देख कर भी वह काँप उठता है। अतः वह इसका नायक नहीं हो सकता। संस्कृत नाटकों की परिपाटी के अनुसार भरतवाक्य का पाठ नायक द्वारा ही किया जाता है; किन्तु मुद्राराक्षस के भरतवाक्य का उच्चारण राक्षस करता है, क्योंकि उसे ही मन्त्रित्व की प्राप्ति होती है। पर, वह नायक नहीं हो सकता; क्योंकि वह चाणक्य के समक्ष पराजित दिखलाया गया है। सभी दृष्टियों से विचार करने पर चाणक्य ही इसका नायक सिद्ध होता है; क्योंकि अन्ततः उसकी ही कूटनीति फलवती होती है और चन्द्रगुप्त के राज्य को निष्कंटक कर उसे अपूर्व आह्लाद होता है। इस नाटक का समस्त कथानक चाणक्य में ही केन्द्रित दिखाया गया है। इसकी सारी घटनाएँ उसकी

---

* डॉ० रामजी उपाध्याय—संस्कृत के महाकवि और काव्य पृ० ३७४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इच्छा के अनुरूप ही घटित होती हैं। इसका प्रमुख फल है राक्षस को अपनी ओर मिला कर चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाना और इस कार्य के लिए चाणक्य सदा प्रयत्नशील रहता है। अतः चाणक्य ही इसका नायक सिद्ध होता है। विशाखदत्त ने प्राचीन परिपाटी की अवहेलना करते हुए भी ऐसे व्यक्ति को नायक बनाया है, जो सद्वंशोद्भव न होकर एक ऐसा ब्राह्मण है जिसमें भारत का सम्राट बनाने की शक्ति है।

चरित्र-चित्रण : चाणक्य—'मुद्राराक्षस' का नायक चाणक्य अत्यन्त प्रभावशाली तथा शक्तिशाली है। वह एक सफल मन्त्री तथा महान् कूटनीतिज्ञ भी है। उसकी कूटनीतिज्ञता से चन्द्रगुप्त का साम्राज्य स्थायित्व प्राप्त करता है तथा राक्षस भी उसका वशवर्त्ती हो जाता है। नाटक की समस्त घटनाएँ उसी के इशारे पर चलती हैं। वह इस नाटक के घटनाचक्र का एक मात्र नियन्ता होते हुए भी निष्काम कर्म करता है। वह जो कुछ भी करता है, अपने लिए नहीं, अपितु चन्द्रगुप्त के लिए और मौर्यसाम्राज्य की दृढ़मूलता एवं सम्पन्नता के लिए। वह वीतराग, निरीह एवं लोकोत्तर राजनीतिज्ञ है। चाणक्य मौर्य साम्राज्य का मंत्री होते हुए भौतिक सुख से दूर है। वह बुद्धि-कौशल की साक्षात् प्रतिमा है तथा किसी भी रहस्य को तत्क्षण समझ जाता है। चन्द्रगुप्त के प्रति उसके कृत्रिम कलह को देख कर जब वैतालिक चन्द्रगुप्त को उत्तेजित करने के लिए उसकी स्तुति-पाठ करते हैं तो वह भाँप जाता है कि यह राक्षस की चाल है। वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सदा जागरूक रहता है तथा विषम स्थिति में भी विचलित नहीं होता और अपनी अपूर्व मेधा द्वारा शत्रु के सारे षड्यन्त्र को व्यर्थ कर देता है। चन्द्रगुप्त के वध के लिए की गयी राक्षस की सारी योजनाएँ निष्फल हो जाती हैं। कवि ने उसके व्यक्तिगत जीवन का जो चित्र अंकित किया है उससे उसकी महानता सिद्ध होती है। वह असाधारण व्यक्ति है। "एक ओर तो सूखे कण्डों को तोड़ने के लिए पत्थर का टुकड़ा पड़ा है, दूसरी ओर ब्रह्मचारियों के इकट्ठे किये कुशों की ढेर लगी है, चारों ओर छप्पर पर सुखाई जानेवाली समिधाओं से घर झुका जा रहा है और दीवारें गिरती पड़ती किसी प्रकार खड़ी हैं।"

चाणक्य धैर्यवान् तथा अपने पौरुष पर अदम्य विश्वास रखनेवाला है, जिससे सफलता तथा विजयश्री सदा उसके करतलगत रहती हैं। वह भाग्यवादी न होकर पौरुषवादी है। उसे अपनी बुद्धि पर दृढ़ विश्वास है। वह किसी की परवाह नहीं करता, सारे संकटों पर विजय प्राप्त करने के लिए उसकी बुद्धि पर्याप्त है। वह अपूर्व दूरदर्शी है; क्योंकि राक्षस की बुद्धिमत्ता एवं पटुता को समझकर ही उसे अपने वश में करना चाहता है। वह उसका संहार न कर उसे चन्द्रगुप्त के अमात्यपद पर अधिष्ठित करने के लिए सारा खेल करता है। उसने अपने अनुचरों को कड़ा आदेश दे रखा है कि किसी भी स्थिति में राक्षस के प्राण की रक्षा की जाय। उसे पूर्ण विश्वास है कि राक्षस की अपूर्व मेधा एवं चन्द्रगुप्त की शक्ति के समन्वय से ही मौर्य साम्राज्य का दृढ़ीकरण सम्भव है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वह मानव मनोभावों का अपूर्व ज्ञाता है तथा राक्षस के महत्त्व को जितना समझता है उतना स्वयं राक्षस भी नहीं जानता। वह अहंवादी है तथा दूसरों की कभी भी चिन्ता नहीं करता। वह क्रोधी भी इस प्रकार का है कि उसके नाम से आतंक छा जाता है। चाणक्य सदा सावधान रहता है तथा छोटे शत्रु की उपेक्षा नहीं करता। वह कार्यभार-वाहकों को सदा पारितोषिक एवं प्रोत्साहन देता रहता है और श्लेषयुक्त वचनों को भी पहचान लेता है। उसका प्रत्येक कार्य ससयोजन होता है। राक्षस उसे रत्नों का सागर कहता है। उसके गुण की प्रशंसा शत्रु और मित्र दोनों ही करते हैं। भागुरायण उसकी नीति के सम्बन्ध में इस प्रकार कहता है—"कभी तो चाणक्य की गूढ़ चालें प्रकाशित होने लगती हैं और कभी इतनी गहन हो जाती हैं कि बुद्धिगम्य नहीं हो पातीं, कभी अपने सम्पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होती हैं, कभी किसी कार्य विशेष से अत्यन्त धुंधली हो जाती हैं, और कभी उनका बीज तक नष्ट होता प्रतीत होता है और कभी विविध फलों से युक्त हो जाती हैं। वास्तव में चाणक्य की नीति नियति की भाँति विचित्र आकार प्रदर्शित करती हैं। कुल मिला कर चाणक्य महान् राजनीतिज्ञ, महामानव, कूटनीतिज्ञ-विशारद, दृढ़प्रतिज्ञ एवं निस्पृह है। वह शत्रु के गुण को भी महत्त्व देता है। राक्षस के वशवर्त्ती हो जाने पर वह उसे 'महात्मा' कहता है और राक्षस परिवार को जब चन्दन-दास उसे नहीं सौंपता तो वह मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करता है।

राक्षस—इस नाटक का दूसरा प्रसिद्ध पात्र राक्षस है जो चाणक्य के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में चित्रित है। वह प्रतिनायक का कार्य करता है। कवि ने राक्षस ऐसे प्रतिनायक का चित्रण कर चाणक्य के महत्त्व को तो बढ़ाया ही है साथ ही इस नाटक को भी आकर्षक बना दिया है। राक्षस का व्यक्तित्व मानवीय रूप की विविध भाव-भंगिमाओं का रंगस्थल है। वह आशाओं एवं निराशाओं के प्रतिघात में अडिग एवं अजय बना रहता है। उसकी इसी स्वाभाविक महत्ता के कारण चाणक्य उसकी ओर आकृष्ट होता है और येनकेन प्रकारेण उसे चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाना चाहता है। वह चाणक्य के समक्ष पराभूत होकर भी अपनी महानता की छाप प्रेक्षकों के ऊपर छोड़ जाता है। चाणक्य के समान वह भी राजनीतिज्ञ एवं कूटनीतिज्ञ विशारद है, तथा जो कुछ भी करता है वह व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, अपितु स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर ही। नन्द के शासन-काल में उसकी कितनी सत्ता थी; तथा उसमें राज्य संचालन की कितनी शक्ति रही होगी, इसका पता उसकी मुद्रा से ही चलता है। चाणक्य अपनी सारी चाल को उसकी मुद्रा पर ही केन्द्रित कर देता है। राक्षस ने चन्द्रगुप्त के संहार के लिए जो योजना बनायी थी वह अत्यन्त सुदृढ़ एवं उसके बुद्धिकौशल की परिचायक थी, पर उसकी असिद्धि में राक्षस का उतना दोष नहीं था जितना कि उसके व्यक्तियों की असावधानी एवं आतुरता का था। राक्षस की पराजय आकस्मिक एवं अप्रत्याशित थी। चाणक्य के हाथ में राक्षस की मुद्रा का पड़ जाना एक अनहोनी घटना है; इससे उसका महत्त्व बढ़ता ही है, घटता नहीं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वस्तुतः उसकी पराजय परिस्थितिजन्य थी। परिस्थिति की विपरीतता तथा अपनी योजनाओं की व्यर्थता के कारण राक्षस भाग्यवादी बन जाता है। विराधगुप्त के मुख से अपने दो गुप्तचरों के मारे जाने का समाचार प्राप्त कर वह भाग्य को दोषी ठहराता है। नन्दवंश के विनाश में वह भाग्यचक्र का ही हाथ स्वीकार करता है। "यह तो उस भाग्य का फेर है जो मनुष्य के पुरुषार्थ का शत्रु है।" [५।२०] राक्षस भाग्यवादी होते हुए भी अकर्मण्य नहीं है, और न अपने प्रयत्नों की असफलता के कारण अपने को कोसता है। निराशा की भावना से भर जाने पर भी उसके पुरुषार्थ में शिथिलता नहीं आती और अन्त-अन्त तक वह कर्मठ एवं क्रियाशील बना रहता है। वह राजनीति विशारद होते हुए भी कठोर नहीं है और सहृदयना उसके व्यक्तित्व का बहुत बड़ा गुण है। वह सहज ही अपने प्रति सहानुभूति प्रकट करने वालों को विश्वासभाजन समझ लेता है।

राक्षस का वास्तविक रूप उसकी मित्रता में प्रस्फुटित होता है। वह अपने मित्र चन्दनदास के प्रणों के संकट को देख कर उसकी रक्षा के लिए आत्म-समर्पण कर देता है। वह अपने मित्र के जीवन से बढ़ कर अपनी प्रतिष्ठा को नहीं समझता और चाणक्य का वशवर्त्ती हो जाता है। उसका आत्म-समर्पण उसकी असफलता का द्योतक न होकर उसकी सच्ची मैत्री का परिचायक है। 'मुद्राराक्षस' नाटक में राक्षस असफल सिद्ध होते हुए भी अपनी राजनीतिकपटुता, कठोर कर्त्तव्यनिष्ठा तथा सच्ची मैत्री के कारण महान् सिद्ध होता है। इन सारे गुणों के अतिरिक्त उसे युद्धकला में निपुणता भी प्राप्त है। युद्ध-संचालन की क्षमता एवं सैन्य-संगठन की निपुणता उसमें कूट-कूट कर भरी हुई है। एक योग्य मंत्री के लिए जिन-जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सारे गुण राक्षस में भरे पड़े हैं।

शैली—इस नाटक का विषय बौद्धिक स्तर का है, फलतः इसमें जटिल एवं नीरस गद्य का प्रयोग है, पर काव्योचित उदात्तता का अभाव नहीं है। चाणक्य के कथन में कवि ने वीररस का सुन्दर परिपाक किया है तथा उसकी राजनीति का भी आभास कराया है।

केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी ?
पाशैः केन सदा गतेरगतिता सद्यः समासादिता ?
केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे ?
भीमः केन चलैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः ? ।।

—७।६

किसने वस्त्र के छोर में ऊँची शिखावाली अग्नि को बाँध लिया ? किसने तुरन्त ही अपने जाल से पवन को भी गतिहीन कर लिया ? किसने अनेक हाथियों के मदजल से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गीली सटाओं वाले सिंह को पिजड़े में बन्द कर दिया ? किसने नक्र और मगर से विलो-डित भयंकर महासमुद्र को हाथों से ही तैर कर पार कर लिया ?

'मुद्राराक्षस' की शैली विषय के अनुरूप बदलती हुई दिखाई पड़ती है। अधिकांशतः कवि ने व्यास-प्रधान शैली का प्रयोग कर छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा भावाभिव्यक्ति की है। इसमें कवि ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सप्तम अध्याय

काव्यशास्त्र

नाम करण—काव्य या साहित्य का मूल्यांकन करने वाला या साहित्य-सौन्दर्य परख करने वाला शास्त्र काव्यशास्त्र कहलाता है। संस्कृत में इस शास्त्र या विद्या के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं—अलंकार शास्त्र, काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, साहित्यविद्या, क्रियाकल्प आदि। इस शास्त्र में काव्यसौन्दर्य का परीक्षण कर आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है और उनके आधार पर ही काव्य के विविध अङ्गों का मूल्यांकन या परीक्षण किया जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र के प्रारंभिक युग में इसके लिए प्रचलित शब्द 'काव्यालंकार' था, फलतः तत्कालीन आचार्यो के ग्रन्थ काव्यालंकार के नाम से अभिहित किये गए। भामह-कृत 'काव्यालंकार', उदभट् का 'काव्यालंकार-सारसंग्रह' वामन-कृत 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' एवं रुद्रट-प्रणीत 'काव्यालंकार' नामक ग्रन्थ इस तथ्य के द्योतक हैं। यद्यपि इन ग्रन्थों में केवल अलंकारों का ही विवेचन नहीं है, तथापि सौन्दर्य का बोधक होने के कारण इन्हें अलंकार कहा गया है। वामन अलंकार और सौन्दर्य को अभिन्न मानते थे। दण्डी भी अलंकार को काव्य का शोभाधायक धर्म कहते हैं। संभवतः प्राचीन आलंकारिकों ने काव्य में अलंकार के प्राधान्य के कारण ही अपने ग्रन्थों का नामकरण काव्यालंकार किया है। कालांतर में यह शास्त्र अलंकारशास्त्र के नाम से विख्यात हुआ।

काव्यशास्त्र का विकास—भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा अत्यन्त प्राचीन है। इसका विस्तार ई० पू० द्वितीय शती से लेकर अठारहवीं शती तक है। अद्यावधि उपलब्ध ग्रन्थों में भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' काव्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ है। भरत मुनि इसके आद्याचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं और विश्वेश्वर पंडित अन्तिम प्रौढ़ आचार्य हैं। लगभग दो सहस्र वर्षों तक निरन्तर प्रवर्द्धमान भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास चार युगों या कालों में विभाजित है।

(१) प्रारम्भिक काल—अज्ञात समय से भामह तक।
(२) रचनात्मक काल—भामह से आनन्दवर्द्धन तक।
(३) निर्णयात्मक काल—आनन्दवर्द्धन से मम्मट तक।
(४) व्याख्याकाल—मम्मट से विश्वेश्वर पण्डित तक।

कतिपय विद्वान् ध्वनि-सिद्धान्त को प्रकाशस्तम्भ मानकर काव्यशास्त्र के इतिहास को तीन भागों में विभक्त करते हैं।

पूर्व ध्वनि युग—आरम्भ से आनन्दवर्द्धन तक।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ध्वनि युग—आनन्दवर्द्धन से मम्मट तक।

पश्चात् ध्वनि युग—मम्मट से पण्डितराज जगन्नाथ तक।

दो सहस्र वर्षों के अन्तराल में साहित्यशास्त्र के इतिहास में छह सम्प्रदायों का उदय हुआ, जिनके द्वारा विशेष दृष्टि से काव्य या साहित्य के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन किया गया। ये सिद्धान्त हैं—रससम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, ध्वनि-सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय और औचित्य सम्प्रदाय।

भरत—आचार्य भरत भारतीय काव्यालोचन के आचार्य हैं और उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' अपने विषय का सर्वोत्तम आकर ग्रन्थ है। इसे भारतीय ललितकला एवं काव्य शास्त्र का विश्वकोश या महाकोश कहा जाता है। 'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता के आविर्भावकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, पर अद्यावधि शोधों के आधार पर द्वितीय शती ई० पू० से लेकर द्वितीय शती के मध्य इनका समय आँका गया है। उनके 'नाट्यशास्त्र' में ३६ अध्याय हैं। कुछ संस्करणों में ३७ भी, जिनमें नाटक एवं 'नाट्यशास्त्र' से सम्बन्ध सभी विषयों का विस्तृत विवेचन है।

'नाट्यशास्त्र' में आनुषंगिक रूप से संगीतशास्त्र, छन्दशास्त्र, अलंकारशास्त्र का भी प्रौढ़ एवं प्रामाणिक विवेचन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ की महत्ता प्राचीन काल से ही है और इस पर अनेक टीकाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिनवगुप्त रचित 'अभिनवभारतीय' है। नाट्यशास्त्र के अन्य प्रसिद्ध व्याख्याता है—उद्भट, लोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक, राहुल, भट्टयंत्र, कीर्त्तिधर तथा मातृगुप्ताचार्य। 'नाट्यशास्त्र' की विस्तृत परिधि में काव्यशास्त्र विषयक अनेक तत्त्वों का उन्मीलन किया गया है। यद्यपि उनका प्रधान प्रतिपाद्य नाटक ही था, किन्तु उसके विभिन्न विधि-विधानों के निरूपण में रस, अलंकार, गुण, दोष का भी प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने सूत्ररूप में ही रस के स्वरूप, उसके तत्त्व (विभाव, अनुभाव, संचारी, स्थायी) तथा भेदों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है, जो 'नाट्यशास्त्र' के षष्ठ और सप्तम अध्यायों में है। भरत ने आठ नाट्यरसों, चार अलंकारों—उपमा, रूपक, दीपक और यमक—३६ काव्यलक्षणों दस गुणों एवं दस दोषों का विवेचन किया है। इनके गुण-वर्णन में दोष-विषयक संकेत प्राप्त होते हैं। दोषों के प्रति परवर्त्ती आलंकारिकों की तरह इनका दृष्टिकोण उग्र न होकर उदार है। भरत ने नाट्यालोचन सम्बन्धी सार्वभौम सिद्धान्त की स्थापना की है जिसमें उनके गहन चिंतन एवं मौलिक विवेचन का प्रकाश है। नाटक के इतिवृत्त, पात्र, रस, रंगमंच, रंगविधान, रंगशिल्प, अभिनय, भाषाप्रयोग प्रवृत्ति, वृत्ति तथा संगीत का नाट्यशास्त्र में वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

भामह—भरत के पश्चात् भारतीय काव्यशास्त्र के उल्लेखनीय आचार्य हैं भामह जिनका समय ६ठीं शती का पूर्वार्द्ध है। इनका एक मात्र ग्रन्थ हैं 'काव्यालंकार' जिस पर उद्भट ने 'भामह विवरण' नामक टीका ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ छह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम में (साठ श्लोकों में) काव्य के साधन, लक्षण, काव्य भेद, तथा काव्य-दोषों का निरूपण है। द्वितीय एवं तृतीय परिच्छेदों में अलंकारों का विवेचन है। इनकी श्लोक संख्या क्रमशः छियानवे एवं अट्ठावन है। चतुर्थ परिच्छेद में उनहत्तर श्लोक हैं तथा विविध प्रकार के दोषों का वर्णन है। पष्ठ परिच्छेद की श्लोक संख्या छियासठ है। इसमें शब्दों की शुद्धाशुद्धि का निरूपण किया गया है। भारतीय काव्य शास्त्र का क्रमबद्ध इतिहास भामह से ही प्रारम्भ होता है। भामह ने अपने ग्रन्थ में काव्यांगों को स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठित कर काव्यशास्त्र को पृथक् शास्त्र का रूप प्रदान किया इन्होंने महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, गाथा आदि को काव्यालंकार में स्थान देकर उनके स्वरूप का स्पष्टीकरण किया। भामह अलंकारवादी आचार्य हैं। जिनके अनुसार अलंकार काव्य का जीवनाधायक तत्त्व है। अलंकार सिद्धान्त का पोषक होने के कारण ये रस-सिद्धान्त के विरोधी हैं : इनके अनुसार रस अलंकार का अङ्ग है। इन्होंने रस की सीमा परिमित कर उसे प्रेयस्, रसवत् और ऊर्जस्वी अलंकारों में समाहित कर दिया। दोष राहित्य को इन्होंने काव्य के लिए आवश्यक माना है और इसके लिए किसी प्रकार का समझौता नहीं किया। कुकविता को इन्होंने साक्षात् मरण की संज्ञा दी है। इनके अनुसार शब्दार्थ से युक्त रचना को काव्य कहते हैं—शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।

दण्डी—ये अलंकारवादी आचार्य हैं। इन्होंने 'काव्यादर्श' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय सातवीं शती का पूर्वार्द्ध है। 'काव्यादर्श' में तीन परिच्छेद है और श्लोकों की संख्या ६६० है। प्रथम परिच्छेद में काव्यलक्षण, काव्य के भेद, कथा, आख्यायिका, रीति, गुण, एवं कवि के आवश्यक गुण वर्णित हैं। द्वितीय में ३५ अर्थालंकारों का वर्णन एवं अलंकार का सामान्य लक्षण कथित है। तृतीय परिच्छेद में शब्दालंकारों, चित्रबंध तथा दस काव्य दोषों का वर्णन है। 'काव्यादर्श' पर अनेक टीकाओं की रचना हुई है जिनमें तरुण वाचस्पति की टीका तथा अज्ञात व्यक्ति की 'हृदयंगमा' नामक टीका अधिक प्रसिद्ध है। वैदर्भी एवं गौड़ी रीतियों के पारस्परिक भेदों को स्पष्ट करने के कारण दण्डी रीति सम्प्रदाय के भी मार्ग-दर्शक कहे जाते हैं। इन्होंने अलंकार के स्वरूप का विस्तार करते हुए संधि, वृत्ति तथा इनके भेदों को अलंकार का रूप मान लिया है। इनके अनुसार काव्य के शोभाधायक धर्म को अलंकार कहते हैं। इन्होंने अलंकार को काव्य में मुख्य स्थान देते हुए भी गुण को महत्त्व दिया है तथा रस, रीति और गुण को भी अलंकार के अन्तर्गत रखा है। दण्डी ने दोष रहित काव्य को अधिक महत्त्व दिया है। इनके अनुसार छोटा भी दोष काव्य को उसी प्रकार दूषित कर देता है, जिस प्रकार श्वेत कुष्ठ के छोटे चिन्ह से भी सुन्दर शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है। इनके विचारानुसार इष्ट या चमत्कार पूर्ण पदावली ही काव्य है—शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उद्भट—उद्भट भी अलंकारवादी आचार्य हैं। इन्होंने 'काव्यालंकारसारसंग्रह' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय आठवीं शती का उत्तरार्द्ध है। भामह कृत 'काव्यालंकार' पर 'भामहविवरण' नामक इनकी टीका प्रसिद्ध है। इन्होंने 'कुमारसंभवम्' नामक काव्य की रचना की है। 'काव्यालंकारसारसंग्रह' में छह वर्ग हैं और उनासी कारिकाओं में इकतालीस अलंकारों का विवेचन हुआ है। उद्भट के प्रसिद्ध टीकाकार हैं प्रतिहारेन्दुराज जिन्होंने 'उघुवृति' नामक टीका की रचना की है। इनका समय दसवीं शती का पूर्वार्द्ध है। उद्भट के अन्य टीकाकार हैं—राजानक तिलक जिन्होंने 'विवेक' नाम्नी टीका का प्रणयन किया है। उद्भट के काव्यशास्त्रीय विचार अनेकानेक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं जिससे परवर्त्ती आचार्यो पर इनके प्रभाव की सूचना मिलती है। इनकी मान्यता थी कि अर्थ के भिन्न होने पर शब्द भी भिन्न हो जाता है। ये गुणों को रीति या संघटन का धर्म स्वीकार करते थे, रस का नहीं।

वामन—आचार्य वामन 'रीति सम्प्रदाय' के प्रतिष्ठापक एवं 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' नामक ग्रन्थ के प्रणेता हैं। इनका समय अष्टम शतक का अन्तिम चरण हैं। इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना है—रीतिरिति काव्यस्यात्मा। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के तीन अङ्ग हैं—सूत्र, वृत्ति एवं उदाहरण। सूत्र और वृत्ति के रचयिता स्वयं वामन हैं और उदाहरण विभिन्न लेखकों के हैं। उदाहरण के अनेक श्लोक वामन रचित भी हैं। इस ग्रन्थ में सूत्रों की कुल संख्या ३१९ है तथा यह पांच अधिकरणों एवं बारह अध्यायों में विभक्त है। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' की दो टीकाएँ हैं—गोपेन्द्र तिप्पभूपाल-कृत 'कामधेनु' तथा सहदेव-कृत टीका। इसकी अन्य टीका महेश्वर ने भी लिखी है। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के प्रथस अधिकरण का नाम 'शारीर' है, जिसमें काव्यप्रयोजन, अधिकारी, काव्य की आत्मा, रीति एवं उसके प्रकार आदि विषय वर्णित हैं। द्वितीय अधिकरण की अभिधा है 'दोष-दर्शन'। इसमें पददोष, वाक्यदोष तथा वाक्यार्थ दोष का वर्णन है। तृतीय अधिकरण का नाम 'गुण-विवेचन' है। इसमें गुणों का निरूपण एवं अलंकार तथा गुणों के पारस्परिक भेद वर्णित हैं। 'आलंकारिक' नामक चतुर्थ अधिकरण में शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का विवेचन है। अन्तिम अधिकरण का नाम है प्रायोगिक जिसका वर्ण्यविषय है कवि-प्रयोग की व्याकरणिक विवेचना। इसमें व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ दिखलाई गई हैं।

वामन ने गुण एवं अलंकार के भेद को स्पष्ट करते हुए काव्यशास्त्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इनके अनुसार गुण काव्य के नित्य धर्म हैं और अलंकार अनित्य। काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकार एवं उसको अतिशायित करने वाले गुण हैं। इनके अनुसार सौन्दर्य ही अलंकार है। इन्होंने उपमा को मुख्य अलंकार के रूप में मान्यता दी है और काव्य में रस का महत्त्व स्वीकार किया है। इनके मतानुसार विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं। जिसका अभिप्राय गुण-सम्पन्न पद-रचना से है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थात् गुण-युक्त पद-रचना ही काव्य का प्राण है। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' सूत्र-शैली में रचित भारतीय काव्यालोचन की प्रथम कृति है।

रुद्रट—आचार्य रुद्रट 'काव्यालंकार' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के प्रणेता हैं। इनका समय ८२५ ई० से ८७५ ई० के मध्य है। इस ग्रन्थ पर नमिसाधु ने टीका लिखी है। इसके अन्य टीकाकार हैं—वल्लभदेव (रुद्रटालंकार के रचयिता) एवं आशाधर। 'काव्यालंकार' में कुल १६ अध्याय एवं ७३४ छन्द हैं। इसमें १४ छन्द प्रक्षिप्त हैं। ग्रन्थ का अधिकांश आर्या छन्द में रचित है। 'काव्यालंकार' में काव्यशास्त्र के समस्त विषयों का विशद वर्णन है। प्रथम अध्याय में काव्य के प्रयोजन, शक्ति, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास (काव्यहेतु) का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में काव्य लक्षण, पाँच शब्दालंकारों, चार रीतियों, काव्य की छह भाषाओं एवं वक्रोक्ति, अनुप्रास तथा अनुप्रास की पाँच वृत्तियों का विवेचन है। तृतीय अध्याय में यमक का चतुर्थ एवं पंचम अध्यायों में शब्दालंकार का वर्णन है और सप्तम से दशम अध्याय तक अर्थालंकारों का विस्तृत विवेचन है। सप्तम अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें अलंकारों के वर्गीकरण के चार आधार वास्तव, औपम्य, अतिशय एवं श्लेष—निर्धारित किए गए हैं। ग्यारहवें अध्याय में अर्थ दोष एवं उपमा दोष वर्णित हैं और द्वादश से पंचदश अध्यायों तक रस निरूपण है। षष्ठदश अध्याय में काव्य रूपों-महाकाव्य आदि का विवेचन है।

रुद्रट अलंकारवाद के प्रतिनिधि आचार्य होते हुए भी रस-सिद्धान्त के प्रबल पोषक हैं। अन्य प्राचीन आचार्यों की अपेक्षा इनके रस-निरूपण की अपनी विशिष्टता है। इन्होंने रस का स्वतन्त्र रूप से विवेचन कर उसमें नायिका भेद का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। रुद्रट ने भरतवर्णित रस के आठ भेदों के अतिरिक्त शान्त और प्रेयान् रस को भी स्थान दिया है। इनकी रस-मीमांसा नाट्याश्रित न होकर काव्य की दृष्टि से निर्मित हैं। काव्य में रस का महत्त्व प्रतिष्ठित करते हुए इन्होंने कहा कि रस के अभाव में कोई भी काव्य शास्त्र की भाँति नीरस हो जाता है अतः कवि बड़े यत्न से रस-पेशल काव्य की रचना करे। इन्होंने नायक-नायिका भेद को रस का अङ्ग मानकर शृङ्गार रस के भीतर इसका वर्णन किया है।

रुद्रभट्ट—इन्होंने शृङ्गार तिलक नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इनका समय दशवीं शती है। 'शृङ्गालतिलक' में तीन परिच्छेद हैं और मुख्यतः शृङ्गार रस का विवेचन है प्रथम परिच्छेद में नवरस, भाव एवं नायक-नायिका का तथा द्वितीय में विप्रलंभ शृङ्गार का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में शृङ्गारेतर रसों का निरूपण एवं वृत्तियों का विवेचन है। 'शृङ्गारतिलक' में सर्व प्रथम काव्य की दृष्टि से रस का निरूपण किया गया है और चन्द्रमा के बिना रात्रि, पति के बिना नारी एवं दान के बिना लक्ष्मी की भाँति रस के बिना वाणी को अशोभन माना गया है।

आनन्दवर्द्धन—'ध्वन्यालोक' नामक युग प्रवर्तक ग्रन्थ के रचयिता एवं ध्वनि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सम्प्रदाय के उद्‌भावक के रूप में आनन्दवर्द्धन का नाम प्रसिद्ध है। इनका समय ८६० से ८९० ई० के मध्य है। इनके द्वारा रचित पुस्तकों के नाम हैं—'अर्जुनचरित', 'विषम बाणलीला', 'देवीशतक' तथा 'ध्वन्यालोक'। इनके अतिरिक्त इन्होंने धर्म कीर्ति के 'प्रमाणवार्त्तिक' पर 'धर्मोत्तमा' नामक टीका लिखी थी। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' ही है। आनन्दवर्द्धन संस्कृत काव्यशास्त्र के विलक्षण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हैं और 'ध्वन्यालोक' अपने विषय का असाधारण ग्रन्थ है।

'ध्वन्यालोक' के रचयिता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कतिपय विद्वान् कारिका का प्रणेता अज्ञात नामा ध्वनिकार को मानते हैं तथा वृत्ति के रचयिता के रूप में आनन्दवर्द्धन का नाम लेते हैं। पर डा० कान्तिचन्द्र पाण्डेय ने कारिकाकार और वृत्तिकार को अभिन्न मानकर दोनों का प्रणेता आनन्दवर्द्धन को सिद्ध किया है। अभिनव गुप्त ने 'ध्वन्यालोक' की 'ध्वन्यालोकलोचन' नामक सुप्रसिद्ध टीका लिखी है, जो इसकी सम्प्रति एक मात्र उपलब्ध टीका है। इस पर किसी लेखक ने 'चन्द्रिका' नामक टीका भी लिखी थी। आधुनिक युग में पं० बदरीनाथ झा ने 'दीधिति' नामक लोकप्रिय टीका ग्रन्थ की रचना की है।

'ध्वन्यालोक' में चार उद्योत हैं। प्रथम उद्योत में ध्वनि की स्थापना उसके स्वरूप एवं ध्वनि विरोधी मतों का खण्डन है। द्वितीय उद्योत में ध्वनि के भेदों का विवेचन तथा अलंकार एवं गुणों के पारस्परिक अन्तर का स्पष्टीकरण है तृतीय उद्योत में ध्वनि के कतिपय भेदों का वर्णन तथा गुणीभूत व्यंग्य का विवेचन है। चतुर्थ उद्योत में काव्य-प्रतिभा, काव्य के मुख्य रस आदि विविध विषय वर्णित हैं।

कुछ विद्वान् 'ध्वन्यलोक' के रचयिता का नाम 'सहृदय' एवं ग्रन्थ का नाम 'सहृदया-लोक' भी मानते हैं। डॉ० पी० वी० काणे के अनुसार 'ध्वन्यालोक' की कई हस्तलिखित प्रतियों में इसका नाम 'सहृदयालोक' भी लिखा है। यह कल्पना 'सहृदयमनः प्रीतये' 'मंगलाचरण का श्लोक' के आधार पर की गई है। पर, अधिकांश विद्वान् 'सहृदय' शब्द को नामवाची न मान कर पाठक या सहृदय का द्योतक स्वीकार करते हैं। आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' की रचना कर एक सार्वभौम काव्य-सिद्धान्त की स्थापना की है। इसमें व्यंजना को काव्य का सर्वोत्तम तत्त्व स्वीकार उसकी प्रशस्ति की गई है कि महाकवि के लिए प्रतीयमान की आराधना आवश्यक है। ध्वनि-सिद्धान्त में अन्य काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का समाहार कर उनको उचित स्थान पर अधिष्ठित किया गया है। ध्वनिकार ने ध्वनि की निर्भ्रान्त स्थापना कर तत्कालीन प्रचलित अन्य सिद्धान्तों—रस, अलंकार, रीति एवं गुण—का ध्वनि में अन्तर्भाव किया। इनके अनुसार इन सभी सिद्धान्तों की महत्ता अपने स्वरूप के कारण प्रत्यक्षतः न होकर ध्वनि के ही कारण है। आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि-सिद्धान्त के आलोक में सभी काव्य-तत्त्वों का स्वरूप भी स्थिर किया।

कंतक—आचार्य कुन्तक या कुन्तल वक्रोक्ति-सिद्धान्त के प्रवर्त्तक एवं 'वक्रोक्ति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काव्यजीवित' नामक ग्रन्थ के रचयिता हैं। इनका समय दशम शती का उत्तरार्द्ध है। कुन्तक के अनुसार वक्रोक्ति ही काव्य का जीवित या आत्मा है। इन्होंने ध्वनि-सिद्धान्त या 'ध्वन्यालोक' का खण्डन करने के लिए 'वक्रोक्तिजीवित' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था जिसमें ध्वनि के कई भेदों का वक्रोक्ति में अन्तर्भाव किया गया है। इसमें वक्रोक्ति को महनीय काव्य तत्त्व के रूप में प्रस्तुत कर उसके भेदोपभेदों का विस्तृत विवेचन किया गया है। कुन्तक ने स्थापित किया है कि वक्रोक्ति की व्याप्ति काव्य के अल्प रूप वर्ण से लेकर महाकाव्य तक में है।

'वक्रोक्तिजीवित' नामक ग्रन्थ के तीन विभाग हैं—कारिका वृत्ति और उदाहरण, जिनमें प्रथम दो कुन्तक की रचना हैं और उदाहरण विभिन्न ग्रन्थों से लिए गए हैं। ग्रन्थ चार उन्मेषों में विभक्त है। प्रथम उन्मेष में काव्य के स्वरूप, प्रयोजन आदि के अतिरिक्त वक्रोक्ति के स्वरूप एवं उसके छह भेदों का संक्षिप्त परिचय है। द्वितीय उन्मेष में वर्ण-विन्यासवक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता एवं प्रत्ययवक्रता का विस्तृत विवेचन है। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता एवं अलंकारों का निरूपण तथा चतुर्थ में प्रकरणवक्रता एवं प्रबन्धवक्रता का स्वरूप निदर्शन है।

कुन्तक सालंकार शब्दार्थ को काव्य मानते हैं। इनके अनुसार वे ही शब्दार्थ काव्य की श्रेणी में ग्रहण किये जा सकते हैं जो अलंकारयुक्त हों। ये अलंकार को काव्य का धर्म न मान कर उसका स्वरूप या आत्मा स्वीकार करते हैं। वक्रोक्तिकार कुन्तक के अनुसार वक्रोक्ति में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न करने की क्षमता है। यह काव्य का साधारण अलंकार न होकर अपूर्व अलंकार है। इनके अनुसार प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। इसे विचित्रामिधा भी कहते हैं। वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मान कर कुन्तक ने अपूर्व मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है और युगविधायक काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्त की स्थापना की है।

अभिनवगुप्त—इनका समय दशम शतक का उत्तरार्द्ध है। इन्होंने 'नाट्यशास्त्र' एवं 'ध्वन्यालोक' पर क्रमशः 'अभिनवभारती' तथा 'ध्वन्यालोकलोचन' नामक व्याख्या ग्रन्थों की रचना की है। साहित्यशास्त्री के अतिरिक्त ये महान् दार्शनिक भी हैं। इनके दर्शन-विषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—'तंत्रालोक', 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्षिणी', 'तन्त्रसार' आदि।

अभिनवगुप्त उच्चकोटि के कवि, महान् दार्शनिक एवं साहित्य-समीक्षक हैं। इन्होंने रस को काव्य में प्रमुख स्थान देकर उसकी महत्ता स्वीकार की है। इनका रस-विषयक सिद्धान्त 'अभिव्यक्तिवाद' कहा जाता है जिसके अनुसार श्रोताओं एवं दर्शकों के हृदय में रस के तत्त्व (स्थायिभाव) वासना-रूप में विद्यमान रहते हैं और काव्य के पढ़ने एवं नाटक के देखने से वही वासना अभिव्यक्त या उद्बुद्ध होकर रस के रूप में परिणत हो जाती है। इन्होंने रस को व्यंजना का व्यापार माना है और उसकी स्थिति सामाजिक या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दर्शक में स्वीकार की है। इन्होंने विभावन व्यापार द्वारा विभावानुभाव आदि का साधारणीकरण होने का वर्णन किया है तथा रस को काव्य की आत्मा माना है जो ध्वनि के रूप में व्यंजित होता है। अभिनवगुप्त प्रत्यभिज्ञादर्शन के महान् आचार्य हैं। इन्होंने शैवागम-सिद्धान्त के आधार पर रस-सिद्धान्त की समस्याओं को नए दृष्टिकोण एवं नवीन साधन विधि के द्वारा समझने का प्रयास कर रस मत को सर्वथा वैज्ञानिक रूप दिया है।

राजशेखर—इनका समय दशम शतक का पूर्वार्द्ध है। इन्होंने 'काव्यमीमांसा' नामक काव्य-शिक्षा-विषयक ग्रन्थ की रचना की है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—बालरामायण', 'बालमहाभारत', 'विद्धशालभंजिका' (सभी नाटक) एवं 'कर्पूरमंजरी' (सट्टक) 'काव्यमीमांसा' की रचना १८ अधिकरणों में हुई थी, किन्तु सम्प्रति इसका केवल प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है। जिसका नाम 'कवि रहस्य' है। इसमें कवि एवं आलोचक के स्वरूप, काव्यपाठ, काव्यपाक, रीतिनिरूपण आदि विषय वर्णित हैं।

धनंजय एवं धनिक—धनंजय ने 'दशरूपक' नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है, जिस पर उनके भ्राता धनिक ने 'अवलोक' नामक टीका की रचना की है। 'दशरूपक' में चार प्रकाश हैं। प्रथम प्रकाश में दस प्रकार के रूपक, संधि, विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार तथा प्रवेशक का विवेचन है। द्वितीय प्रकाश में नाटक-नाटिकाओं के लक्षण, विविध भेद तथा वृत्तियों का वर्णन है। तृतीय प्रकाश में पूर्वरंग, भारतीवृत्ति के प्ररोचनादि भेद, अंकविधान, अंकों में पात्रों की संख्या एवं प्रवेश तथा प्रकरण, नाटिका, भाण, प्रहसन, डिम, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग का वर्णन है। चतुर्थ प्रकाश में रस-निरूपण है। द्वितीय प्रकाश में नायक-नायिका-भेद का वर्णन किया गया है। 'दशरूपक' में तीन सौ कारिकाएँ हैं। इसमें रूपक तथा रस के सम्बन्ध में अनेक मौलिक विचार उपन्यस्त हैं। रस-निरूपण के क्रम में रस के स्वरूप, अंग, रस की स्थिति, काव्य के साथ रस का सम्बन्ध नाटक में रस की उपयोगिता, अभिनय की दृष्टि से शान्त रस की असिद्धि, रसों के भेद तथा रस-विरोध और उसका परिहार आदि विषयों का सूक्ष्म परिशीलन किया गया है। धनंजय ध्वनि-विरोधी आचार्य हैं। इनके अनुसार प्रतीयमान अर्थ का बोध तात्पर्यवृत्ति से ही होता है।

महिमभट्ट—ये काश्मीरक थे और इनका पूरा नाम राजानक महिमभट्ट था। इनका समय १००० ई० के लगभग है। इन्होंने एकमात्र 'व्यक्तिविवेक' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है जो ध्वनि-सिद्धान्त के खण्डन के लिए लिखा गया है। महिमभट्ट अनुमितिवादी आचार्य हैं। इनके अनुसार काव्य का जीवनाधायक तत्त्व 'अनुमान' है। इन्होंने ध्वनि के समस्त भेदों का अन्तर्भाव अनुमान में करते हुए व्यंजना का खण्डन किया है। इनके अनुसार एकमात्र शक्ति अभिधा ही है और लक्षणा तथा व्यंजना का उसी में अन्तर्भाव हो जाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'व्यक्तिविवेक' में तीन विमर्श हैं। प्रथम विमर्श में ध्वनि की परिभाषा में अनेक दोष दिखलाकर व्यंजना का खण्डन किया गया है। द्वितीय विमर्श में अनौचित्य को काव्य का प्रमुख दोष मानते हुए उसके भेदों का विवेचन है। तृतीय विमर्श में 'ध्वन्यालोक' के चालीस उदाहरणों को अनुमान का प्रकार बतलाया गया है। 'व्यक्तिविवेक' पर राजानक रुय्यक की एक मात्र अधूरी टीका उपलब्ध है। आधुनिक युग में पं० मधुसूदन शास्त्री ने इसकी संस्कृत टीका लिखी है। महिमभट्ट न्याय की पद्धति से ध्वनि के सम्पूर्ण भेदों को अनुमान में अन्तर्मुक्त कर काव्य का मूल तत्त्व अनुमिति या अनुमान को सिद्ध करते हैं। ध्वनि-विरोधी होते हुए भी महिमभट्ट काव्य में रस को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। इनके मतानुसार रस व्यंग्य न होकर अनुमिति का विषय है। रस का अभाव ही अनौचित्य है और यही काव्य का प्रमुख दोष है। इन्होंने रस को कविता का प्राण कहा है और सभी प्रकार के काव्यों में उसकी महत्ता सिद्ध की है। रस को काव्य की आत्मा मानने में इन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है; किन्तु इनका विरोध इस अर्थ में है कि रस व्यंग्य है।

भोजराज—धारानरेश महाराजा भोज बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। इन्होंने 'शृङ्गारप्रकाश' एवं 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक दो काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की है। ये महिमभट्ट के समकालीन थे। द्वितीय ग्रन्थ का रचनाकाल १०३०-५० ई० के आसपास है। 'शृङ्गारप्रकाश' काव्यशास्त्र का विशाल ग्रन्थ है, जिसमें छत्तीस प्रकाश हैं। इसमें काव्य के सभी अंगों के अतिरिक्त नाट्शास्त्र का भी विवेचन है। इसका मुख्य विषय रस है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में पाँच परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य के स्वरूप भेद एवं दोषों का वर्णन है। द्वितीय में शब्दालंकार एवं तृतीय में अर्थालंकार का विवेचन है। चतुर्थ में उभयालंकार-विवेचन तथा पंचम में रस एवं नायक-नायिका-भेद का वर्णन है। इस पर रत्नेश्वर की 'रत्नायण' टीका प्राप्त होती है। भोज ने रस, अलंकार, शब्द-शक्ति, गुण तथा दोष के सम्बन्ध में अनेक नवीन तथ्य प्रकट किये हैं। इन्होंने शब्दालंकारों की २४, अर्थालंकारों की २४ एवं उभयालंकारों की २४ संख्या मानी है। इनके अनुसार गुणों की संख्या ४८ है—चौबीस शब्द गुण एवं चौबीस वाक्यार्थ गुण। भोज की प्रतिभा मौलिक न होकर संग्राहिका थी। इन्होंने निर्दोष, गुणयुक्त, अलंकार से अलंकृत तथा रसपूर्ण रचना को काव्य कहा है।

क्षेमेन्द्र—आचार्य क्षेमेन्द्र औचित्य-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने काव्य शास्त्र-विषयक तीन ग्रन्थों की रचना की है—'कविकण्ठाभरण', 'सुवृत्ततिलक' तथा 'औचित्य-विचारचर्चा'। इन्होंने विविध विषयों की चालीस पुस्तकें लिखी हैं। इनका समय ग्यारहवीं शती का मध्य है। ये अभिनवगुप्त के शिष्य थे। 'औचित्यविचारचर्चा' में औचित्य को काव्य की आत्मा मान कर उसके सत्ताइस भेदों का निरूपण है। 'कविकण्ठाभरण'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कवि-शिक्षा-विषयक ग्रन्थ है तथा 'सुवृत्ततिलक' में छन्दों का विवेचन है। इसमें रस, अवस्था तथा वस्तु के अनुसार छन्दः प्रयोग का विधान कथित है।

मम्मट—वाग्देवतावतार मम्मट का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है—'काव्यप्रकाश'। इनका समय ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध है। मम्मट ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्हें 'ध्वनि-प्रस्थापक परमाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। 'काव्यप्रकाश' काव्यशास्त्र की अत्यन्त प्रौढ़कृति है जिसमें सहस्रोवर्षों से प्रवहमान संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा का सार उपन्यस्त करने का प्रयास किया गया है। इस पर सत्तर टीकाएँ प्राप्त होती हैं। इतनी अधिक टीकाओं की रचना इसकी प्रौढ़ता एवं लोकप्रियता का प्रमाण है।

'काव्यप्रकाश' की सर्वप्रथम टीका माणिक्यचन्द-कृत 'संकेत' (१२१६ संवत्) है। अन्य टीकाओं में गोविन्दठक्कुरकृत 'प्रदीप' तथा वामन झलकीकर की 'बालबोधिनी' अत्यन्त प्रसिद्ध है। 'काव्यप्रकाश' दस उल्लासों में विभक्त है। इसमें १४२ कारिकायें हैं। इसके प्रथम उल्लास में काव्य के प्रयोजन, हेतु, लक्षण तथा उत्तम, मध्यम एवं अवर भेदों का वर्णन है। द्वितीय उल्लास में शब्दशक्तियों एवं तृतीय उल्लास में आर्थी व्यंजना का विवेचन है। चतुर्थ उल्लास में ध्वनि के भेदोपभेद, रस-स्वरूप, भेद तथा विविध सिद्धान्तों का अनुचिन्तन है। पंचम में गुणीभूत व्यंग्य का विवेचन तथा व्यंजना का प्रतिपादन है। षष्ठ में चित्रकाव्य का एवं सप्तम में सत्तर काव्य दोषों का निरूपण है। अष्टम उल्लास में गुण-विवेचन तथा नवम में शब्दालंकार का वर्णन है। दशम उल्लास में अर्थालंकार एवं मिश्रालंकार का वर्णन है।

संस्कृत काव्यशास्त्र को व्यवस्थित करने का श्रेय मम्मट को है। इन्होंने सर्वप्रथम ध्वनि-विरोधी मतों का खण्डन कर उसे व्यवस्थित एवं पूर्ण बनाया है। इनकी समस्त मान्यताएँ 'ध्वन्यालोक' से प्रभावित है; अतः इन्हें ध्वनि-समर्थक आचार्यों में शीर्ष स्थान प्राप्त है। 'काव्यप्रकाश' की विशेषता विचारों की पूर्णता एवं संक्षिप्तता में है।

अग्निपुराण—यह पुराण भारतीय विद्या का विश्वकोश माना जाता है। इसके ३३६ से ३४६ अध्याय तक विविध काव्यशास्त्रीय विषय वर्णित हैं। 'अग्निपुराण' के रचयिता का पता नहीं है। इसके काव्यशास्त्र-सम्बन्धी अध्यायों में ३६२ श्लोक हैं। दस अध्यायों में वर्णित विषयों की तालिका इस प्रकार है—काव्य-लक्षण, भेद, आख्यायिका, महाकाव्य (३३६), नाटक के भेद, प्रस्तावना, अर्थप्रकृति एवं पंच सन्धि, (३३७), रसविवेचन तथा नायक-नायिका-भेद (३३८), चार प्रकार की रीति तथा चार प्रकार की वृत्ति (३३९), नृत्य एवं अभिनय (३४०–३४१), शब्दालंकार-अनुप्रास, यमक एवं चित्र, (३४२), अर्थालंकार-निरूपण (३४३–३४४) गुण एवं दोष-वर्णन (३४५–३४६)।

राजानक रुय्यक—इन्होंने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अलंकारसर्वस्व' की रचना कर अलंकारों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ हैं—'काव्यप्रकाश-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संकेत', 'अलंकारमंजरी', 'अलंकारानुसारिणी', 'साहित्य-मीमांसा', 'नाटक-मीमांसा', 'अलंकार-वार्त्तिक' तथा 'व्यक्ति-विवेकटीका'। रुप्यक की कीर्त्ति का एक-मात्र आधार 'अलंकारसर्वस्व' है। इस पर जयरथ की 'विमर्शिणी' टीका समुद्रबन्ध की टीका तथा विद्याधर चक्रवर्त्ती की 'संजीवनी' टीका प्रसिद्ध है। राजानक अलक ने भी इसकी टीका लिखी थी। रुप्यक का सयय बारहवीं शती का मध्य भाग है। 'अलंकारसर्वस्व' में ८२ अलंकारों का विवेचन है। इसमें अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण उपस्थित किया गया है। रुप्यक ध्वनिवादी आचार्य हैं।

हेमचन्द्र—इनका समय १०८८ ई० से ११७२ ई० है। इन्होंने 'काव्यानुशासन' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया है, जो सूत्रात्मक पद्धति पर रचित है। स्वयं लेखक ने इस पर 'विवेक' नामक टीका लिखी है। यह मौलिक न होकर संग्रह ग्रन्थ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं। प्रथम में काव्य का प्रयोजन, हेतु लक्षण तथा शब्द एवं अर्थ के स्वरूप का वर्णन है। द्वितीय में रस-निरूपण है। तृतीय में दोषों का वर्णन है। चतुर्थ में माधुर्यादि गुण तथा पंचम एवं षष्ठ में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार वर्णित हैं। सप्तम अध्याय में नायक-नायिका-भेद एवं अष्टम में काव्य के भेदोपभेद वर्णित हैं।

रामचन्द्र-गुणचन्द्र—दोनों लेखकों की संयुक्त रचना का नाम है 'नाट्यदर्पण'। यह नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी अत्यन्त प्रसिद्ध कृति है, जिसमें चार विवेक या अध्याय हैं। इसमें वर्णित विषय हैं—नाटक, रूपक के भेद, वृत्ति एवं रस। इसकी रचना कारिका-शैली में हुई है, जिस पर स्वयं लेखकों ने वृत्ति की रचना की है। ग्रन्थकारों का समय १२ वीं शती का मध्य भाग है।

जयदेव—इन्होंने 'चन्द्रालोक' नामक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ की रचना की है। इसमें दस मयूख एवं ३५० अनुष्टुप् श्लोक हैं। इसके एक ही श्लोक में अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गए हैं प्रथम मयूख में काव्य के लक्षण, हेतु तथा शब्द-शक्ति का वर्णन है। द्वितीय में काव्यदोष तथा तृतीय में 'लक्षण' का वर्णन है। चतुर्थ में दस गुणों तथा पंचम में पाँच शब्दालंकारों एवं सौ अर्थालंकारों का निरूपण है। षष्ठ में रस, भाव, रीति और वृत्ति तथा सप्तम में व्यंजना एवं ध्वनि के भेद वर्णित हैं। अष्टम में गुणीभूत व्यंग्य तथा अन्तिम दो मयूखों में लक्षणा एवं अभिधा का निरूपण है। इस ग्रन्थ की छह टीकाएँ प्राप्त होती हैं 'दीपिका' 'शरदशर्वरी', वाजचन्द्र की टीका, 'शरदागम', 'रमा' (वैद्यनाथ पायगुण्ड) तथा 'राकागम' या 'सुधा' (नागभट्ट या विश्वेश्वर भट्ट)।

विद्याधर—इन्होंने 'एकावली' नामक लोकप्रिय ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय १३ वीं शती का उत्तरार्द्ध है। सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ उन्मेषों में विभक्त है। इस पर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश' एवं 'अलंकारसर्वस्व' का पूर्ण प्रभाव है। इस पर 'तरला' नामक टीका है जिसके रचयिता मल्लिनाथ हैं।

विद्यानाथ—इन्होंने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें नौ प्रकरण हैं और वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—नायक, काव्य, नाटक, रस, दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार। विद्यानाथ ने 'काव्यप्रकाश' के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की है। इस पर मल्लिनाथ के पुत्र कुमार स्वामी की 'रत्नायण' नामक टीका है। विद्यानाथ का समय तेरहवीं शती का अन्तिम तथा चौदहवीं शती का प्रथम चरण है।

विश्वनाथ कविराज—इन्होंने 'साहित्यदर्पण' नामक अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है। विश्वनाथ का समय १२०० ई० से १३५० ई० के मध्य है। ये आचार्य के साथ-ही-साथ कवि भी थे। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'राघवविलास' (महाकाव्य), 'प्रभावतीपरिणय' (नाटिका) 'चन्द्रकला (नाटिका) 'नरसिंह विजय' (काव्य), 'प्रशस्तिरत्नावली' तथा 'कुवलयाश्वचरित' (प्राकृत भाषा का काव्य)। 'साहित्यदर्पण' दस परिच्छेदों में रचित काव्यशास्त्र का विशाल ग्रन्थ है। प्रथम परिच्छेद में काव्य के स्वरूप एवं भेद तथा द्वितीय में शब्द-शक्तियों का निरूपण है। तृतीय में रस का स्वरूप, रस के भेद एवं नायक-नायिका-भेद तथा चतुर्थ में ध्वनि-निरूपण है। पंचम परिच्छेद में व्यंजना का प्रतिपादन एवं षष्ठ में काव्य के भेद तथा दृश्य-काव्य का वर्णन है। सप्तम एवं अष्टम परिच्छेदों में क्रमशः दोष एवं गुण वर्णित हैं और शेष दो में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार तथा उभयालंकारों का विवेचन है। 'साहित्यदर्पण' की चार टीकाएँ उपलब्ध हैं—मथुरानाथ-कृत 'टिप्पण' तथा गोपीनाथ की 'प्रभा' (दोनों अप्रकाशित), अनन्तदास (विश्वनाथ के पुत्र) की 'लोचन' तथा रामचरण तर्क वागीश की 'विवृत्ति'। आधुनिक युग में इस पर 'लक्ष्मी' नामक टीका प्रकाशित हुई है। विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है और उसका स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया है। इनकी लोकप्रियता का कारण 'साहित्य दर्पण' है।

शारदातनय—इन्होंने 'भावप्रकाशन' नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय तेरहवीं शती का मध्यकाल है। यह ग्रन्थ दस अधिकारों में विभक्त है। इसमें वर्णित विषयों की, अधिकार-क्रम से, तालिका इस प्रकार है—भाव, रस, रस के भेद, नायक-नायिका, नायिका-भेद, शब्दार्थ-सम्बन्ध, नाट्य-इतिहास एवं शरीर, दशरूपक, नृत्यभेद तथा नाट्यप्रयोग।

शिंगभूपाल—ये नाट्य एवं संगीत के आचार्य हैं। इन्होंने एतद्विषयक 'रसार्णवसुधाकर' नामक ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ तीन उल्लासों में विभक्त है। रंजकोल्लास में नायक-नायिका के स्वरूप एवं गुण का वर्णन तथा रसिकोल्लास में रस-निरूपण है। भावोल्लास में रूपक का वस्तु विवेचन है। इनका समय तेरहवीं शती का मध्य है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भानुदत्त—इन्होंने 'रसतरंगिणी' एवं 'रसमंजरी' नामक दो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की है। 'रसतरंगिणी' आठ तरंगों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव, व्यभिचारिभाव एवं रसों का विस्तार पूर्वक वर्णन है। 'रसमंजरी' में नायक-नायिका-भेद तथा शृङ्गाररस का वर्णन है। इनका समय तेरहवीं एवं १४ वीं शती का प्रारंभ है। 'रसमंजरी' पर ग्यारह टीकाएँ मिलती हैं जिनमें अनन्त पण्डित-कृत 'व्यंग्यार्थकौमुदी' तथा नागेशभट्ट-कृत 'प्रकाश' का प्रकाशन हो चुका है।

रूपगोस्वामी—गौड़ीय भक्ति-संप्रदाय के सिद्धान्त के आधार पर भक्तिरस का स्वतन्त्र चिंतन आचार्य रूपगोस्वामी ने किया है। इन्होंने 'नाटकचन्द्रिका', 'भक्तिरसामृत-सिन्धु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन किया है। 'नाटक-चद्रिका' में नाट्यशास्त्र-विषयक सभी तत्त्वों का सूक्ष्म विवेचन है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में चार विभाग हैं—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर। प्रत्येक विभाग अनेक लहरियों में विभक्त है। पूर्व विभाग अनेक लहरियों में विभक्त है। पूर्वविभाग में भक्ति का सामान्य लक्षण देकर उसके तीन प्रकारों—साधनभक्ति, भावभक्ति तथा प्रेमाभक्ति का विवेचन है। दक्षिण विभाग में वर्णित विषय हैं—विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारी भाव तथा स्थायी भाव। पश्चिम विभाग में भक्ति रस का निरूपण तथा उसके भेदों—शान्तभक्ति, प्रीतिभक्ति, प्रेयोभक्ति, वत्सलभक्ति तथा मधुरभक्ति का वर्णन है। उत्तर विभाग में वीर, करुण आदि रसों तथा रसों की परस्पर मैत्री, विरोध एवं रसाभास का विवेचन। रूपगोस्वामी भक्तिरस को मूलरस मानकर अन्य रसों की उसकी विकृति स्वीकार करते हैं।

उज्ज्वलनीलमणि—यह 'भक्तिरसामृतसिन्धु' का पूरक ग्रन्थ है। इसमें भक्ति-रस को मधुररस कहा गया है और उसी का विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन है तथा नायक, नायिका, सखा, सखी आदि का भी वर्णन है। 'उज्ज्वलनीलमणि' की दो टीकाएँ हैं—'लोचनरोचनी' तथा 'आनंदचन्द्रिका'। इनके लेखक क्रमशः जीवगोस्वामी (रूपगोस्वामी के भ्राता) तथा विश्वनाथ चक्रवर्त्ती हैं। रूपगोस्वामी का समय पंद्रहवीं शती का अन्त एवं सोलहवीं शती का पूर्वार्द्ध है।

अप्पय दीक्षित—इन्होंने 'कुवलयानन्द' 'चित्रमीमांसा' एवं 'वृत्तिवार्त्तिक' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की है। 'वृत्तिवार्त्तिक' अत्यन्त लघु रचना है, जिसमें अभिधा एवं लक्षणा का वर्णन है। 'कुवलयानन्द' में एक सौ पचीस अलंकार वर्णित हैं। यह 'चन्द्रालोक' से प्रभावित है। 'चित्रमीमांसा' अलंकार-सम्बन्धी अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है, जो अधूरे रूप में प्राप्त है और अतिशयोक्ति अलंकार के वर्णन में समाप्त हो जाता है। अप्पय दीक्षित का समय सत्रहवीं शती का अन्त तथा अठारहवीं शती का प्रारंभिक काल है। 'कुवलयानन्द' जयदेव के 'चन्द्रालोक' की विस्तृत व्याख्या है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पण्डितराज जगन्नाथ—ये संस्कृत काव्यशास्त्र के अन्तिम प्रौढ़ आचार्य हैं। ये अप्पय दीक्षित के समकालीन थे। इन्होंने 'रसगंगाधर' नामक युग प्रवर्तक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें काव्य का स्वरूप, उसके भेद (उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम एवं अवर) रस, भाव, रसाभास, भावोदय, गुण, ध्वनि का विवेचन करने के बाद शब्द-शक्तियों एवं अलंकारों का सूक्ष्म विवेचन किया है। 'रसगंगाधर' दो आननों में विभक्त है। अलंकारों का विवेचन करते हुए इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों एवं उदाहरणों में दोष दिखा कर उनका नये ढंग से विश्लेषण किया है। शब्दशक्तियों के अन्तर्गत अलंकारों का विवेचन कर पण्डितराज ने काव्यशास्त्र के इतिहास में नवीन शृङ्खला स्थापित की है। 'रसगंगाधर' उत्तरालंकार तक ही प्राप्त होता है। इसमें ७० अलंकारों का विवेचन है। पण्डितराज के अनुसार रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है। 'रसगंगाधर' पर नागेशभट्ट ने 'गुरुमर्मप्रकाशिका' नामक टीका की रचना की है।

विश्वेश्वर पण्डित—इन्होंने 'अलंकार-कौस्तुभ' नामक अत्यन्त प्रौढ़ अलंकार ग्रन्थ की रचना की है। इसमें 'काव्यप्रकाश' में वर्णित सभी अलंकारों का सूक्ष्म विवेचन हुआ है। इन्होंने नव्यन्याय की शैली में 'अलंकार कौस्तुभ' की रचना की है। विश्वेश्वर ने तर्कपुष्ट प्रमाणों द्वारा महत्वहीन अलंकारों का खण्डन कर मम्मट-सम्मत ६१ अलंकारों को मान्यता दी है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—'अलंकारमुक्तावली', 'अलंकारप्रदीप' तथा 'रसचन्द्रिका'। इनका समय अठारहवीं शती का अन्तिम चरण है।

संस्कृत काव्यशास्त्र के संक्षिप्त पर्यालोचन से सिद्ध होता है कि भरत से लेकर विश्वेश्वर पण्डित तक उसकी अविच्छिन्न परम्परा रही है। लगभग दो सहस्र वर्षों की अवधि में कई सम्प्रदायों एवं विचार-सरणियों का उदय हुआ, जिनमें रस, अलंकार और ध्वनि उसके महनीय काव्य-दर्शन के रूप में उपस्थापित किये गए। काव्यात्मतत्त्व के अन्वेषण के क्रम में वहाँ छह सम्प्रदायों—रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य का उदय हुआ और प्रत्येक सिद्धान्त को ही सर्वोपरि मानकर उसे काव्य के जीवनाधायक तत्त्व के रूप में उपस्थित किया गया; किन्तु अन्ततः रस ध्वनि को ही यह पद प्रदान किया गया।

काव्यशास्त्र के सम्प्रदाय

(१) रस-सम्प्रदाय—संस्कृत काव्यशास्त्र का सर्वाधिक प्राचीन सिद्धान्त रस-सम्प्रदाय है। इसके संस्थापक भरतमुनि हैं। 'नाट्यशास्त्र' में रस का अत्यन्त सूक्ष्म, वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक विवेचन है तथा उसकी संख्या आठ मानी गई है। भरत ने रस का स्रोत अथर्ववेद में माना है—रसानाथर्वनादपि, १।१७। राजशेखर के कथनानुसार सर्वप्रथम नन्दिकेश्वर ने ब्रह्मा के आदेश से रस-विषयक ग्रन्थ का प्रणयन किया था; किन्तु सम्प्रति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उनका ग्रन्थ प्राप्त नही होता । अतः इस सिद्धान्त के आद्य संस्थापक भरत सिद्ध होते हैं । इन्होंने नाट्य से सम्बद्ध होने के कारण इसे नाट्य रस के रूप में निरूपित किया है और विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति मानी है--विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः । कालान्तर में अनेक आचार्यों ने नाट्शास्त्र की व्याख्या करते हुए इस सूत्र को अनेकधा व्याख्या उपस्थिन की । इन व्याख्याकारों में भट्टलोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं । भट्टलोल्लट का सिद्धान्त उत्पत्तिवाद, श्रीशंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक का मुक्तिवाद एवं अभिनवगुप्त का सिद्धान्त अभिव्यक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है । आगे चल कर रुद्रट, रुद्रभट्ट आदि आचार्यों ने रस की महत्ता प्रतिष्ठित करते हुए इसे काव्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व घोषित किया और ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धन ने रस को व्यंग्य मान कर इसे ध्वनि का ही अंग सिद्ध किया । इनके अनुसार ध्वनि के तीन विभाग हैं—वस्तुध्वनि, अलंकार ध्वनि एवं रस ध्वनि । इनमें रसध्वनि ध्वनि का उत्कृष्टतम रूप है । भोज ने 'शृङ्गारप्रकाश' में रस को अधिक महत्त्व देकर शृङ्गार के अन्तर्गत ही सभी रसों को अन्तर्भुक्त किया और 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में वाङ्मय के तीन भागों—स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति एवं रसोक्ति—में विभक्त कर रसोक्ति को ही काव्य का मुख्य तत्त्व स्वीकार किया । 'अग्निपुराण' एवं राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया । 'अग्निपुराण' के अनुसार उक्तिवैचित्र्य का प्राधान्य होते हुए भी रस ही काव्य का जीवित है—वाग्वैदग्ध्यप्राधान्येऽपि रसएवात्र जीवितम्—३३६।३३ । आगे चलकर भानुदत्त एवं विश्वनाथ ने रस को अधिक महत्त्व देकर इसे स्वतन्त्र काव्य सिद्धान्त के रूप में अधिष्ठित किया और ध्वनि से पृथक् कर इसकी स्वतन्त्र सत्ता की उद्घोषणा की । विश्वनाथ के अनुसार रसात्मक वाक्य ही काव्य है—वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । पण्डितराज जगन्नाथ ने वेदान्त की दृष्टि से रसविवेचन प्रस्तुत कर इसे दार्शनिक पीठिका प्रदान की । 'रससिद्धान्त' भारतीय काव्य-चिन्तन की अत्यन्त महनीय विचार-सरणि है जो काव्यानुशीलन का शाश्वत एवं सार्वभौम रूप उपस्थित करता है ।

(२) अलंकार-सम्प्रदाय—काव्य के शोभाकारक धर्म को अलंकार कहते हैं । इस सम्प्रदाय के पोषक आचार्य अलंकार को ही काव्य का 'जीवातु' (प्राण) समझकर अन्य तत्त्वों या सिद्धान्तों को इसी में गतार्थ कर देते हैं । अलंकार-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य भामह हैं और इसके पोषक हैं—दण्डी, उद्भट, रुद्रट, प्रतिहारेन्दुराज एवं जयदेव । भामह के अनुसार अलंकारों के बिना कविता उसी प्रकार सुशोभित नहीं हो सकती जिस प्रकार आभूषणों के बिना कामिनी विभूषित नहीं हो पाती । इन्होंने रस को भी अलंकारों में समाविष्ट कर रस-सिद्धान्त के प्रति अनास्था प्रकट की है । भामह ने रस को गौण स्थान देते हुए रसवद् अलंकारों में ही उसका अन्तर्भाव किया । भरत ने केवल चार अलंकारों का विवेचन किया था; किन्तु अप्पय दीक्षित तक इसकी संख्या १२५ हो गई । संस्कृत काव्य-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शास्त्र में न केवल अलंकारवादियों ने अपितु ध्वनि एवं रसवादी आचार्यों ने ही अलंकारों का प्रौढ़ विवेचन प्रस्तुत किया और काव्य में इसकी उपयोगिता, वर्गीकरण एवं एक अलंकार का अन्य अलंकार के साथ अन्तर स्थापित करते हुए इसके प्रयोग की भी सीमा निर्धारित की। मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पण्डित की अलंकार-मीमांसा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक है।

अलंकारवादी आचार्यों में भामह ने ३८, दण्डी ने ३७, उद्भट ने ४१, रुद्रट ने ६८ एवं जयदेव ने १०० अलंकारों का वर्णन किया है। उद्भट एवं रुद्रट ने अलंकारों के वर्गीकरण का भी प्रयास किया है और क्रमशः ६ तथा ४ वर्ग किये हैं। रुद्रट का वर्गीकरण महत्त्वपूर्ण है—वास्तवमूलक, औपम्यमूलक, अतिशयमूलक एवं श्लेषमूलक। ध्वनिवादी आचार्यों ने अलंकार को काव्य का बाह्यशोभाधायक तत्त्व स्वीकार कर इन्हें 'अस्थिर-धर्म' की संज्ञा दी और तभी से इनका महत्त्व गौण हो गया। इन आचार्यों ने अलंकार को अवर या अधम काव्य माना और क्वचित् कदाचित् अनलंकृत रचना को भी काव्य माना। रुय्यक ने ८२ अलंकारों का वर्णन किया और उन्हें सात वर्गों में विभक्त किया—साधर्म्य-मूलक, विरोधमूलक, शृङ्खलामूलक, तर्कन्यायमूलक, वाक्यन्यायमूलक, लोकन्यायमूलक एवं गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक।

मम्मट ने ६८, विश्वनाथ ने ८६ पण्डितराज ने ७० तथा विश्वेश्वर ने ६२ अलंकारों का विवेचन किया। रुद्रट ने अलंकारों की संख्या से वृद्धि की और रुय्यक, शोभाकर मित्र (१३३), जयदेव, अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने इसमें सम्यक् योग दिया, किन्तु विश्वेश्वर पण्डित ने बढ़ाये गए सभी अलंकारों का खण्डन कर मम्मट द्वारा वर्णित अलंकारों में ही उन्हें गतार्थ कर अलंकार संख्या का परिसीमन कर दिया। विश्वेश्वर का यह कार्य अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण प्रौढ़ता का द्योतक है। अलंकार के सम्बन्ध ने ध्वनिवादी आचार्यों की चाहे जो भी मान्यताएँ रही हों; किन्तु इसका जितना सूक्ष्म विवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र में हुआ उतना संभवतः किसी सिद्धान्त का नहीं।

(३) रीति-सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के संस्थापक हैं आचार्य वामन। इन्होंने रीति को ही काव्य की आत्मा मान कर इसका महत्त्व प्रतिष्ठित किया है—रीतिरात्मा काव्यस्य, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, १।२।६ वामन के अनुसार विशिष्ट पदरचना ही रीति है और यह वैशिष्ट्य गुण के ही कारण आता है अर्थात् रचना में माधुर्यादि गुणों के समावेश से ही विशिष्टता आती है—विशेषो गुणात्मा, १।२।७। इस प्रकार इन्होंने गुण एवं रीति में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है।

इन्होंने अलंकार की अपेक्षा गुण की विशेष महत्ता सिद्ध की। वामन के अनुसार गुण काव्य-शोभा का उत्पादक होता है और अलंकार उसकी शोभा का अभिवर्द्धन करते हैं। इन्होंने रीतियों के तीन प्रकार मान कर उसका वैज्ञानिक विवेचन किया है; वे हैं—वैदर्भी, गौड़ी एवं पांचाली। परवर्ती आचार्यों ने रीति की महत्ता स्वीकार करते हुए भी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उसे काव्य की आत्मा नहीं माना और इसे शरीरावयवों की भाँति काव्य का अंग स्वीकार किया। रीति-सिद्धान्त काव्य के प्राण-तत्त्व का विवेचन न कर उसके बाह्य रूप का ही निरूपण करता है। इसमें रसानुकूल वर्णों एवं वर्ण्यनुकूल पद-विन्यास पर अधिक बल दिया जाता है फलतः यह काव्य का बाह्यधर्मी तत्त्व सिद्ध होता है।

(४) ध्वनि-सम्प्रदाय—यह सिद्धान्त भारतीय काव्य-चिन्तन का अप्रतिम सिद्धान्त तथा काव्यालोचन का प्रौढ़ तत्त्व है। इस सिद्धान्त की आधारशिला व्यंजना है। ध्वनि-सिद्धान्त के प्रवर्त्तक ध्वनिकार या आनन्दवर्द्धन हैं और पोषक हैं—अभिनवगुप्त, मम्मट, रुय्यक तथा पण्डित राज जगन्नाथ। ध्वनि-सिद्धान्त को प्रबलतम विरोध का भी सामना करना पड़ा है। भट्टनायक, धनंजय, कुन्तक एवं महिमभट्ट ने इसका खण्डन कर इसके अस्तित्व को ही नष्ट करना चाहा था; किन्तु ध्वनि-सिद्धान्त अपनी आन्तरिक शक्ति के कारण जीवित रहा। आचार्य मम्मट ने ध्वनि-विरोधी आचार्यों के तर्कों का निराश कर उनकी धज्जियाँ उड़ा दीं और काव्य के अन्तस्तत्त्व के रूप में ध्वनि की प्रतिष्ठा की। इस सिद्धान्त के आचार्यों ने ध्वनि को काव्य की आत्मा मान कर उसके तीन प्रकारों—वस्तु-ध्वनि, अलंकारध्वनि और रसध्वनि—का वर्णन किया। ध्वनिवादी आचार्य काव्य के प्रतीयमान अर्थ की खोज करते हैं। जब वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अधिक चारु या आकर्षक होता है तो उसे ध्वनि कहते है। रमणी के विविध शरीरावयों से जिस प्रकार लावण्य की पृथक् सत्ता होती है, उसी प्रकार काव्य में प्रतीयमान अर्थ उसके अंगों से पृथक् महा-कवियों की वाणी में नित्य प्रतिभासित होता है।

आनन्दवर्धन ने 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि के स्वरूप, भेद एवं अन्य काव्य-सिद्धान्तों के साथ इसके सम्बन्ध का मूल्यांकन कर ध्वनि-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है। इन्होंने रस-ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है। ध्वनि-सिद्धान्त में काव्य के अन्तस्तत्त्व का प्रथम विवेचन एवं उसमें कल्पना के महत्त्व को अधिक दर्शाया गया है।

(५) वक्रोक्ति-सिद्धान्त—इस सिद्धान्त से प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्तक हैं जिन्होंने 'वक्रोक्तिजीवितम्' नामक युगप्रवर्त्तक ग्रन्थ की रचना कर वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना है। वक्रोक्ति की महत्ता सर्वप्रथम भामह ने स्थापित की थी और इसके बिना अलंकार के ही अस्तित्व को खण्डित कर दिया था। कुन्तक ने वक्रोक्ति को अलंकार के पद से हटाकर स्वतन्त्र काव्य-सिद्धान्त का रूप दिया और ध्वनि के भेदों को वक्रोक्ति में ही गतार्थ कर इसकी गरिमा बढ़ा दी। इन्होंने वक्रोक्ति के छह भेद किये—वर्णविन्यास-वक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता, पदपरार्द्धवक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता तथा प्रबन्ध-वक्रता। वक्रोक्ति से कुन्तक का अभिप्राय चतुरतापूर्ण कविकौशल की शैली या कथन से है अर्थात् असाधारण प्रकार की वर्णन शैली ही वक्रोक्ति कहलाती है। इसे विचित्रामिधा भी कहते हैं।

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते। —१।१०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(६) औचित्य-सिद्धान्त—इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य क्षेमेन्द्र हैं। इन्होंने 'औचित्य-विचारचर्चा' नामक पुस्तक में औचित्य को काव्य-सिद्धान्त के रूप में उपस्थित किया है। यद्यपि औचित्य को काव्य का जीवित या प्राणतत्त्व मानने का श्रेय क्षेमेन्द्र को है तथापि इसका विवरण अत्यन्त प्राचीन काल से प्राप्त होता है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में पात्रों की वेषभूषा के निरूपण में औचित्य का व्यावहारिक विधान प्राप्त होता है और 'ध्वन्यालोक' में अनौचित्य को रसभंग का प्रधान कारण मान कर इसकी गरिमा स्थापित की गई है।

अनौचित्याद् ऋतेनान्यत् रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा ॥

ध्वन्यालोक, ३।१५

क्षेमेन्द्र ने रस को काव्य की आत्मा मान कर औचित्य को उसका जीवित स्वीकार किया।

औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्। ५

इन्होंने औचित्य के २७ भेद किये हैं और इसमें रस, अलंकार, गुण, पद, वाक्य, कारक, क्रिया आदि के औचित्य का भी निर्देश किया है। इसके अनुसार उचित का भाव ही औचित्य है। जिस वस्तु का जिससे मेल मिलता है उसे उचित कहते हैं और उचित का भाव ही औचित्य कहा जाता है।

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य तत्।
उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते ॥

औचित्यविचारचर्चा, २७

संस्कृत काव्यशास्त्र अत्यन्त प्रौढ़ एवं महनीय काव्यालोचन का रूप प्रस्तुत करने वाला है। दो सहस्र वर्षों की अनवरत साधना के फलस्वरूप आचार्यों की चिन्तन-सरणि में जिन छह सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ उनसे संस्कृत काव्यशास्त्र का स्वरूप निखर गया। आचार्यों ने मुख्यतः काव्य के स्वरूप, कारण, प्रयोजन, भेद आदि के सम्बन्ध में अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ विचार कर उसके वर्ण्यविषयों का भी निरूपण किया। काव्य के उत्तम, मध्यम और अधम तीन भेद किये गए और ध्वनिकाव्य को काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप माना गया। मध्यम काव्य के अन्तर्गत गुणीभूत व्यंग्य को स्थान मिला और अलंकार काव्य को अधम या अवर काव्य कहा गया। अन्य दृष्टि से भी काव्य के भेद किये गए और उनका विभाजन श्रव्य और दृश्यकाव्य के रूप में किया गया। श्रव्य काव्य के दो भेद किये गए—प्रबन्ध और मुक्तक और प्रबन्ध के दो भेद हुए—महाकाव्य और खण्ड काव्य। आचर्यों ने इनके स्वरूप का विशद विवेचन किया। दृश्यकाव्य के अन्तर्गत रूपक का विवेचन हुआ। जिसके रूपक और उपरूपक नामक दो भेद किये गए। रूपक के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दस एवं उपरूपक के अट्ठारह भेदों का विश्लेषण किया गया। गद्य काव्य के कथा, आख्यायिका, परिकथा, और कथा आदि भेद किये गए। आचार्यों ने शब्द-शक्तियों का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया और अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना नामक शब्द-वृत्तियों का निरूपण कर इनके अनेक प्रकारों का गम्भीर एवं सूक्ष्म विवेचन किया। काव्यशास्त्र के विकास में दर्शन, व्याकरण, कामशास्त्र, आयुर्वेद एवं ज्योतिष का भी महत्त्वपूर्ण योग रहा और इनकी स्थापनाओं से भी काव्यालोचन उपकृत हुआ। रस, ध्वनि और अलंकार-सम्प्रदाय के विवेचन में व्याकरण, दर्शन आदि का प्रभूत योग रहा। भारतीय काव्यशास्त्र में सौन्दर्यान्वेषण का कार्य पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ और प्रीति तथा विस्मय के रूप में काव्यशास्त्र की दो आधार शिलाएँ स्थापित हुई जिनका प्रतिनिधित्व रस एवं अलंकार ने किया। रस को व्यंग्य मान कर उसे ध्वनि का एक रूप माना गया और अन्ततः तीन सिद्धान्त भारतीय काव्यालोचन के महनीय सिद्धान्त बने।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शुद्धि-पत्र

संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
१	क्या मात्रा क्या गुण	क्या मात्रा, क्या गुण	३	१
२	अथर्ववेद ।	अथर्ववेद,	३	१२
३	होती है ।	होती है, जिन्हें	४	२४
४	शाल	शाकल	५	१२
५	अनाविल	अनाविल	८	८
६	नाना विध	नानाविध	९	८
७	संघर्ष है ।	संघर्ष है, जो	१०	४
८	रीति-नीति राजनीति	रीति-नीति और राजनीति	१०	१३
९	प्रेमित्व भावना	प्रेमिल भावना	१२	१२
१०	पल्लव न	पल्लवन	१४	३२
११	माद्य तथा हर्ष	माघ तथा श्रीहर्ष	१५	३१
१२	भाव्य व्यंजना	भाव व्यंजना	१५	३
१३	हर्ष वर्धन	हर्षवर्धन	२५	१३
१४	आर्तनाद	आर्त्तनाद	४३	६
१५	दपणीय	रमणीय	४५	९
१६	खाने के लिए	रमाने के लिए	४५	११
१७	गंगा की तरक	गंगा की तरह	५०	१९
१८	विभूतिर्या	विभूतियाँ	५०	२३
१९	बौद्धधर्म	बौद्धधर्म की	६४	२५
२०	सुवर्णाली	सुवर्णाक्षी	६५	५
२१	रमता है रावण	रमता है । रावण	७३	१८
२२	त्रिविक्रम भट्ट के	त्रिविक्रम भट्ट की	९८	१८
२३	निर्मित नाठक	निर्मित नाटक	१००	६

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
२४	शुद्धता की साक्षी	शुद्धता के साक्षी	१०३	४
२५	मूछित	मूच्छित	१०४	३२
२६	अतः इससे	अतः इसमें	१०६	६
२७	जिससे की	जिससे कि	१०६	२१
२८	मृगोऽयं	आश्रम मृगोऽयं	१११	२
२९	त्योंही	की ध्वनि पड़ती है त्योंही	१११	२
३०	उछाम	उद्दाम	११४	१६
३१	अपन	अपने	११७	७
३२	सार्थवाट	सार्थवाह	१२७	६
३३	गम्भीर	गंभीर	१४५	२१
३४	कालिदस	कालिदास	१४८	२
३५	प्रतिघात में	घात-प्रतिघात में	१६७	२१
३६	अभिनवभारतीय	अभिनवभारती	१७३	१७
३७	अट्ठावन	अंठावन	१७४	३
३८	स्वीकार	स्वीकार कर	१७७	२६
३९	निराश	निरास	१८८	११
४०	आचार्यों की	आलोचना की	१८९	२०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्रीमदप्पयदीक्षितविरचितः

व र द रा ज स्त वः

विमर्शाख्य हिन्दी व्याख्या सहित

व्याख्याकार--डॉ० ओम् प्रकाश पाण्डेय

सुप्रसिद्ध अद्वैतवादी महादार्शनिक आलंकारिक श्री अप्पयदीक्षित की अत्यन्त लोकप्रिय यह स्तोत्र-कृति है। इसकी रचना कांजीवरम् के अधिष्ठाता आशुतोष भगवान् वरदराज की स्तुति में सम्पन्न हुई है। इसके १०५ श्लोकों में कवि ने वरदराज के दिव्य रूप का वर्णन किया है। अप्पयदीक्षित कृत संस्कृत टीका के साथ विमर्शात्मक सुविषद हिन्दी व्याख्या हो जाने से अब यह ग्रन्थ सब के लिये बोधगम्य हो गया है। १०-०

न्यायसिद्धान्तमुक्तावली

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

व्याख्याकार--प० कीर्त्यानन्द झा न्याय-वेदान्ताचार्य

इस ग्रन्थ पर प्राचीन और नवीन जितनी व्याख्यायें उपलब्ध हैं वे सभी क्लिष्ठ होने के कारण सामान्य रूप से सभी के लिये सहज बोधगम्य नहीं हैं। अतः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक तर्कशास्त्रपारंगत विद्वान् व्याख्याकार ने अपने अनुभूत कठिनाइयों से तथा मूल ग्रन्थ के प्राणोन्मादी प्रभाव के सविशेष आकर्षण से सरल सुबोध सस्कृत-हिन्दी उभय व्याख्या प्रस्तुत की है। इस संस्करण के माध्यम से बिना किसी की सहायता लिये हुए भी पिपठिषु छात्र ग्रन्थ के गम्भीर भाव तक अनायासेन पहुँच सकेंगे। शास्त्रार्थ के दुरुह स्थलों पर स्पष्ट सारगर्भ विवेचन इसकी विशेषता है। शीघ्र

त र्क भा षा

सविमर्श संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेता

व्याख्याकार--पं० कीर्त्यानन्दझा न्याय-वेदान्ताचार्य

पं० केशव मिश्र प्रणीत यह ग्रथ न्यायशास्त्र का सारभूत ग्रन्थ माना जाता है। इसके सांगोपांग अध्ययन से विद्यार्थी सभी दर्शन के अधिकारी बन जाते हैं। प्रस्तुत संस्करण की व्याख्या अत्यन्त सरल, प्रवाहमय तथा मूल का प्रतिपद अनुवर्तन करने वाली है। सर्वत्र ही गूढ स्थलों को सुस्पष्ट करने के लिये मतान्तर-निरासपूर्वक विषयवस्तु का यथार्थ बोध कराया गया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तर्कशास्त्र-पारंगत विद्वान् व्याख्याकार ने इस संस्करण की व्याख्या में पहले मूल ग्रन्थ को लगाकर बादमें शंकासमाधान के रूप में तर्कशास्त्र के मार्मिक सिद्धान्तों, क्लिष्ट अंशों तथा मतमतान्तरों पर सरलतम शब्दों में व्यापक प्रकाश डाला है। संस्कृतेतर छात्रों के लिये तो इसकी मौलिक हिन्दी भाष्य ही पर्याप्त है। इसकी पाण्डित्यपूर्ण विशद भूमिका तो परीक्षार्थी छात्रों के लिये ही लिखी गयी है। यन्त्रस्थ

प्राप्तिस्थानं--चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी--२२१००१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection